अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी : सिंहावलोकन

2006

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बैरकपुर : कोलकाता-700 120: पश्चिम बंगाल

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी : सिंहावलोकन

संस्थान के नदीय प्रभाग मुख्यालय इलाहाबाद में 15-16 मार्च, 2004 के दौरान आयोजित वैज्ञानिक कार्यशाला *अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान एवं विकास-वर्तमान अवस्था एवं भावी दिशायें* में प्रस्तुत अनुसंधानात्मक लेखों का संकलन

संपादन

डा. आर. एन. सेठ
डा. आर. एस. पंवार
डा. एन. पी. श्रीवास्तव
डा. के. डी. जोशी
श्री पी. आर. राव

बुलेटिन सं. 144 अप्रैल, 2006

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्)
बैरकपुर : कोलकाता-700 120: पश्चिम बंगाल

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी : सिंहावलोकन

ISSN 0970-616X
@ 2006

इस बुलेटिन में प्रकाशित सामग्री प्रकाशक की अनुमति के बिना किसी भी रूप में उपयोग करना मना है ।

प्रकाशक : डॉ. कुलदीप कुमार वास
निदेशक, केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर : कोलकाता-700 120

मार्गदर्शन : डॉ. नर्बदा प्रसाद श्रीवास्तव
प्रधान वैज्ञानिक

प्रकाशन कार्य : श्री पी. आर. राव
सहायक निदेशक राजभाषा

प्रकाशन सहायता : श्री मो. कासिम
तकनीकी अधिकारी

कम्पोजिंग कार्य : श्री मो. कासिम, तकनीकी अधिकारी
सुश्री सुनीता प्रसाद, हिन्दी अनुवादक
श्री जेम्स मुर्मू, हिन्दी अनुवादक

आवरण पृष्ठ : श्री सुजीत चौधरी
तकनीकी सहायक

मुद्रक : मेसर्स ग्राफीक इन्टरनेशनल, 12/1 बी माधब चटर्जी लेन
कोलकाता-700020

प्रस्तावना

देश की तेजी से बढ़ती आबादी के लिए उचित एवं आवश्यक पोषण मुहैया कराना एक दुष्कर कार्य है । भोजन में प्रोटीन एवं पौष्टिक तत्वों की पूर्ति हेतु अब केवल स्थलीय संसाधन ही नहीं बल्कि जलीय-तंत्र भी महत्वपूर्ण हो गये हैं । उद्योगीकरण, जनसंख्या वृद्धि तथा अन्य कारणों से जल संसाधनों पर अत्यधिक दबाव है। पर्यावरण एवं जैव-विविधता भी खतरे के घेरे में है । ऐसे में यह बेहद जरूरी है कि इन बहुमूल्य संसाधनों की सुरक्षा, विस्तार और विकास के लिए इनसे जुड़े सभी लोगों में जागरूकता लाई जाये । अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी में हुए अनुसंधान एवं विकास के संदर्भ में इन संसाधनों की वर्तमान स्थिति तथा भावी योजनाओं को ध्यान में रखकर इस संस्थान के नदीय प्रभाग द्वारा इलाहाबाद में एक राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन मार्च 15-16,2004 में किया गया । इस कार्यशाला में देश के ख्याति प्राप्त मत्स्य विशेषज्ञों के साथ मत्स्य कृषकों ने भी भाग लिया । अनुसंधान एवं विकास की सार्थकता तभी है जब उसमें तकनीकी व्यवहारिकता, आर्थिक लाभ तथा सामाजिक स्वीकृति शामिल हो । निस्संदेह उपेक्षित जल संसाधनों का सही उपयोग तथा उनका सुप्रबंधन एक टिकाऊ व जिम्मेदार मात्स्यिकी को दृढ़ आधार प्रदान करेगें ।

डा. एस. अय्यप्पन, उप महानिदेशक (मात्स्यिकी) के प्रति आभारी हूँ जो इस कार्यशाला के आयोजन हेतु सदैव प्रोत्साहित करते रहे एवं इस कार्यशाला में उपस्थित हो कर हमारा मार्गदर्शन भी किया । साथ ही मैं अपना आभार डा. एस. ए. एच. आबिदी, डा. एस. एन. द्विवेदी, डा. एम. वाई. कमाल, डा. पी. वी. देहाद्राय, डा. वी. आर. चित्रांशी, डा. एम. सिन्हा तथा डा. नरेश चन्द्र गौतम के प्रति भी व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपनी व्यस्तता के बावजूद इस कार्यशाला में भाग लिया ।

इस अवसर पर उन सभी व्यवसायिक संगठनों को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस कार्यशाला को सफल बनाने हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की है ।

कार्यशाला में सम्मिलित शोध-पत्रों के समायोजन से एक विषेश अंक प्रकाशित किया जा रहा है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह प्रकाशन मत्स्य एवं मात्स्यिकी से जुड़े व्यक्तियों के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होगा । मैं इस राष्ट्रीय कार्यशाला से संबद्ध सभी लोगों को पुनः बधाई एवं शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ ।

के. के. वास
निदेशक

डा. एस. अय्यप्पन
उप महानिदेशक (मत्स्य)
Dr. S. AYYAPPAN
Deputy Director General (Fisheries)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन - II
पूसा, नई दिल्ली 110 012
INDIAN COUNCIL OF AGRICULTURAL RESEARCH
KRISHI ANUSANDHAN BHAVAN-II
PUSA, NEW DELHI 110 012

प्रावकथन

अन्तर्स्थलीय मत्स्योपादन का निरंतर बढ़ता ग्राफ देश के लिए एक शुभ एवं सुखद संकेत हैं। पिछले पाँच दशको मे 0.22 मिलियन टन जैसे नगण्य मछली उत्पादन से आरम्भ कर 3.40 मिलियन टन तक का लम्बा सफर मछली उत्पादन क्षेत्र की एक बड़ी उपलब्धि हैं। वर्तमान काल मे देश के कुल मत्स्योपादन में अन्तर्स्थलीय क्षेत्र विशेषकार नदी तथा उसके सहयोगी परितंजो का योगदान करीब 54% हैं ।

भविष्य मे मछली के जनन द्रव्यों एंव जैव-विविधता का संरक्षण जीव-प्रोटीन की प्राप्ति हेतु व उत्तम किस्मो की मत्स्य प्रजातियो के उत्पादन में वृद्धि, एंव माल्स्यिकी स्थिरता के लिए अन्तर्स्थलीय क्षेत्र विशेषकर नदी तथा उसके सहयोगी परितंजो का प्रबंधन नितांत आवश्यक है ।

यह एक हर्ष का विषय है कि अन्तर्स्थलीय माल्स्यिकी अनुसंधान एंव विकास : वर्तमान अवस्था तथा भावी दिशाएँ विषय पर जिसकी राष्ट्रीय कार्यशाला 15-16 मार्च 2004 को इलाहाबाद में आर्योजित की गई थी पर केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय माल्स्यिकी अनुसंधान बैरकपुर एक विशेष अंक प्रकाशित कर रही है । आशा है कि इस विशेष अंक की विषय वस्तु मछली उत्पादन क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए लाभकारी होगी ।

शुभ कामनाओं सहित ।

एस. अय्यप्पन

(एस. अय्यप्पन)

Ph : (O) 2584 6738 (R) 2584 3190 FAX: 00-91-11-2584 1955
e-mail ayyappans@icar1.nic in & s_ayyappans@yahoo.com

आभार

हिन्दी कक्ष की ओर से

संस्थान के निदेशक डॉ. कुलदीप कुमार वास के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने संस्थान के नदीय प्रभाग के मुख्यालय इलाहाबाद में वैज्ञानिक क्षेत्र में हिन्दी को बढ़ावा देने हेतु आयोजित वैज्ञानिक कार्यशाला **अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान एवं विकास-वर्तमान अवस्था एवं भावी दिशायें** में प्रस्तुत अनुसंधानात्मक लेखों के संकलन को **अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी-सिंहवालोकन** के रूप में प्रकाशित करने का दायित्व हमें सौंपा एवं समय समय पर आवश्यक दिशा-निर्देश प्रदान किए हैं।

मैं, **डॉ. नर्वदा प्रसाद श्रीवास्तव, प्रधान वैज्ञानिक** के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने विशेष रूचि ले कर इस प्रकाशन में संकलित वैज्ञानिक लेखों के सम्पादन में आवश्यक सुधार किए हैं । डॉ. श्रीवास्तव इन वैज्ञानिक लेखों के प्रकाशन कार्य में प्रारम्भ से ले कर अन्त तक विशेष रूप से जुड़े रहें एवं जिनके सहयोग के बिना यह कार्य सम्पन्न करना कठिन हो जाता ।

श्री मो. कासिम, तकनीकी अधिकारी, **सुश्री सुनीता प्रसाद**, हिन्दी अनुवादक एवं **श्री जेम्स मुर्मू,** हिन्दी अनुवादक के प्रति भी आभारी हूँ जिन्होंने इस प्रकाशन में संकलित लेखों का हिन्दी कम्पोजिंग कार्य किया, विशेषकर **श्री मो. कासिम** के प्रति जिन्होंने हिन्दी कम्पोजिंग के अलावा प्रकाशन कार्य में भी सहायता प्रदान की । **श्री सुजीत चौधरी,** तकनीकी सहायक के प्रति भी अपना आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस प्रकाशन हेतु कवर डिजाइन किया। मैं उन सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति भी अभारी हूँ जो इस प्रकाशन से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड़े रहे हैं।

पी. आर. राव
सहायक निदेशक राजभाषा

विषय सूची

1.	नदीय मात्स्यिकी का बदलता स्वरूप - मणीरंजन सिन्हा	1
2.	भारत की नदियों में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों का बढ़ता प्रकोप - बी. सी. झा	6
3.	गंगा नदी में अवसाद एवं रीता रीता मछली में एच.सी.एच. तथा डी.डी.टी के अवशिष्ट का जमाव - एस. सामन्ता	12
4.	भारत में खारे पानी जलकृषि की वर्तमान अवस्था एवं भावी दिशाएं - बी. पी. गुप्ता	18
5.	विदेशी मछलियों का जलाशय मात्स्यिकी पर प्रभावः गोविन्द सागर जलाशय एक अध्ययन - विजय कुमार शर्मा	25
6.	पूर्वोत्तर में जलाशय मात्स्यिकीः वर्तमान स्थिति एवं संभावनायें - एन. पी. श्रीवास्तव	33
7.	कोशी नदी तंत्र का भू-आकृतिक अध्ययन - मनीष चन्द्र वर्मा	37
8.	गंगा नदी में जन्तु प्लवकों पर मौसम का प्रभाव - राघवेन्द्र प्रताप	53
9.	पर्वतीय नदियों में मात्स्यिकी का वर्तमान स्वरूपः एक अध्ययन - कृपाल दत्त जोशी	62

10. सुन्दरवन मंगल में मात्स्यिकीः क्षमतायें, समस्यायें, संभावनायें एवं चुनौतियाँ 70
- गणेश चन्द्र

11. हुगली-मातलह ज्वारनदमुख की हिल्सा मात्स्यिकी 83
- डी. नाथ

12. हुगली-मातलह ज्वारनदमुख की मात्स्यिकी 89
- एच. सी. कर्माकार

13. मिश्रित मत्स्य पालन अधिक उत्पादन के लिये वरदान 95
- धर्म नारायण मिश्र

14. अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी एवं एवं स्वास्थ्य प्रबंधन-विस्तृत चर्चा 102
- मानस कुमार दास

15. पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की खेती के साथ मत्स्य पालन की संभावनाएँ - एक सर्वेक्षण 112
- बी. के. द्विवेदी

16. इलाहाबाद में मोती सम्वर्द्धन की पर्याप्त संभावनायें 116
- बी. के. द्विवेदी

17. मीठे जल खेती का वर्तमान स्वरूप एवं चुनौतियाँ 125
- राधेश्याम

18. उत्तर प्रदेश के कुछ झीलों में तलछटीय जन्तु विविधता 143
- कृपाल दत्त जोशी

19. झारखण्ड में सामुदायिक तालाबों की मत्स्य पालन में भूमिका 148
- रजनी गुप्ता

20. जलकृषि एवं जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान 155
- हेमलता पन्त

21. हजारीबाग एवं मत्स्य विविधता 161
- वन्दना श्रीवास्तव

22. इको-कार्प हैचरी का सुगम संचालन एवं बीज उत्पादन तकनीक के नये आयाम 167
- सत्यदेव गुप्ता

23. देशी मांगुर मांगुर (क्लेरियस बैटट्रेकस) कैटफिश का सफल प्रेरित प्रजनन 171
- सी. एस. चतुर्वेदी

24. भारतीय प्रमुख विडाल मछलियों का प्रजनन एवं पालन 178
- सत्यदेव गुप्ता

25. मत्स्य के रक्त तथा ऊतक उपापचय स्तर पर निराहार रहने का प्रभावः एक अध्ययन 182
- नीरजा कपूर

26. भारत के छोटे जलाशयों में मात्स्यिकी की वर्तमान स्थिति एवं भावी संभावनायें 191
- प्रदीप कुमार कटिहा

27. अनुसंधान कार्यों में पुस्तकालय की सूचना सेवाओं का योगदान 198
- सीताराम मीणा

28. झारखण्ड राज्य में मत्स्य पालन समस्या एवं समाधान 204
- रमाकान्त सिंह

29. मलेरिया रोगवाहक नियंत्रण में लार्वाभक्षी मछलियों की भूमिका 214
- मानवेन्द्र त्रिपाठी

नदीय मात्स्यिकी का बदलता स्वरूप

मणीरंजन सिन्हा
पूर्व निदेशक
केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता-700120

भूमिका

आदिकाल से नदियाँ जीवन दायनी कही जाती हैं, क्योंकि समस्त प्रकार के विकास किसी न किसी रूप से इनसे जुड़े हुए हैं । समस्त जीव-जन्तु के विकास तथा उत्तरजीविता में जल की भूमिका सबसे प्रमुख है । अतः यह कहा जा सकता है समस्त मानव सभ्यता जल पर ही आधारित है । यही कारण है कि विश्व की सभी सभ्यताओं का विकास किसी न किसी प्रमुख नदी के किनारे हुआ है । लेकिन पिछले कुछ दशकों में जनसंख्या एवं बढ़ते उद्योग धंधों ने नदीय जल को मात्र दूषित ही नहीं किया अपितु इसका विवेकहीन दोहन भी हुआ है । मानव अतिक्रमण के इस बढ़ते स्वरूप के परिपेक्ष में विश्व की शायद ही कोई नदी बची है जिसमें विकार नहीं आया है । परिणाणस्वरूप ये नदियाँ अपना स्वभाविक चरित्र खो चुकी हैं । नदियों में आए पर्यावरणीय विकार मानव की सबसे बड़ी विफलता मानी जानी चाहिए । क्योंकि वह इस पुर्नजीवी संसाधन का यथोचित उपयोग नहीं कर पाया । भारत में नदियों की कुल लम्बाई 29000 कि.मी. है जिसमें लगभग 265 स्थानीय मत्स्य प्रजातियाँ वास करती हैं । लेकिन अविवेकशील उपयोग ने इन नदियों की जैव-विविधता को रौंद सा दिया है । यह तो सर्वविदित है कि हमारी नदियाँ नदी तल क्षेत्र से बह कर आने वाले समस्त पदार्थों हेतु अंतिम पड़ाव है । साथ ही ये नदियाँ विभिन्न कार्य हेतु साझी संसाधन भी हैं । अतः हाल के दशकों में नदीय मात्स्यिकी ने विभिन्न प्रकार के संकट को झेला है । परिणाम स्वरूप वर्तमान दौर में नदीय मात्स्यिकी के रूप में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने को मिला है । यह परिवर्तन मत्स्य प्रजातियों के प्रकार तथा संख्या दोनों में समान रूप से परिलक्षित होता है एवं सही मायने में आज नदीय मात्स्यिकी लाभकारी नहीं रह गयी है । वर्तमान में प्रति 1 कि.मी. नदी से औसतन 0.3 टन मछली ही प्राप्त हो रही है जो 50 के दशक में 1 टन थी ।

विभिन्न नदियों में मात्स्यिकी का बदलता स्वरूप

वर्तमान में गंगा नदी तंत्र से भारतीय कार्य मछलियों की औसत उपज 3 किलो/हे. (1995-98) रह गयी है जो वर्ष 1955-61 में 27 किलो/हे. थी । मछलियों के उत्पादन में ही मात्र कमी नहीं आयी है, अपितु पकड़ी जाने वाली मछलियों के प्रजातियों तथा आकार में भी उल्लेखनीय कमी आयी है । फरक्का बाँध के निर्माण के परिणामस्वरूप गंगा नदी के मध्य भाग में हिल्सा मछली का लगभग सफाया हो गया है। वर्तमान में गंगा नदी तंत्र से प्राप्त मत्स्य उत्पादन में छोटी मछलियों का योगदान सबसे अधिक है (60-65%) । इसके पश्चात विडॉल मछलियों का योगदान है (15-16%) । भारतीय कार्प मछलियाँ 10% या इससे भी कम हैं । गंगा नदी के ऊपरी भाग में इलाहाबाद से ऊपर विदेशी मूल की मछलियों जैसे कॉमन कार्प, सिल्वर कार्प, बिगहैड तथा मांसभक्षी अफ्रिकन मांगुर की उपस्थिति ने स्थिति को और भी संवेदनशील बना दिया है।

तेज धार वाली ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों में मत्स्य प्रग्रहण एक कठिन कार्य है । इस नदी तंत्र के ऊपरी भाग जैसे लोहित तथा सादिया आदि में *स्नोट्राऊट, महासीर, लोबियोडेरा* तथा *लेबियोडायक्युलस* आदि प्रमुख रूप से पायी जाती हैं, कालांतर में इन प्रजातियों का निश्चित तौर पर ह्रास हुआ है । इसके निचले भाग, डिब्रुगढ़ से धुबरी जो कभी भारतीय कार्प तथा विडॉल मछलियों के लिए प्रसिद्ध था, में अवांछित (45%) और छोटी मछलियों (25%) ने डेरा जमा लिया है । इस नदी तंत्र में जून से अक्टुबर के बीच सबसे अधिक मछलियाँ पकड़ी जाती हैं (वार्षिक उत्पादन का 45%) । लेकिन गौर करने वाली बात यह है कि इस उत्पादन का अधिकतर भाग (70-80%) अपरिपक्व है जिसे वर्षाकाल के तुरंत बाद प्रग्रहित कर लिया जाता है । साथ ही प्रजनक मछलियों को भी अधिक मात्रा में पकड़ लिया जाता है ।

महानदी की मात्स्यिकी में छोटी मछलियों की बहुलता (ऊपरी भाग में) एवं कार्प मछलियों की मध्यम भाग में पायी जाती हैं । पूर्व में पायी जाने वाली माहसीर *टौर मोसल महानदिकस, लेबियो फिम्बरीट्स* तथा झींगा (*मक्रोब्रेकियम मॉलकमसोनी*) की उपलब्धता में उल्लेखनीय कमी आयी है । इसी प्रकार हिल्सा मात्स्यिकी में भी कमी आयी है ।

गोदावरी तथा कृष्णा एवं इनकी सहायक नदियों में अनेकों बाँधों के निर्माण से मात्स्यिकी पर विपरीत प्रभाव पड़ा है । वैसे गोदावरी नदी के ऊपरी भाग(नासिक से नानडेड) सदैव न्यून रही है । लेकिन इसके मध्य भाग से कार्प तथा विडॉल मछलियों की कई प्रजातियों

का प्रग्रहण होता है । इस नदी के निचले भाग से विभिन्न प्रकार की विडॉल मछलियाँ(*ऑरिकथीस सिंघाला, सिलोनिया विल्डरेनी, पंगगेशियस तथा वालेगोअटु*) का शिकार होता है । इनके साथ लेबियो फिम्बरीट्स तथा झींगा (मक्रोब्रेकियम *मॉलकमसोनी*) भी पकड़ी जाती हैं । हिल्सा मछलियों के अभिगमन में बाँध बनने से रूकावट आयी है । गौर करने की बात यह है कि इस नदी में भारतीय कार्प मछलियों को लगभग 150 साल पहले प्रत्यारोपित किया गया था, लेकिन ये स्थापित नहीं हो पायी हैं, क्योंकि इनका शिकार यदा-कदा ही होता है ।

पुंटियस कोलस, पुंटियस डुबियस तथा विभिन्न प्रकार की महासीर मछलियाँ जो कावेरी नदी की स्थानीय प्रजातियाँ कही जाती हैं, की उपलब्धता तुंगभद्रा नदी जो कृष्णा की सहायक नदी है में देखी गयी है यानि इन प्रजातियों का स्थानांतरण हो गया है ।

कावेरी नदी को जैव-विविधता का एक उत्तम स्त्रोत माना जाता है, क्योंकि इसमे अनेक विशिष्ट मत्स्य प्रजातियाँ जैसे *पुंटियस कोलस, पुंटियस डुबियस, पुंटियस कर्नाटीकस* तथा *लेबियो आरिजा* आदि का वास है । इन मत्स्य प्रजातियों का इस नदी की मात्स्यिकी में एक विशिष्ट स्थान है एवं इनकी अधिकतम उपलब्धता होगाइनाक्कल के ऊपर पायी जाती हैं। इसके निचले भाग में, स्टेनली जलाशय के नीचे, *सिरहन्स सिरोसा* की मात्स्यिकी सबसे अधिक है । इसके साथ ही बड़े आकार की विडॉल तथा भारतीय कार्प प्रजातियाँ का भी प्रग्रहण प्रचुर मात्रा में होता है । पिछले कुछ वर्षों में कुछ विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियाँ जैसे कॉमन कार्प, सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प और तिलापिया ने भी अपना डेरा जमाना शुरू कर दिया है ।

सतलज एवं व्यास नदियाँ चूँकि शीत जल वाली हैं । अतः इनके ऊपरी भाग की मात्स्यिकी में शीतजलीय प्रजातियाँ (*लेबियो डेरो* तथा *लेबियो डायक्युलस*) की बहुलता रहती है । लेकिन मध्य तथा निचले भाग में बड़े आकार की विडॉल तथा कार्प मछलियाँ भी पायी जाती हैं । वर्तमान में इन नदियों की मात्स्यिकी में कॉमन कार्प का विशेष योगदान देखने को मिला है ।

भूतकाल में महासीर मछली का नर्मदा नदी की मात्स्यिकी में एक प्रमुख स्थान था । इसके साथ ही *लेबियो फिम्ब्रीट्स* तथा छोटे आकार की *रीता* मछलियों का भी विशेष योगदान था, विशेषकर नदी के मध्य भाग में । लेकिन हाल के वर्षों में महासीर मछली की मात्स्यिकी में उल्लेखनीय ह्रास देखने को मिला है । वर्तमान में इस नदी की मात्स्यिकी में भारतीय कार्प मछलियों का जो तालाबों से बहकर आयी हैं, का विशेष योगदान है । इस नदी पर श्रृंखला में बाँध बनाने की योजना है जो कालान्तर में मात्स्यिकी को अवश्य ही प्रभावित करेगी ।

नदियों की मात्स्यिकी को प्रभावित करने वाले कारक

उपरोक्त बातों से स्पष्ट है कि वर्तमान में भारत की नदियों की मात्स्यिकी एक संवेदनशील अवस्था में पहुँच गई है और समस्त नदियाँ अपना प्राकृतिक स्वरूप खो चुकी हैं । गंगा नदी पर केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान द्वारा वर्ष 1995-96 में किये गये विस्तृत अध्ययन (43 स्टेशनों में) से पता चलता है कि यद्यपि इस नदी के जल की गुणवत्ता में गंगा परियोजना के पश्चात सुधार आया है लेकिन मात्स्यिकी में गिरावट जारी है । इसके लिए निम्नलिखित कारण प्रमुख हैं :

- नदी के नितल में अत्यधिक बालू का जमाव ।
- अत्यधिक जल का निकास ।
- नदी की जल धारा में बदलाव ।
- असंतुलित मात्स्यिकी ।

तल क्षेत्र में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई से नदियों से हो रहे बालू के जमाव के साथ-साथ अत्यधिक जल का निकास नदीय मात्स्यिकी में गिरावट के मुख्य कारण प्रतीत होते हैं । दोनों ही कारणों से नदी की गहराई पर असर पड़ा है और यह आवश्यकता से अधिक उथला हो गया है । आंकड़ों से पता चलता है कि उद्गम से लेकर पटना तक इस नदी की मृदा में 90-98% तक बालू का जमाव है । बालू के अधिक आगमन से नदी का नितल लगभग बंजर बन गया है क्योंकि इसने पोषक तत्वों को जल में आने की प्रक्रिया को बाधित किया है जो उत्पादन के लिए अति आवश्यक है । पिछले 20 वर्षों में इलाहाबाद में गंगा नदी के जल स्तर में औसतन 4 मी. की कमी आई है, विशेषकर जुलाई से सितम्बर महीनों में जब जल का स्तर अधिकतम होता है । अतः जल के स्तर में कमी आने से जलीय पारिस्थितिकी के साथ जलीय जीव-जन्तुओं के वास स्थल को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया है । मछलियों के प्रजनन स्थल नष्ट हो गये हैं, विशेषकर उन प्रजातियों का जिन पर गंगा की मात्स्यिकी आधारित थी। जल स्तर में उल्लेखनीय कमी को मात्स्यिकी में फरक्का निर्माण के पश्चात उत्तरोत्तर वृद्धि (औसत वार्षिक मत्स्य उत्पादन 9,481 टन, 1966-75 से 44,453.8 टन, 1999-2000) इस तथ्य को और भी मजबूती प्रदान करता है ।

नदी तंत्र में मानवीय हस्तक्षेप का मात्स्यिकी पर प्रभाव का सबसे उपयुक्त उदाहरण फरक्का बाँध के बनने से पूर्व मध्य गंगा नदी के मात्स्यिकी में हिल्सा का योगदान 10% (1961) था जो वर्तमान में घट कर 1% से कम रह गया है । इसी प्रकार अन्य मत्स्य प्रजातियों जैसे माहसीर का विभिन्न नदियों में निरन्तर ह्रास हुआ है ।

अयुक्तिसंगत मात्स्यिकी भी प्रमुख कारण है नदियों में मात्स्यिकी के ह्रास का । अधिकतर यह होता है कि प्रजनक तथा तरूण मछलियों का शिकार कर लिया जाता है,जिसके परिणामस्वरूप नदियों में प्रग्रहण लायक मछलियाँ निरन्तर कम होती जा रही हैं ।

उपसंहार

यह संदेश से परे है कि नदियों में बढ़ते अतिक्रमण ने मात्स्यिकी को निश्चित रूप से प्रभावित किया है । अतः अगर समय रहते उचित कार्यवाही नहीं की गई तो अनेक मत्स्य प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा है । मानव जनित अतिक्रमण ने जलीय पारिस्थितिकी को विकृत कर दिया है,जो आने वाले दिनों में मत्स्य प्रजातियों के लिए खतरे का संकेत है । तत्काल उत्तम किस्म की मत्स्य प्रजातियों के विनाश की संभावना है जिसे अनदेखा नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे भविष्य में मछली पालन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा ।

नदियाँ चूँकि सांझे की संपत्ति है,अतः इनका बचाव कर पाना आसान नहीं है । साथ ही आज की परिस्थिति में नदियों में अधिक से अधिक उत्पादन हो पाना भी असंभव सा लगता है। अतः नदीय मात्स्यिकी प्रबन्धन हेतु संरक्षण पर विशेष जोर देने की आवश्यकता है ताकि जैव-विविधता को बचाया जा सके । यह कार्य तब संभव होगा जब पूरे नदी तंत्र में एक साथ प्रभावी कदम उठाये जायेगें । यथा,

- जल निकासी में नियंत्रण के साथ विभिन्न उपयोग हेतु नियंत्रण पद्धति को लागू करना ।
- जलीय पर्यावरण मानदण्डों का सख्ती से पालन ।
- जलीय गुणवत्ता को विकृत करने वाले कारकों का पता कर तत्काल उपाय ।
- जलीय जैव-विविधता के संरक्षण हेतु ठोस कदम ।
- राष्ट्रीय स्तर पर एक ऐसे आयोग का गठन जो नदी मात्स्यिकी के समस्त पहलुओं पर ध्यान रख सके ।
- पर्यावरण समस्याओं पर जन-साधारण को जागरूक करने की आवश्यकता,आदि ।

अतः समय आ गया है जब हमें उपरोक्त विषयों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए ताकि मात्र नदी मात्स्यिकी ही नहीं अपितु नदियों को भी विलुप्त होने से बचाया जा सके ।

भारत की नदियों में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों का बढ़ता प्रकोप

बी. सी. झा
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता-700120

सारांश

विगत कुछ वर्षों में भारत की नदियों के प्राकृतिक जैव-विविधता में अप्रत्याशित रूप से विखराव आया है । विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों का इन नदियों में प्रवेश इस कड़ी का एक नया आयाम है । मानव के बढ़ते अतिक्रमण ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है । एक ओर तो नदियों की मात्स्यिकी में उल्लेखनीय गिरावट देखने को मिल रही है वहीं विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों के प्रवेश से हमारी स्थानीय मत्स्य प्रजातियों के विलुप्त हो जाने का खतरा भी मंडरा रहा है, विशेष कर उन प्रजातियों का जिन पर नदीय मात्स्यिकी सदियों से आधारित है ।

इस संदर्भ में *सी.आई.एफ.आर.आई.* द्वारा किए गए अध्ययन से यह स्पष्ट है कि देश की समस्त प्रमुख नदियों यथा गंगा, यमुना, सतलज, गोमती, घाघरा, ब्रह्मपुत्र एवम् इसकी सहायक नदियाँ यथा पम्बा (केरल) आदि में अनेक प्रकार की विदेशी मूल की मछलियों ने मात्र अपनी उपस्थिति ही नही दर्ज करायी है अपितु कुछ ने तो पूर्ण रूप से स्थापित होकर नदी की स्वाभाविक मात्स्यिकी का निश्चित तौर पर प्रभावित भी किया है। उदाहरण के लिए वर्तमान में यमुना नदी की मात्स्यिकी में *कॉमन कार्प* का योगदान 45% से भी अधिक पाया गया है । कमोवेश पम्बा नदी केरल का भी यही हाल है ।

विदेशी मूल की जिन मत्स्य प्रजातियों ने हमारी नदियों में डेरा जमा लिया है अथवा जमाने का प्रयास कर रही हैं वे हैं -*कॉमन कार्प, सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प, बिगहेड, तिलापिया* एवम् अफ्रिकन मांगूर । वस्तुतः कॉमन कार्प की उपस्थिति तो लगभग हर नदी में है एवं सम्भावना है कि अन्य प्रजातियाँ भी कॉमन कार्प की राह पर चल सकती है । अतः निश्चित तौर

पर यह कहा जा सकता है कि आने वाले दिनों में स्थानीय मत्स्य प्रजातियाँ जो हमारी राष्ट्रीय धरोहर है के विलुप्त होने का खतरा है, जिस पर ध्यान देने की अविलम्ब आवश्यकता है ।

भूमिका

अन्य जीव जन्तुओं की तरह ही मत्स्य प्रजातियों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्थानांतरण करने की प्रथा आदि काल से ही प्रचलित रही है । मानव अपने उद्देश्य विशेष के लिए मत्स्य प्रजातियों का प्रत्यारोपण एक देश-से-दूसरे देश अथवा एक संसाधन से दूसरे संसाधन में करता आया है । कुछ देश जहाँ मत्स्य प्रजातियों की कम विविधता है यथा श्रीलंका (20 से भी कम) इस कार्य हेतु अत्यधिक उदार है । लेकिन भारत जैसे देश में जिसकी जैव-विविधता अत्यंत ही समृद्ध है, में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों के प्रत्यारोपण में विशेष सतर्कता बरतने की आवश्यकता है क्योंकि यह अपने स्थानीय प्रजातियों के हित में नही है । विश्व खाद्य संगठन रोम के आकलन के अनुसार लगभग 300 मत्स्य प्रजातियाँ एक देश से दूसरे देश में प्रत्यारोपित की जा चुकी है ।

वैसे तो मत्स्य प्रजातियाँ विभिन्न प्रकार के जल संसाधनों में पायी जाती है क्योंकि इनका विस्तार सर्वव्यापी है । लेकिन नदियों में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों के प्रवेश को न्यायसंगत नहीं माना जा सकता क्योंकि नदियाँ जैव-विविधता एवम् स्थानीय मूल की मत्स्य प्रजातियों का असीम भंडार संजोये हुए हैं जो हमारी राष्ट्रीय धरोहर है । अतः इन नदियों की पारिस्थितिकी को अक्षुण्ण बनाए रखना प्रथम दायित्व है । परन्तु विरोधाभाष तो यह है कि हाल के वर्षों में अनेक प्रकार की विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों ने विभिन्न नदियों में अपनी उपस्थिति को दर्ज कराया है जिसे एक अशुभ संकेत माना जाना चाहिए क्योंकि इससे हमारे स्थानीय मत्स्य प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा है । वैसे भी विश्व भर में जितनी जैव-विविधता अब लुप्त हो चुकी है उसका लगभग पांचवा भाग अन्तःस्थलीय मत्स्य प्रजातियों का है । मछलियों के निवास स्थल के विनाश के साथ-साथ विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों के प्रवेश को भी इसके लिए विशेष रूप से जिम्मेदार पाया गया है ।

यद्यपि भारत मत्स्य प्रजातियों की उपलब्धता में काफी समृद्ध है इसके बावजूद लगभग 300 विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों ने इस देश में प्रवेश पा लिया है । वैसे तो इन संख्या का अधिकतर भाग रंग-विरंगी मछलियों का है लेकिन कुछ प्रजातियाँ मत्स्य पालन को सुदृढ़ बनाने हेतु भी प्रत्यारोपित की गई हैं । भारत में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों का आयात सामान्यतः स्थिर जलों के लिए किया गया है परंतु कालान्तर में इनमें से अनेकों ने नदियों में प्रवेश कर लिया है जो एक चिंता का विषय है । कुछ प्रजातियाँ तो अनौपचारिक रूप से, चोरी छुपे, भी इस देश में आ गयी हैं एवं धीरे-धीरे समस्या बनती जा रही हैं ।

भारत में प्रत्यारोपित विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियाँ

भारत में मुख्यतः मत्स्य प्रजातियों का प्रत्यारोपण रंग-विरंगी मछलियों का व्यवहार, पालन तंत्र में मजबूती एवं मच्छर निवारण आदि कारणों से किया गया है (सारणी-1)

सारणी- 5 भारत में मत्स्य प्रजातियों का प्रत्यारोपण

मत्स्य प्रजातियाँ	प्रत्यारोपण के कारण
1) लेकस्टस रेटीकुलेट्स 2) नॉथोब्रेक्स 3) गमबूसिया एफीनीस	स्थिर जल में पलने वाले मच्छरों के निवारण हेतु
4) सिल्वर कार्प 5) कॉमन कार्प 6) ग्रास कार्प	मत्स्य पालन में उत्कृष्टता लाने के लिए
7) तिलैपिया मोजेबिक्स	छोटे जलाशयों विशेषकर,दक्षिण भारत,में मत्स्य उत्पादन बढ़ाने के लिए
8) तिलैपिया नीलोटीक्स	मत्स्य पालन हेतु, औपचारिक सरकारी आज्ञा के बिना
9) बिगहेड (एरीस्टिकथीस नोबीलीस)	बाढ़-बहुल प्राकृतिक झीलों का उत्पादन बढ़ाने हेतु औपचारिक सरकारी आज्ञा के बिना
10) पंगेसियस पंगेसियस	भेरी,प.बंगाल में पालन हेतु-औपचारिक सरकारी आज्ञा के बिना
11) अफ्रिकन मांगूर	अनौपचारिक रूप से पालन हेतु
12) ट्राउट दो (प्रजातियाँ)	भारत की शीत जलीय मात्स्यिकी को प्रोत्साहित करने हेतु

भारत की विभिन्न नदियों में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों की अवस्था

गंगा : गंगा नदी (फरूक्काबाद से भागलपुर) में विदेशी मूल की दो प्रजातियों को है यथा कॉमन कार्प (100-500मी.मी.,120-1500 ग्राम) एवं सिल्वर कार्प (150-250 ग्राम, 210-2800 ग्राम) । विशेष बात यह देखने को मिली है कि गंगा नदी के मध्य तथा निचले भाग में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियाँ अब तक नही पायी जाती हैं । लेकिन इलाहाबाद के ऊपर ये प्रजातियाँ विशेषकर कॉमन कार्प आम हैं एवम् लगभग रोज ही पकड़ी जा रही हैं ।

यमुना : गंगा की सहायक यमुना नदी तो विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों के लिए उपयुक्त संसाधन प्रतीत हो रही है । यमुना नदी के प्रत्येक भाग (फरीदाबाद से इलाहाबाद) में अनेक प्रकार की विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियाँ उपलब्ध हैं जैसे कॉमन कार्प, सिल्वर कार्प, बिगहेड, तिलैपिया तथा अफ्रिकन मंगूर । लेकिन इन सब में कॉमन कार्प के उत्पादन में लगातार वृद्धि हो रही है एवं अनेक स्थानों पर हो रहे मात्स्यिकी में इसका योगदान 45-50% तक है यानी आर्थिक रूप से प्रग्रहित की जाने वाली मछलियों में इसकी अहम भूमिका है । यह इस बात का भी द्योतक है कि इस नदी में यह प्रजाति पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी है । यमुना नदी में विभिन्न आकार तथा भार (100-500 मी.मी. तथा 110-530 ग्राम) की कॉमन कार्प देखी गयी है । दिल्ली स्थित यमुना नदी में वरीराबाद तथा ओखला क्षेत्रों से तिलैपिया मछली का प्रग्रहण एक आम बात है एवम् कुल मात्स्यिकी में इसका योगदान 8-10% तक पाया गया है । यमुना नदी के अनेक स्थान में तो मात्र कॉमन कार्प का ही प्रग्रहण होते देखा गया है । इस नदी के ओखला क्षेत्र से अफ्रिकन मांगूर का काफी प्रग्रहण किया गया है।

घाघरा : घाघरा गंगा नदी की एक प्रमुख सहायक नदी है । इस नदी के बरहजंगन एक दोहोरी घाट क्षेत्र से सिल्वर कार्प एवम् कॉमन कार्प मछलियों का प्रग्रहण आम है एवम् ये वर्ष के लगभग हर महीने में उपलब्ध हैं ।

राप्त्प : राप्ती नदी के गोरखपुर क्षेत्र में बिगहेड मछली का प्रग्रहण आम बनता जा रहा है क्योंकि इसका प्रग्रहण लगभग रोज ही होता है लेकिन इनकी संख्या अन्य प्रजातियों की तुलना में बहुत अधिक नहीं है । ऐसा लगता है कि ये मछली नेपाल के रास्ते भारत में प्रवेश की है ।

गोमती : गोमती नदी (सुल्तानपुर से जौनपुर) में सिल्वर कार्प एवम् कॉमन कार्प के प्रग्रहण में निरंतर वृद्धि हो रही है ।

सतलज : सतलज नदी की मात्स्यिकी में कॉमन कार्प एवम् सिल्वर कार्प की उपस्थिति एक आम बात है और वर्ष के प्रत्येक महीने में इनका प्रग्रहण होता है । इस नदी से प्रग्रहित वार्षिक मात्स्यिकी में कॉमन कार्प का योगदान 12-30% तक देखा गया है ।

बंगाल की नदियाँ : बंगाल में स्थित कंसावती, दामोदर, चुरनी, रूपनारायण आदि नदियाँ जो गंगा की सहायक नदियाँ हैं, में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों का अभी तक अवलोकन नही किया जा सका है, मात्र दामोदर को छोड़कर । दामोदर नदी में कॉमन कार्प की उपस्थिति देखी गई है लेकिन इसका मात्स्यिकी में विशेष योगदान नही है ।

पम्बा (केरल): पम्बा नदी से पकड़ी जाने वाली मत्स्य प्रजातियों के विश्लेषण यह पाया गया है कि इस नदी में कई प्रकार की विदेशी मूल की मछलियों ने अपना डेरा जमा लिया है । कॉमन कार्प, ग्रास कार्प, तिलैपिया एवम् अफ्रिकन मंगूर के प्रग्रहण में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है ।

कावेरी : (तमिलनाडू) कावेरी नदी में स्थित स्टेनली जलाशय के निचले भाग से कॉमन कार्प एवम् तिलैपिया का निरंतर प्रग्रहण हो रहा है एवम् यह सिलसिला कई वर्षों से चल रहा है ।

स्वर्णरेखा : स्वर्णरेखा नदी के गेताल सूद जलाशय में राँची से नीचे तिलैपिया मछली की उपस्थिति देखी गई है जो शायद गेताल सूद जलाशय से निकल कर आती है क्योंकि इस जलाशय में तिलैपिया का प्रत्यारोपण किया गया है ।

सारणी 2 : भारत के विभिन्न नदियों में विदेशी मूल की मछलियाँ : एक नजर

मत्स्य प्रजाति	नदियाँ	मात्स्यिकी अवस्था	वर्ष
कॉमन कार्प	गंगा, यमुना, सतलज, घाघरा, राप्ती, गोमती दामोदर, पम्बा, कावेरी	दिन विशेष की मात्स्यिकी में 8-50% तक का योगदान	2002-2004
सिल्वर कार्प	गंगा, यमुना, सतलज, पम्बा	दिन विशेष की मात्स्यिकी में विशेष योगदान केवल पंजाब नदी में पाया गया है। 18-23%	2000-2004
ग्रास कार्प	यमुना, पम्बा	यदा-कदा ही पायी जाती हैं। दिन विशेष की मात्स्यिकी में 18-23% तक ।	2003-2004
बिगहेड	राप्ती, घाघरा	दिन विशेष की मात्स्यिकी में 15-25%	2003-2004
तिलैपिया	यमुना, कृष्णा, पम्बा, स्वर्णरेखा	स्थान विशेष एवम् दिन विशेष की मात्स्यिकी में 8-12 % तक	2003-2004
अफ्रिकन मांगुर	यमुना, पम्बा	विरले ही मिलते हैं ।	2002-2003

उपसंहार

वर्तमान अध्ययन से पता चलता है कि भारत की अधिकतर छोटी-बड़ी नदियाँ वर्तमान में किसी-न-किसी प्रकार की विदेशी मूल की मत्स्य प्रजाति के चपेट में आ चुकी है जो जैव-विविधता के दृष्टिकोण से उचित नही है । हमारी नदियों में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों के बढ़ते स्वरूप ने परम्परागत मात्स्यिकी को निश्चित तौर पर बाधित किया है । अति मांस भक्षी अफ्रिकन मांगुर यद्यपि कुछ नदियों से यथा यमुना एवम् पम्बा से पकड़ी गई है,परन्तु अभी तक ये स्थापित नही हो पाई है ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि छोटे आकार के मछलियों का अभी तक प्रग्रहण नहीं हो पाया है ।

हमारी नदियों में विदेशी मूल की मत्स्य प्रजातियों का बढ़ता प्रकोप एक चिन्ता का विषय है एवम् इस दिशा में अविलम्ब प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है । अन्यथा हमारी स्थानीय मत्स्य प्रजातियाँ,विशेषकर आर्थिक दृष्टिकोण से उत्तम किस्म की,अवश्य ही लुप्त हो जाएगी,ऐसी अंदेशा है ।

गंगा नदी में *अवसाद* एवं *रीता रीता* मछली में एच.सी.एच. तथा डी.डी.टी. के अवशिष्ट का जमाव

एस. सामन्ता
केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता-700120

सारांश

गंगा नदी के ज्वारनदमुखी क्षेत्र के कृषि प्रभावित समुद्रगढ़ एवं औद्योगिक क्षेत्र त्रिवेणी से प्राप्त *अवसाद* एवं रीता रीता मछलियों में एच.सी. तथा डी.डी.टी. के अवशिष्ट के जमाव का अध्ययन किया गया । *कीटनाशकों से प्रदूषित अवसादों* के संसर्ग में अधिक समय तक रहने के कारण बड़ी आकार वाली मछलियों में इन कीटनाशकों के अवशिष्ट अधिक थे (एच.सी.एच.4.2-27.8 तथा डी.डी.टी. 8.8-27.5 पी.पी.बी.) जबकि छोटी मछलियों में यह स्तर कम (एच.सी.एच. 2.0-4.7 तथा डी.डी.टी. निम्न से 5.3 पी.पी.बी.) था । त्रिवेणी से प्राप्त अवसाद के नमूनों में अवशिष्ट की मात्रा (एच.सी.एच. 28.3 पी.पी.बी. तथा डी.डी.टी. 778 पी.पी.बी.) समुद्रगढ़ से अधिक (एच.सी.एच. 2.3 पी.पी.बी. तथा डी.डी.टी. 480 पी.पी.बी.) था ।

मूल शब्द : रीता रीता, एच.सी.एच., डी.डी.टी., गंगा, हुगली ज्वारनदमुख ।

भूमिका

आज कृषि एवं जन-जीवन के स्वास्थ्य के संबंध में कीटनाशकों की भूमिका तेजी से बदल रही है । एक दशक पहले केवल ऑरगेनोक्लोरिन कंपाउन्ड, एच.सी.एच. तथा डी.डी.टी. का ही प्रयोग किया जाता था क्योंकि कम लागत में इससे अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता था (पोस्टल,1988 एवं गोल्डबर्ग,1991 के सौजन्य से) । तालिका -1 में इन कीटनाशकों का उत्पादन तथा भारत में इनके उपयोग को दिखाया गया है । इसके अनुसार इन कीटनाशकों का उपयोग देश में धीरे-धीरे कम होता जा रहा है । कई कीटनाशक जैसे अल्ड्रीन, एड्रीन, हेप्टाक्लोर एवं एच.सी.एच. का प्रयोग कानून द्वारा वैध नही है और डी.डी.टी. (कृषि हेतु प्रतिबंधित) एवं लिन्डेन का प्रयोग भी सीमित कर दिया गया है । पर इन यौगिकों के माध्यम ाष्प घनत्व, लिपोफिलिसिटी गुण एवं इनके अवशिष्टों के दीर्धस्थायी प्रभाव के कारण ये विश्व के कोने-कोने में पाये जाते हैं । उष्ण कटिबंधीय देशों में भी इन यौगिकों के लगातार प्रयोग से जन-जीवन के स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा असर पड़ा है। (तानाबे व अन्य,1990, कुट्ज व अन्य, 1991 तथा भटनागर व अन्य,1992 के सौजन्य से) ।

जल इकाइयों में वर्षा तथा भूमि अपक्षय के कारण कीटनाशकों का जमाव होता रहता है तथा इस प्रकार ये पर्यावरण के स्त्रोतों में भी जमा हो जाते हैं । इन कीटनाशकों के प्रभाव से संबंधित अब तक बहुत सारे अध्ययन हो चुके हैं तथा अनुसंधानकर्ताओं ने काफी कार्य भी किया है । (जोशी, 1985,1986, महापात्र,1995, विरैया व दुर्गा प्रसाद,1996) पर फिर भी मछली में उपस्थित कीटनाशकों एवं इनके अवशिष्टों के जमाव से संबंधित अध्ययन उपयुक्त रूप से उपलब्ध नहीं है । प्रस्तुत लेख में गंगा नदी के ज्वारनदमुख क्षेत्र के अवसाद एवं मछलियों में कीटनाशकों (डी.डी.ई.,डी.डी.टी. तथा γ-एच.सी.एच.) के अवशिष्ट के जमाव से संबंधित जानकारियाँ दी गई हैं ।

प्रयोग विधि

इस अध्ययन में गंगा नदी के ज्वारनदमुखी क्षेत्र के अंतर्गत समुद्रगढ़ केन्द्र, जो कोलकाता से 130 कि.मी.की दूरी पर है तथा दूसरा स्थल औद्योगिक क्षेत्र, त्रिवेणी,जो कोलकाता से 30 कि.मी. दूर है, को लिया गया है । त्रिवेणी क्षेत्र में शहर का कचरा तथा आसपास स्थापित औद्योगिक इकाइयों से होने वाले बहिःस्त्रावों का प्रवाह होता है । यहाँ कीटनाशकों के प्रभाव को जानने के लिए स्थानीय रूप से आसानी से उपलब्ध मछली *रीता रीता* को लिया गया क्योंकि इसका अभिगमन कम होता है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में अध्रुवीय पदार्थ आसानी से मछलियों द्वारा अवसादों से अवशोषित

कर लिए जाते हैं । चूँकि ऑरगेनोक्लोरिन वर्ग के कीटनाशक अध्रुवीय होते हैं और *रीता रीता* प्रजाति की मछलियाँ मुख्यतः अवसादों के क्षेत्र में पाई जाती हैं इसलिए इस प्रजाति को अध्ययन के लिए उपयुक्त माना गया ।

इस प्रयोग में कई चरण हैं-सबसे पहले नमूनों का संग्रहण, निष्कर्षण, परिशोधन एवं पहचान । इसके लिए एक निश्चित आकार के 5 रीता रीता मछलियों के मांस को इकट्ठा किया गया । फिर इसे पीस कर (5 ग्रा.) सोडियम सल्फेट के पाउडर में मिलाया गया । इसके बाद 1 ग्रा. सक्रिय चारकोल एवं 1 ग्रा. प्लोरिसिल मिलाकर इस मिश्रण को निष्कर्षण करने के लिए उसे 500 मि.ली. वाले सॉक्सेलेट यंत्र में लिया गया । कीटनाशकों को अलग करने के लिए हेक्सॉन में 10% एसीटोन मिलाया गया । चार घंटे सॉक्सेलेटिंग के बाद इस द्रव को सघन करके केवल 10 मि.ली. तक रखा गया ।

दूसरे परिक्षण में नदी के किनारों एवं नदी के बीच से प्राप्त अवसादों को एक साथ मिलाकर उसे सुखाया गया । इस मिश्रण में से 50 ग्रा. अवसाद को 0.5 ग्रा. सक्रिय चारकोल, 0.5 ग्रा. प्लोरिसिल तथा 10 ग्रा. एनहाइड्रोस सोडियम सल्फेट में मिलाया गया । अब इस मिश्रण को फिर से निष्कर्षण यंत्र में डाला गया ।

इसके बाद प्राप्त अवशिष्ट को गैस-लिक्विड क्रोमैटोग्राफ (हिवलेट पैकर्ड मॉडल 5890) में डाला गया जिसके साथ 3390 ए इंटिग्रेटर एवं ई.सी.डी. (Ni^{63}) संसूचक लगा था । इस यंत्र में नली की लम्बाई 6 फीट और इसकी भीतर का व्यास 2 मि.मी. था । इसमें उपस्थिति विभिन्न भागों के तापमान को निम्नलिखित रूप से नियंत्रित किया गया:-

संसूचक - 300^0 सेंटीग्रेड

इन्जेक्टर - 250^0 सेंटीग्रेड

ओवन - 220^0 सेंटीग्रेड

इसमें उपस्थित गैस आयोलार ग्रेड $1N_2$ का उपयोग किया गया जिसका दबाव 40 पी.एस.आई. था ।

परिणाम एवं विवेचना

समुद्रगढ़ एवं त्रिवेणी से लिए गए नमूनों में उपस्थित अवशिष्टों का औसत (γएच.सी.एच. और 4,4' - डी.डी.टी. तथा इनके डिहाइड्रोहेलोजेनेटेड मेटाबोलाइट, 4,4' - डी.डी.ई.) को तालिका-2 में दिखाया गया है । रीता रीता मछलियों में उपलब्ध अवशिष्टों के आंकड़े से यह पता चलता है कि स्थान चाहे जो भी हो, बड़ी आकार वाली मछलियों में डी.डी.टी. के अवशिष्टों की मात्रा अधिक थी । इसी प्रकार समुद्रगढ़ से प्राप्त बड़ी मछलियों में γ-एच.सी.एच. के अवशिष्ट अधिक थे । इसका कारण था कीटनाशको से प्रदूषित अवसादों के संसर्ग में अधिक समय तक मछलियों का रहना । इन दोनों स्थानों से प्राप्त मछलियों में जमे अवशिष्टों में 4,4' - डी.डी.टी. का स्तर अधिक था । चूँकि त्रिवेणी के जल में शहर से होने वाले बहिःस्त्राव की मात्रा अधिक होती है तथा जन-जीवन के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए डी.डी.टी. का प्रयोग अभी भी किया जाता है । इसलिए 4,4' - डी.डी.टी. का स्तर यहाँ के अवसादों में अधिक पाया गया ।

दूसरे अध्ययनों की तुलना में इस क्षेत्र की मछलियों में γ एच.सी.एच. और 4,4' - डी.डी.टी. के अवशिष्टों की मात्रा कम देखी गयी (जोशी,1995 के सौजन्य से) । रमेश व अन्य, 1992 के अनुसार भारत में पी.एच.सी.एच. का उपयोग दूसरे देशों की तुलना में अधिक होने के बावजूद मछलियों में इन कीटनाशकों के अवशिष्टों की उपलब्धता एक समान है । इसका कारण है जल में अधुलनशील होने के कारण जल इकाइयों में इसकी उपलब्धता कम पाई जाती है । पर यह नही कहा जा सकता है कि इनकी उपलब्धता से मछलियों के प्रजनन एवं जैव-विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता हैं । अतः हमें जन-जीवन के स्वास्थ्य तथा एच.सी.एच. के प्रयोग से होने वाली दूसरी हानियों को ध्यान में रखते हुए इस दीर्घकालीन प्रभाव वाले कीटनाशकों का प्रयोग बंद कर देना चाहिए ।

आभार

लेखक अपने इस लेख के लिए निदेशक, केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता का आभारी है जिन्होंने उपर्युक्त अनुसंधान कार्य में हर प्रकार से सहयोग दिया । साथ ही लेखक सुश्री सुनीता प्रसाद, तकनीकी सहायक (हिन्दी), केन्द्रीय

अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर,कोलकाता एवं श्री विवेकानन्द त्रिपाठी, एस.आर.एफ नदीय प्रभाग, केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान,इलाहाबाद का भी आभारी है जिन्होंने इस शोधपत्र के निर्माण में अपना सहयोग दिया ।

संदर्भ

भटनागर,वी.के., पासेल,जे.एस., वारिया,एम.आर.वेंकैया,के., शाह,एम.पी.और,कश्यप,एस.के.1992 : *बुल.एनवायरन. कॉनटेम.टोक्सिकोल.*,48 : 302-307 ।

गोल्डबर्ग,ई.डी. 1991 : *साइन्स.टोटल एनवायरन.*,100 : 17-28 ।

जोशी,एच.सी. 1985 : *प्रोसीडिंग.नेशनल सेमिनार.पोल्युसन कंट्रोल एण्ड एनवायरनमेंट मैनेजमेंट* ,: 93-96 ।

जाशी,एच.सी.1986 : *प्रोसीडिंग. सिम्पोजियम. पेस्टीसाइड. रेसिडियु. एण्ड एनवायरमेंट पोल्युसन,* : 93-96 ।

महापात्र,एस.पी.गाजभिये,वी.टी.,अग्निहोत्री,एन.पी.और रैना,एम.1995 : *एनवायरनमेंटलिस्ट,* 15 : 41-44 ।

पोसेल,एस. 1988 : *एनवायरन.साइन्स.टेक्नोलॉजी.*,22 : 23-25 ।

रमेश,ए.तानाबे,एस.कानन,के., सुब्रमनियम,ए.एन.कुमारन,पी.एल.और तातसुकावा,आर. 1992 : आरकिओलॉजिकल.एनवायरनमेंट.कॉनटेमिनेशन.*टोक्सिकोल.*, 23 : 26-36 ।

तानाबे,एस.गोनडायरा,एफ.,सुब्रमनियम,ए.एन.रमेश,ए.,मोहन,डी और कुमारन, पी. वेनुगोपालन, वी. के. और तातसुकावा, आर. 1990 : जे.एग्रीकल्चर. फूड केमिकल., 38 : 899-903 ।

विरैया, के.और दूर्गा प्रसाद, एम. के., 1996 : इकोलॉजी. एनवायरन. एण्ड कॉन्स., 2 : 83-86 ।

वालिया,एस.1997 : पेस्टीसाइड.रिसर्च जनरल.,9 (2) : 141-143 ।

तालिका - 1. भारत में एच.सी.एच.,डी.डी.टी., एवं कीटनाशकों का कुल उत्पादन (हजार टन में)

वर्ष	एच.सी.एच.	डी.डी.टी.	कुल कीटनाशक	
	उत्पादन	उत्पादन	उत्पादन	व्यवहृत
1985-86	25.6	5.2	54.9	-
1989-90	28.4	7.5	65.8	-
1994-95	32.0	4.3	90.8	80.0
1996-97	17.6	4.1	96.3	66.7
1998-99	0	3.4	89.1	57.2
1999-2000	-	-	88.7	54.1

स्त्रोत : वार्षिक प्रतिवेदन,रसायन एवं उर्वरक मंत्रालय,रसायन एवं पेट्रो-रसायन विभाग, भारत सरकार,नई दिल्ली और वालिया 1997 के सौजन्य से ।

तालिका - 2. रीता रीता में 4,4'-डी.डी.टी.,4,4'-डी.डी.ई.और γ-एच.सी.एच. अवशिष्ट (μg/ या पी.पी.बी.) का औसत मान औसत मान तथा समुद्रगढ़ और त्रिवेणी से प्राप्त अवसाद

		4,4'-डी.डी.टी.	4,4'-डी.डी.ई.	कुल (4,4'-डी.डी.टी.4, 4'-डी.डी.ई.)	γ-एच.सी.एच.
रीता रीता के नमूनें					
समुद्रगढ़	20 ग्रा. भार वाले	5.3	बी.डी.एल.	5.3	2.0
	100 ग्रा.भार वाले	8.8	25.3	34.1	27.8
त्रिवेणी	20 ग्रा. भार वाले	बी.डी.एल.	12.1	12.1	4.7
	100 ग्रा. भार वाले	27.5	17.9	45.4	4.2
अवसाद के नमूनें					
समुद्रगुप्त		480	बी.डी.एल.	480	2.3
त्रिवेणी		778	बी.डी.एल.	778	28.3

बी.डी.एल. का अर्थ है - वह स्तर जो जॉच परीक्षण यंत्र द्वारा भी देखे या परखे जाने वाली मात्रा से कम है ।

भारत में खारेपानी जलकृषि की वर्तमान अवस्था एवं भावी दिशाएं

बी. पी. गुप्ता एवं एम. मुरलीधर
केन्द्रीय खारा जलजीव पालन अनुसंधान संस्थान
75, सन्थोम हाई रोड, राजा अण्णामलैपुरम, चेन्नई-600 028

सारांश

तटीय क्षेत्रों में जलकृषि महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि बनी हुई है । खारेपानी में व्यवसायिक झींगा पालन के आरंभ होने से भारतीय जलकृषि में तीव्रता से वृद्धि हुई । देश में पारम्परिक खारेपानी जलकृषि के लंबे इतिहास के बावजूद, टाइगर झींगा पालन हेतु खारेपानी जलकृषि की आधुनिक पद्धतियाँ आवश्यक हैं । 1.2 मिलियन हे. खारेपानी क्षेत्र में लगभग केवल 0.152 मिलियन हे. क्षेत्र पालन हेतु उपयोग किया जा रहा है । वर्ष 1990-91 से झींगा पालन में तेजी से वृद्धि हुई तथा 2002-03 के दौरान 234% विस्तार हुआ तथा उत्पादन में 325% वृद्धि हुई । यद्यपि प्रक्षेत्रों की अनियामक व योजनारहित वृद्धि के कारण कुछ तटीय क्षेत्रों में पर्यावरणीय परिवर्तन भी हुए । पर्यावरणीय परिवर्तनों का प्रकार व मात्रा पालन-विधि, उत्पादन-स्तर तथा तटीय क्षेत्र के अभिलक्षण पर निर्भर होती है । जलकृषि हेतु राजस्थान, हरियाणा, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में अंतर्स्थलीय भौगोलिक स्थानों में स्थित 8 मिलियन हे. लवण प्रभावित क्षेत्रों के उपयोग की शुरुआत हुई । झींगा प्रक्षेत्रों में रोगों के प्रकोप की समस्या ने वैकल्पिक खारेपानी की पालन योग्य प्रजाति हेतु मानकीकृत पालन तकनीकियों पर शोध हेतु मार्ग प्रशस्त किया है । प्रस्तुत आलेख में एक ही प्रजाति पालन पर निराश्रय तथा टिकाऊ झींगा कृषि हेतु उत्तम प्रबंध कार्यों जैसे शोधनीय मुद्दों के विशेष संदर्भ में *भारत में खारेपानी जलकृषि की वर्तमान अवस्था तथा भावी दिशाएं* पर चर्चा की गई है । जलकृषि, विश्व में तेजी से बढ़ने वाली खाद्य गतिविधि है । एशिया में पिछले दशक में जलकृषि विस्तार में कुछ मोड़ आए, जिन्होने क्षेत्र की खाद्य सुरक्षा, रोजगार पैदा करने तथा विदेशी मुद्रा अर्जन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है । विश्व में जब प्रग्रहण मात्स्यिकी की फसल में रुकावट आई, तब खाद्य तथा पौष्ठिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए मत्स्य/झींगा उत्पादन की वृद्धि हेतु उनके पालन का विकल्प उभर कर आया ।

भारत में तटीय खारेपानी जलकृषि की वर्तमान अवस्था

ज्वारनदमुख, लवण-जलझीलों (चिल्का व पुलिकट) तथा तटरेखा पर लैगून में खारेपानी के कई स्त्रोत हैं, 3.1 मिलियन हे. तटवर्ती लवणीय क्षेत्र में से 1.2 मि.हे. क्षेत्र ही खारेपानी जलकृषि के विकास हेतु उपयुक्त पाया गया । जबकि लगभग 0.152 मिलियन हे. क्षेत्र का ही खारेपानी जलकृषि हेतु उपयोग किया जा रहा है । विभिन्न किस्मों के झींगों, मछलियों तथा केकड़ो के पालन के लिए प्रौद्योगिकियाँ उपलब्ध हैं परन्तु अत्याधिक फायदे, कम गर्भावधि तथा निर्यात मूल्य के कारण कृषकों द्वारा केवल टाईगर झींगा पालन प्रौद्योगिकी ही अपनाई गई । भारत में खारेपानी जलकृषि कार्य पारम्परिक तथा वैज्ञानिक पालन के अधीन होते हैं । वैज्ञानिक कृषि, अपनाए गए प्रबंधन उपायों तथा प्रयुक्त संग्रहण सघनता के आधार पर पारंपरिक/व्यापक/उन्नत व्यापक/रुपांतरित व्यापक विभिन्न रुपों में वर्गीकृत की गई है । यह वर्गीकरण एक राज्य से दूसरे राज्य अथवा एक देश से दूसरे देश में अलग अलग होता है ।

आठवें दशक में व्यापक पालन विधि द्वारा प्रारम्भिक शुरुआत के साथ झींगा पालन का उद्‌भव हुआ । भारत में खारेपानी क्षेत्र में वर्तमान तटीय जलकृषि टाईगर झींगा के उत्पादन तक सीमित है । तथापि झींगों, मछलियों तथा केकड़ों के अन्तर्गत 15 से अधिक पालन योग्य प्रजातियाँ हैं । वर्तमान समय में पिनाइड झींगों की उच्च निर्यात क्षमता के कारण झींगों की केवल दो प्रजातियाँ ही खारेपानी जलकृषि अधिकतम योगदान दे रही हैं । हमारे देश के अधिकतर झींगा कृषि क्षेत्र मुख्यतः पूर्वी तट पर पश्चिम बंगाल, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, पांडिचेरी तथा पश्चिम तट पर केरल, कर्नाटक, गोआ, महाराष्ट्र तथा गुजरात के तटीय क्षेत्रों में स्थित है ।

भारत से झींगा निर्यात

विश्व में पालित झींगा उत्पादन में चीन के पश्चात् भारत का द्वितीय स्थान है । यह जापान, यूरोपीयन संघ, मध्य-पूर्व, यू.एस.ए. तथा अन्य देशों को ताजा तथा संसाधित मछली व मछली उत्पाद निर्यात करता है । 2003 में कुल समुद्री खाद्य निर्यात 4,67,297 टन का 29% तथा मूल्य में 1425 मिलियन $ का 67% योगदान झींगों का रहा ।

भारत में झींगा उत्पादन

देश में पिछले दशक के दौरान खारेपानी जलकृषि में असाधारण वृद्धि का उदाहरण मौजूद है । देश में 1990-91 में झींगा जलकृषि के अंतर्गत कुल क्षेत्र 65,100 हे. था जो

2002-03 में बढ़कर 152,080 हे. हो गया । इसी प्रकार उत्पादन भी 1990-91 में 35,000 मैट्रिक टन से बढ़कर 2002-03 में 115,320 मैट्रिक टन हो गया । 1994-95 के दौरान प्रति हेक्टर औसत उत्पादन अधिकतम 822 कि.ग्रा. तक पहुँच गया, यह 1999-2000 तक तेजी से गिरकर 600 कि.ग्रा. हो गया तथा फिर से 2002-03 के दौरान 758 कि.ग्रा. तक पहुँच गया । थाईलैंड जैसे देश, जहाँ अर्द्ध-गहन तथा गहन पालन कार्य अपनाए गए की अपेक्षा यहाँ उत्पादन स्तर काफी कम है ।

भारत में स्थित झींगा प्रक्षेत्र

देश में झींगा कृषि पर लघु कृषकों का आधिपत्य है जोकि ग्रामीण जनता हेतु रोजगार व आय बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है । देश में 91% झींगा कृषकों के पास 2 हे. से कम, 6% के पास 2 से 5 हे. के बीच तथा बाकी 3% के पास 5 हे. अथवा उससे ऊपर आकार के क्षेत्र उपलब्ध हैं ।

भारत में झींगा स्फुटनशाला तथा आहार मिल

देश में 260 झींगा स्फुटनशालाएँ है, जिनमें से 237 स्फुटनशालाएँ प्रतिवर्ष 11.425 बिलियन डिंभकोत्तर उत्पादन क्षमता के साथ स्थापित हैं । वर्ष 2020 तक बीजों की आवश्यकता 30 बिलियन हो जाएगी । यह लक्ष्य देश के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 500 स्फुटनशालाओं की स्थापना से पूर्ण हो सकता है । प्रतिवर्ष 1,50,000 मैट्रिक टन उत्पादन क्षमता युक्त लगभग 33 आहार मिलें हैं।

पर्यावरणीय समस्या

इसके प्रगति की ओर बढ़ते कदमों में उद्यमियों ने रुकावट भी महसूस की । पर्यावरणीय व सामाजिक समस्या के अलावा 1994-95 के दौरान अनियमित तथा विस्थानीय असाधारण प्रसार के कारण झींगा कृषि अभूतपूर्व रोगों के प्रकोप का शिकार हुई । कृषि, गरान व अन्य नम क्षेत्रों के रुप-परिवर्तन हेतु क्षेत्र परिवर्तन का उपयोग, मृदा तथा पेय जल-स्त्रोतों का लवणीकरण, बेरोजगार, समुद्री/खाड़ी के तटीय नगर भाग के प्रवेश में कमीं, बाढ़ में वृद्धि, प्राकृतिक जल क्षेत्रों से मत्स्य प्रग्रहण में कमी, खारेपानी जलकृषि के विकास के परिणामस्वरुप उत्पन्न होने वाली सामाजिक व आर्थिक समस्या है ।

समुद्र/खाड़ी के समीप गहन झींगा कृषि पर रोक लगा दी गई है तथा पारंपरिक एवं उन्नत पारंपरिक कृषि की ही अनुमति है । तटीय जलकृषि विशेषकर झींगा जलकृषि अब भारत के जलकृषि प्राधिकरण के द्वारा नियंत्रित है ।

अंतर्स्थलीय लवण प्रभावित क्षेत्रों में खारेपानी जलकृषि के सुअवसर

भारत में भूमिगत लवणीय स्त्रोत काफी हैं, जिसका सामान्यतः कृषि हेतु उपयोग नहीं किया जाता है तथा समुद्री झींगा पालन में इनका उपयोग किया जा सकता है । अर्द्ध शुष्क तथा शुष्क क्षेत्रों के भीतरी प्रदेश जलकृषि हेतु अधिक व्यवहार्य हो रहे हैं । झींगा तथा मत्स्य पालन हेतु इनकी क्षमता पर विचार किया गया तथा उनके उत्पादनार्थ हाल ही में देश के 8 मिलियन हेक्टर विशेषकर अन्तर्स्थलीय राज्यों जैसे राजस्थान, हरियाणा, पंजाब तथा पश्चिम उत्तर प्रदेश के लवण प्रभावित क्षेत्रों के उपयोग की शुरुआत हुई है । इसीलिए भारत में अंतर्स्थलीय लवणीय जलकृषि में रुचि बढ़ रही है। इनके उत्पादन व निवेश स्तर कम हैं ।

प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि भूमिगत खारेपानी अथवा सतही लवणीय जल के उपयोग से शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों में टाइगर झींगा, मिल्क फिश, ग्रे मुल्लेट तथा पर्लस्पॉट का पालन संभव है । ऐसे कार्यों हेतु संभावित क्षेत्र काफी हैं । यद्यपि ऐसे जल में झींगा पालन संबंधी काफी प्रश्नों के उत्तर नहीं दिए गए तथा इस पर्यावरण पर प्रकाशित सूचना कम है ।

अंतर्स्थलीय लवणीय जलकृषि के मुद्दे

- अल्प वयस्क झींगों के पालनार्थ तकनीकियों का विकास तथा उन्हें कुओं के उच्च लवणीय पानी के अनुकूल बनाना ।
- अक्तूबर से दिसम्बर के दौरान तापमान काफी गिर जाता है तथा इसी प्रकार गर्मियों में तापमान काफी बढ़ जाता है । दोनों ही स्थितियाँ झींगा पालन कार्य के लिए प्रतिकूल हैं । इस तरह की परिस्थितियों में पादप गृह कार्य अपनाए जाएँ ।
- पर्यावरणीय समस्या से बचाव हेतु भूमिगत जल की संग्रहण सघनता तथा लवणता अनुकूल होनी चाहिए ।
- इन अव्यवहार्य क्षेत्रों में उच्च् प्रोटीन खाद्य तथा अच्छी आय युक्त उत्तम उत्पादनार्थ भूमिगत खारेजल के उपयोग हेतु व्यवहार्य प्रौद्योगिकी विकसित की गई है ।
- समुद्री अथवा लवण सहनशील मीठेजल की प्रजातियों के पालनार्थ लवणीय भूमिगत जल की उपयुक्तता की पुष्टि आवश्यक है ।

टिकाऊ झींगा कृषि हेतु प्रबंधन कार्य

झींगा कृषि में बार बार रोगों के प्रकोप के कारण उसको बनाए रखने के संबंध में तटीय परितंत्र के पणधारकों द्वारा चिंता व्यक्त की गई है । खारेपानी जलकृषि का सक्षम, पर्यानुकूल तथा टिकाऊ बनाने के लिए कई नियामक प्रबंधन तथा शमनोपचार सुझाव दिए गए । कुछ सुझाव हैं :

- स्थल का चयन तथा प्रक्षेत्र डिजाइन उपयुक्त हो
- जलक्षेत्र की धारण क्षमता के अनुसार संग्रहण का ध्यान रखा जाए ।
- स्वस्थ तथा रोगमुक्त बीज का उपयोग तथा प्रक्षेत्र में एवं उसके आसपास स्वस्थ पर्यावरण की निगरानी रखना
- उचित आहार तथा पोषण भार को कम करने हेतु उन्नत FCR युक्त अशन विधियों को सुनिश्चित करना ।
- प्रक्षेत्र बहिःस्त्राव की स्वीकार्य गुणवत्ता स्तर के सुनिश्चयन द्वारा प्रक्षेत्र से ग्राही जल में व्यर्थ भारन का नियमन ।
- ग्राही जल के व्यर्थ भारन को कम करने के लिए जल विनिमय कम करना ।
- प्रक्षेत्रों में हानिकारक रसायनों तथा दवाओं के प्रयोग से बचना ।
- जलकृषि विशेषज्ञों, कृषकों, उद्यमियों पर्यावरणविदों, विकास योजनाकर्ताओं तथा अर्थशास्त्रियों को मिलकर झींगा कृषि को लंबे समय तक टिकाऊ बनाने के लिए योजना बनानी चाहिए ।

संस्थान की शोध उपलब्धियाँ

संस्थान ने देश में खारेपानी जलकृषि के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान दिया है । खारेपानी शोध एवं विकास कार्यक्रमों में संस्थान की कुछ शोध उपलब्धियों का सार इस प्रकार हैः

पालन योग्य प्रजातियों का प्रजनन व बीज उत्पादन

झींगा पालन में रोगों के प्रकोप के कारण रुकावट आने से कुछ झींगा पालक विकल्प रुप में पंख-मछली तथा मड केकड़े का पालन करने लगे ।

पंख मछली पालन

एशियन सीबास, *लैटिस कैल्कैरिफर* के प्रजनन व बीज उत्पादन हेतु प्रौद्योगिकी विकसित की गई । ग्रे मुल्लेट तथा ग्रुपर पर इस तरह के प्रजनन कार्यक्रम प्रगति पर हैं ।

झींगा पालन

स्फुटनशाला में टाइगर झींगा के प्रजनक विकास, प्रजनन तथा बीज उत्पादन को मानकीकृत किया गया ।

स्फुटनशाला में *मार्सूपेनिअस जपॉनिकस* झींगे की दो पीढ़ियों का प्रजनन किया गया ।

केकड़ा पालन

मड़ केकड़ा, *स्काइला सेर्रटा* तथा *एस. ट्रंक्यूबेरिका* के नियंत्रित प्रजनन का सफलतापूर्वक विकास किया गया तथा प्रथम इंस्टार केकड़े के उत्पादन के साथ प्रायोगिक पैमाने पर *एस.ट्रंक्यूबेरिका* का डिंभक चक्र पूर्ण किया गया ।

जल जन्तु स्वास्थ्य प्रबंधन

झींगा जलकृषि में मुख्य समस्या विषाण्विक तथा जीवाण्विक रोगों के रोकथाम व नियंत्रण की है । झींगों की वृद्धि हेतु स्वच्छ, स्वस्थ व दबाव मुक्त तालाब पर्यावरण प्रदान कर काफी हद तक इस समस्या का समाधान किया जा सकता है ।

- झींगा रोग निदान क्षेत्र में झींगों में व्हाइट स्पॉट वाइरस रोग का पता लगाने हेतु पी.सी.आर. डिटेक्शन किट के लिए प्राइमरों का विकास तथा उसका व्यवसायिकरण, संस्थान की उल्लेखनीय उपलब्धि है ।

- विब्रियो आधारित प्रतिरक्षा उद्दीपक तैयार किया गया तथा उन्नत उत्पादन के साथ रोग मुक्त तथा स्वथ्य *पी.मोनोडान* हेतु कई कृषक तालाबों में इसका सफलतापूर्वक परीक्षण किया गया ।

- झींगों में सकारात्मक क्रियायुक्त *स्यूडोमोनास* किस्म के प्रोजीवी जीवाणु का भी पता लगाया गया ।

झींगा आहार प्रौद्योगिकी

संस्थान ने देशी संघटकों तथा मशीनों का उपयोग करके झींगों की विभिन्न अवस्थाओं हेतु कम लागत युक्त झींगा आहार के उत्पादनार्थ प्रौद्योगिकी पैकेज विकसित किया है ।

जलकृषि में मृदा एवं जल गुणवत्ता प्रबंधन

- झींगा पालन में चूने व विरंजक चूर्ण के प्रयोग रेडी रेकनर तैयार किया गया है ।
- झींगा तालाबों में जल गुणवत्ता सुधार हेतु कृषीय व्यर्थ पदार्थों का पता लगाया गया ।
- देश में विभिन्न झींगा प्रक्षेत्रों के जल व मृदा-गुणों पर डाटा एकत्रित किए गए।

प्रौद्योगिकी का हस्तांतरण

संस्थान खारेपानी जलकृषि संबंधी सूचनाओं के प्रसार हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा कृषक सभा का आयोजन करता है ।

उपसंहार

भारत जैसे विकासशील देश में खारेपानी जलकृषि एक उच्च क्षमता युक्त क्षेत्र है तथा इसे सामाजिक स्वीकार्यता, आर्थिक व्यवहार्यता, तकनीकी औचित्यता, पर्यावरणीय स्वास्थ्यता तथा संसाधनों के संरक्षण के साथ टिकाऊ बनाने की आवश्यकता है । टिकाऊ विकास हेतु अनुकूल पर्यावरण तैयार करने के लिए विकास व वृद्धि की आवश्यकताओं तथा परितंत्र संरक्षण की आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है । टिकाऊ कृषि कार्य पालित की जा रही प्रजातियों तथा कृषि के स्थान के अनुसार परिवर्तित होते हैं । टिकाऊ विकास के उद्देश्य का विस्तृत घोषणा-पत्र सदाबहार जलकृषि के स्तर तक पहुँचना चाहिए । निस्संदेह समस्याएँ रहेगी किंतु उनका विद्यमान नियमों, यथावश्यक नए नियमों के अनुसार, ठोस वैज्ञानिक आधार पर नियमन होना आवश्यक है । टिकाऊ जलकृषि हेतु कार्य कर रहे जलकृषि प्राधिकरण ने विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए हैं ।

विदेशी मछलियों का जलाशय मात्स्यिकी पर प्रभाव: गोविन्द सागर जलाशय एक अध्ययन

विजय कुमार शर्मा
केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान केन्द्र
करनाल -132001

भारत वर्ष में मिश्रित मछली पालन द्वारा अधिकतम पैदावर लेने के लिये कुछ समय से देशी व विदेशी मछलियों को एक साथ पाला जा रहा है । इन मछलियों का तालाबों में प्रजनन व संवर्धन कर दीर्घकाल तक अधिक पैदावार ली जा सकती है । यह सब मिश्रित मछली पालन की नवीन तकनीक के आधार पर किया जा रहा है । इस के लिये स्थानीय और देशी मछलियों जैसे कतला, रोहू व मृगल के साथ साथ विदेशी मछलियाँ जैसे कामन कार्प, सिल्वर कार्प जो दक्षिण चीन या रुस के आमूर डेल्टा से लायी गयी, को इस कार्य के लिये चुना गया । इन सब का तालाबों में पालना हमारे नियंत्रण में होता है, परन्तु जब यह बड़े जलाशयों में प्रवेश पा जायें तो स्थिति भिन्न हो जाती है । ऐसा ही गोबिन्द सागर जलाशय में हो रहा है ।

गोविन्द सागर जलाशय, हिमाचल प्रदेश के जिला बिलासपुर में, सतलुज नदी पर स्वतंत्र भारत की पहली बहुउद्देशीय पन-बिजली परियोजना है । इस जलाशय में 1955 में कामन कार्प को डाला गया, बाद में अचानक 1971 की बाढ़ में सिल्वर कार्प व ग्रास कार्प अली खड्ड के रास्ते जलाशय में चली गई । आज स्थिति यह है कि जहाँ 1976-77 में जब भारतीय मेजर कार्प (देशीय मछलियाँ) 52 प्रतिशत व विदेशी मछलियाँ 17 प्रतिशत थीं वहीं आज 2002-2003 में देशी मछलियाँ घट कर 5 प्रतिशत व विदेशी मछलियाँ 92 प्रतिशत हो गई हैं । इन में अकेले सिल्वर कार्प 85 प्रतिशत पैदा हो रही है । इन मछलियों का गोबिन्द सागर जैसे जलाशय में प्रवेश न करने व निरन्तर प्रजनन करने के बाद, भारतीय मेजर कार्प मछलियों की संख्या में भारी कमी, व कुछ मछलियों का विलुप्त होने के कगार तक पहुंच जाना, यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या हम सही दिशा में हैं या नहीं ? इस के लिए वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है ।

गोविन्द सागर जिसे भाखड़ा के नाम से भी जाना जाता है, सतलुज नदी पर बहुउद्देशीय पन बिजली का स्वतंत्र भारत का पहला प्रोजेक्ट है, जो 1959 में अपनी पूर्ण कार्यशैली रुप में स्थापित हुआ । यह जलाशय 31^0 25′ उ.व 76^0 25′ पू. पर स्थित है । इस जलाशय का

औसतन भराव 10000 हे. व अधिकतम गहराई 163.07 मी. है । जलाशय का पानी सतलुज नदी के पानी की तुलना में गर्म है व जलाशय में कोई भी प्रदूषण नहीं है ।

1978 में जलाशय में व्यास नदी का पानी, व्यास-सतलुज सम्पर्क नहर के रास्ते डाला गया । जिससे इस जलाशय के वातावरण में बदलाव आया । जलाशय में वी.एस.एल. पानी से पहले कतला, रोहू मिरगल के अतिरिक्त कामन कार्प, महासीर व सिंधाला मछलियाँ अच्छी मात्रा में पकड़ी जाती थीं । इसके अतिरिक्त स्थानीय मछलियों की प्रजाति, ठण्डे पानी की मछलियॉ जैसे गुगली इत्यादि भी पकड़ी जाती थी । कुल मिलाकर 51 प्रजातियों की मछलियाँ जलाशय में पाई जाती थीं । कॉमन कार्प मछली इस जलाशय के अस्तित्व में आने के बाद से ही डाली जा रही हैं । जिसका संग्रहण भारी मात्रा में हो रहा है (तालिका 1) ।

सिल्वर कार्प व ग्रास कार्प जो की दक्षिण चीन व रुस के आमूर डेल्टा निवासी हैं, अचानक ही 1971 की बाढ़ में अली खड्ड के रास्ते, देवली फार्म से जलाशय में चली गईं । बाढ़ द्वारा 47 सिल्वर कार्प मछलियाँ जिनका आकार 290-530 मि.मी. का तथा 10 ग्रास कार्प जिनका आकार भी लगभग सिल्वर कार्प के बराबर था, जलाशय में प्रविष्ट हो गयीं । इनका आज तक कोई संग्रहण नहीं किया गया । जबकि कॉमन कार्प का बहुत अधिक मात्रा व भारतीय मेजर कार्प का कुछ मात्रा में संग्रहित किया गया ।

शोध सामग्री एवं विधियाँ

इस लेख के लिए मछली उत्पादन के आंकड़े, मछुआरों की संख्या व अन्य आंकड़े हिमाचल प्रदेश मत्स्य विभाग, सहकारिता विभाग हिमाचल प्रदेश के सौज न से प्राप्त किये गये व वैज्ञानिक निष्कर्ष, के.अ.म.अ.सस्थान के वैज्ञानिकों व तकनीकी कर्मचा।यों के सहयोग से निकाला गया ।

परिणाम व विवेचन

जैसा कि विदित है, कॉमन कार्प की अंगुलिकाये इस जलाशय में स्थापना से ही भारी मात्रा में डाली जा रही है (तालिका-1) जिसका जलाशय की मछली पैदावार पर अनुकूल प्रभाव देखने को मिलता है । 1974-75 में कॉमन कार्प 39.59 प्रतिशत (67.7 टन) व महासीर 16.78 प्रतिशत (28.7 टन) थीं । यह मात्रा 1977-78 में कॉमन कार्प की 26 प्रतिशत व भारतीय मेजर कार्प की 52 प्रतिशत हो गई (तालिका-2) । कॉमन कार्प का जलाशय में 1976-77 से 2002-2003 तक का संग्रहण तालिका-4 में दर्शाया गया है । इससे यह ज्ञात होता है कि इसका संग्रहण किसी वैज्ञानिक आधार पर नहीं किया गया । जहाँ 1976-77 में इसकी

6.26 लाख अंगुलिकायें डाली गई । वहाँ बाद में इस की मात्रा बढ़ते-बढ़ते 22.75 लाख हो गई (सबसे अधिक 1995-96 में 59.69 लाख अंगुलिकायें) जबकि इसकी उत्पादकता 1976-77 में 87 टन थी जो कि 1979-80 तक बढ़ कर 249 टन (35 प्रतिशत) हो गई । इसके बाद यह कम हो गई और 2002-2003 तक 74 टन रह गई जो कुल मछली का 6 प्रतिशत मात्र था । अर्थात कॉमन कार्प के संग्रहण का इसके उत्पादन पर कोई खास असर नहीं है जबकि इसकी स्वतःसंग्रहण भी हो रहा है । इस बाह्य संग्रहण के असर से इसका उत्पादन बहुत होना चाहिए था, परन्तु जब से दूसरी विदेशी मछली सिल्वर कार्प की मात्रा बढनी आरम्भ हुई है, बाकी सब मछलियों के उत्पादन पर बहुत बुरा असर पड़ा है ।

भारतीय मेजर कार्प 1.6 लाख अंगुलिकाओं को पहली बार 1978-79 में संग्रहित किया गया । 1978 की बी.एस. द्वारा ब्यास का पानी इस जलाशय में डाले जाने से, इस जलाशय का पर्यावरण बदल गया । पानी का तापमान कम हुआ, स्पेसिफिक कण्डकटेवीटी कम हुई । बाईकार्बोनेट, फासफेट, सिलीकेट व आरगैनिक कार्बन कम हुआ, परन्तु पानी में ऑक्सीजन की घुलनशीलता बढ़ गई । जलाशय जोकि 1978 से पहले 51 मछलियों का आश्रय था, घट कर कुछ का ही रह गया । यह सब पर्यावरण के बदलाव से हुआ । जहाँ 1976-77 में भारतीय मेजर कार्प का उत्पादन 28 टन (52 प्रतिशत) था वह घटकर 1978-79 में 364 टन (48 प्रतिशत) हुआ । यह और भी कम हो कर 2002-2003 तक 74 टन (5 प्रतिशत) रह गया । इन मछलियों का संग्रहण कभी भी वैज्ञानिक आधार पर नहीं हुआ । यह संग्रहण कभी 1.69 लाख (1979-80) तो कभी 13.49 लाख (1988-89) या कभी मात्र 0.55 लाख (1991-92) रहा (तालिका-4) ।

इसका उत्पादन लगातार घटता जा रहा है । इन मछलियों का उत्पादन 1976-77 में 285 टन (52 प्रतिशत) हुआ जोकि बढ़कर 1977-78 में 366 टन (52 प्रतिशत), फिर 1978-79 में जब सिल्वर कार्प का जलाशय में प्रभाव होने लगा यह मछलियाँ 364 टन (48 प्रतिशत), 1979-80 में 243 टन (34 प्रतिशत), 1980-81 में 202 टन (29 प्रतिशत) हो गयी । इसके बाद 1981-82 में मेजर कार्प का उत्पादन घटकर 99 टन (15 प्रतिशत) हो गया जो घटते-घटते 2002-2003 में 74 टन (5 प्रतिशत) रह गया (तालिका-1और 2) । इसके साथ-साथ स्थानीय मछली भी घट गई । इन सब वर्षों में गोविन्द सागर में मात्स्याआखेट 1976-77 में केवल 190 मछुआरें जोकि 3 सहकारी संस्थाये से संबंधित है, काम करते थे (तालिका-2) । इन की संख्या 1977-78 में 225 हुई और बढ़ते-बढ़ते 2371 मछुआरे जोकि 16 सहकारी संस्थाये से संबंधित थे । मछली का शिकार करने के लिए गिल नेट ही प्रयोग में लाये जाते रहे । इससे विदेशी मछलियों सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प व कामन कार्प का देशी मछलियों (कतला, रोहू, मिरगल) पर प्रभाव साफ तौर पर दृष्टिगोचर होता है । महासीर, गुगली व दूसरी स्थानीय मछलियों को चिन्तन में नहीं लिया गया है । कतला, रोहू, *मिरगल* हमारी ऐसी

मछलियाँ जिन का बाजार भाव काफी अधिक है और यह जल्दी खराब नहीं होतीं, हमारे कुछ एक प्रांतों के निवासियों की सबसे ज्यादा पसन्द है ।

दूसरी विदेशी मछलियों में सिल्वर कार्प जो कि 1971 में अचानक गोविन्द सागर में प्रवेश कर गई एवं 1978 में ब्यास नदी के पानी के आगमन के बाद बहुत अधिक उत्पादन होने लगा । जहाँ 1976-77 में सिल्वर कार्प मात्र 1 प्रतिशत थी, यह बढ़कर 1980-81 (13 प्रतिशत) 1988-89 में 80 प्रतिशत व 2002-2003 में 85 प्रतिशत हो गई (तालिका-1) । यह मछली कामन कार्प, ग्रास कार्प के साथ आज 92 प्रतिशत उत्पादन दे रही है । जिसमें अकेले सिल्वर कार्प 85 प्रतिशत जबकि ग्रास कार्प 1 प्रतिशत व कामन कार्प 6 प्रतिशत है । वर्ष 1976-77 में स्थिति यह थी कि ग्रास कार्प तो उत्पादन में कहीं नहीं थी । सिल्वर कार्प 1 प्रतिशत व कामन कार्प 16 प्रतिशत थी । ग्रास कार्प पहली बार 1989-90 में 1 प्रतिशत से भी कम पकड़ी गई । जबकि कामन कार्प 6 प्रतिशत हो गई व सिल्वर कार्प 81 प्रतिशत तक पहुँच गई । यह सब तब हो रहा है जब सिल्वर कार्प व ग्रास कार्प का संग्रहण बिल्कुल नहीं हो रहा है । अभिप्रायः यह है कि यह मछलियाँ जलाशय में प्राकृतिक तौर पर अनुकूल पर्यावरण में अपने आप प्रजनन कर रही हैं । 1971 की बाढ़ में प्रवेश पाने के बाद 1974 में सिल्वर कार्प के छोटे बच्चे व 1977 में इस मछली का बहुत अधिक मात्रा में 400 ग्राम की रेंज में पकड़ा जाना यह सिद्ध करता है कि यह मछली पक्के तौर पर इस जलाशय में स्थापित हो गई है । अब स्थिति यह है कि इस मछली के 400 ग्राम से कम वजन के बच्चे सारे जलाशय में मिल जायेंगे । खास कर बिलासपुर खण्ड, जकात खाना व नकराना व सीर खड्ड में इस मछली का वर्षा ऋतु व उसके बाद अधिक जमाव व प्रजनन यह विश्वास दिलाता है कि ब्यास का ठण्डा पानी यहाँ के पर्यावरण को प्रभावित करता है ।

इस मछली का इतनी संख्या में बढ़ जाना हमारी अपनी कमजोरी को दर्शाता है । एक तो हम अपने अनुवंशकी संसाधन के प्रति ज्यादा सचेत नहीं हैं । दूसरे जब यह मछली बहुत तेजी से बढ़ रही थी तो भी हमने भारतीय मेजर कार्प का भारी मात्रा में संग्रहण नहीं किया, न ही हमने भारतीय मेजर कार्प की छोटी मछलियों के पकड़े जाने पर प्रतिबंध लगाया । ऐसा ही महासीर के साथ भी हुआ । चूँकि भारतीय मेजर कार्प अधिक कीमती है, इसे लालचवश ज्यादा से ज्यादा निकाला जाने लगा । इन मछलियों के प्रजनन स्थल जो सी खड्ड या लुनखर-खड्ड थे । सिल्वर कार्प की प्रचुर मात्रा में होने से विस्थापित हो गई । इन्हीं कारणों से सिल्वर कार्प का अप्रत्याशित बढ़ना जारी हैं । इस स्थिति के समाधान के लिए कुछ करना चाहिये । यह सब इसलिए हुआ कि इन मछलियों को बाजार में 45 से.मी. से कम नहीं भेजा जा सकता । जब तक यह मछली 3 साल से ज्यादा की हो जाती है तब तक एक बार अण्डे दे चुकी होती है ।

ग्रास कार्प जो कि 1971 में ही सिल्वर कार्प के साथ इस जलाशय में चली गई थी, पहली बार 1989-90 में तकरीबन 1 टन पकड़ी गई जो कि कुल मछली का 1 प्रतिशत से भी कम है । इस मछली की पैदावार धीरे धीरे बढ़कर अब 6 टन (1 प्रतिशत) तक पहुँच गई है । इस मछली का भी कोई संग्रहण नहीं हुआ है । यह दर्शाता है कि इसने भी अपने को धीरे धीरे इस जलाशय के पर्यावरण में ढाल लिया है ।

सुझाव

गोविन्द सागर में मछलियों के संतुलित मात्रा में उत्पादन हेतु भारतीय मेजर कार्प का भारी मात्रा में संग्रहण (फिंगरलिंग या अंगुलिका) किया जाना चाहिए । इनको 35 से.मी. से कम पकड़ने की मनाही होनी चाहिये । जब कि सिल्वर कार्प का शिकार 45 से.मी. से कम कर 30-35 से.मी. कर देना चाहिये व इके जलाशय से बिक्री केन्द्र तक व मछली मण्डी तक की कड़ी को सुरक्षित बनाना चाहिए क्योंकि यह मछली सबसे पहले सड़ जाती है व इस का भाव भी भारतीय मेजर कार्प के आधे से कम मिलता है । सिल्वर कार्प का जलाशय के कुल उत्पादन में योगदान 85 प्रतिशत है व कई बार इसके वितरण में कठिनाई होती है । इसके लिए सरकारी सहायता की आवश्यकता है ।

तालिका - 1. गोविन्द सागर जलाशय में विदेशी मछलियों की मात्रा प्रतिशत

वर्ष	सिल्वर कार्प	ग्रास कार्प	कामन कार्प	कुल प्रतिशत	टन	जलाशय की कुल मछली	कामन कार्प की स्टाकिंग लाखों में	कुल मछुआरें
1976-77	1	-	16	17	95	546	6.26	190(3)
1977-78	1	-	26	27	191	707	6.43	225 (4)
1978-79	2	-	28	30	222	754	8.68	637(6)
1979-80	6	-	35	41	293	716	7.44	719(8)
1980-81	13	-	30	43	301	707	9.18	665(9)
1981-82	15	5	25	40	259	653	12.99	563(9)
1982-83	18	-	30	48	273	562	14.44	683(9)
1983-84	25	-	34	59	251	425	15.33	817(9)
1984-85	44	-	22	66	346	505	20.20	809(9)
1985-86	45	-	27	72	388	546	21.95	890(9)
1986-87	47	-	23	70	263	377	22.75	850(10)
1987-88	66	-	14	80	357	538	17.22	1034(11)
1988-89	80	-	9	89	693	784	36.55	1026(11)
1989-90	81	-	6	87	713	815	25.97	1102(11)
1990-91	72	-	9	81	673	816	35.81	1137(11)

1991-92	72	-	8	80	688	855	59.53	1292(11)
1992-93	72	-	8	80	770	964	54.56	1479(11)
1993-94	76	-	5	81	847	1050	33.48	1369(11)
1994-95	80	1	6	87	971	1128	15.01	1357(11)
1995-96	78	1	7	86	895	1056	59.69	1474(11)
1996-97	77	1	7	85	852	1016	37.09	1716(11)
1997-98	81	1	6	88	992	1135	14.83	1684(12)
1998-99	75	1	8	84	806	957	13.90	1846(12)
1999-2000	74	1	10	85	726	866	15.32	1993(13)
2000-01	78	1	7	86	926	1082	15.00	2139(13)
2001-02	82	1	6	89	1056	1174	12.00	20.46(13)
2002-03	85	1	6	92	1103	1202	11.20	2371(16)

तालिका - 2. गोविन्द सागर जलाशय में देशी मछलियों (कतला, रोहू व म्रिगल) की मात्रा प्रतिशत में

वर्ष	कतला	रोहू	म्रिगल	कुल योग		जलाशय की कुल मछली टन	रोहू कतला म्रिगल की स्टाकिंग (लाख)	कुल मछुआरें
				प्रतिशत	टन			
1976-77	26	24	2	52	285	546	-	190(3)
1977-78	24	25	3	52	366	707	-	225 (4)
1978-79	13	26	9	48	364	754	1.69	637(6)
1979-80	6	14	14	34	243	716	-	719(8)
1980-81	10	13	6	29	202	707	8.4	665(9)
1981-82	8	5	2	15	99	653	1.25	563(9)
1982-83	5	4	1	10	56	562	-	633(9)
1983-84	6	2	1	9	36	425	3.20	817(9)
1984-85	8	2	1	11	55	505	2.00	809(9)
1985-86	5	2	1	8	45	546	2.00	890(9)
1986-87	5	2	1	8	32	377	-	850(10)
1987-88	6	1	1	8	47	538	10.03	1034(11)
1988-89	4	1	-	5	40	784	13.49	1026(11)
1989-90	7	1	-	8	62	815	3.72	1102(11)
1990-91	8	1	-	9	73	816	2.19	1137(11)
1991-92	8	-	1	9	76	855	0.55	1292(11)
1992-93	9	-	1	10	98	964	2.50	1479(11)
1993-94	12	-	1	13	133	1050	-	1369(11)

1994-95	8	1	-	9	100	1128	1.10	1357(11)
1995-96	7	1	-	8	82	1056	10.64	1474(11)
1996-97	8	1	-	9	91	1016	8.5	1716(11)
1997-98	6	1	-	7	79	1135	9.88	1684(12)
1998-99	8	1	-	9	89	957	11.30	1846(12)
1999-2000	8	-	-	8	76	866	8.5	1993(13)
2000-01	8	-	-	8	96	1082	8.4	2139(13)
2001-02	5	1	-	6	66	1174	9.00	20.46(13)
2002-03	4	1	-	5	58	1202	8.7	2371(16)

तालिका - 3. गोविन्द सागर जलाशय में देशी व विदेशी मछलियों की मात्रा

वर्ष	देशी मछलियाँ			कुल योग	विदेशी मछलियाँ			कुल योग	कुल मछलियाँ	पैदावार प्रति हे.
	कतला	रोहू	म्रिगल		सिल्वर कार्प	ग्रास कार्प	कामन कार्प			
1976-77	142	132	11	285	8	-	87	95	546	54.6
1977-78	169	176	21	366	10	-	181	191	707	70.7
1978-79	102	195	67	364	13	-	209	222	754	75.4
1979-80	41	100	102	243	44	-	249	293	716	71.6
1980-81	69	89	44	202	88	-	213	301	707	70.7
1981-82	54	32	13	99	96	-	163	259	653	65030
1982-83	27	23	6	56	103	-	170	273	562	56.20
1983-84	26	7	3	36	107	-	144	251	425	42.50
1984-85	42	8	5	55	233	-	113	346	505	50.50
1985-86	30	9	6	45	244	-	144	388	546	54.60
1986-87	20	9	3	32	176	-	87	263	377	37.70
1987-88	35	7	3	45	353	-	74	357	538	53.80
1988-89	33	4	2	39	627	-	66	693	784	78.40
1989-90	55	3	2	60	661	1	51	713	815	81.50
1990-91	65	4	2	71	595	1	77	673	816	81.60
1991-92	68	3	4	75	617	2	69	688	855	85.50
1992-93	86	4	6	96	690	2	78	770	964	96.40
1993-94	121	4	7	132	793	2	52	847	1050	105.0
1994-95	90	4	4	98	905	2	64	971	1128	112.80
1995-96	73	5	2	80	820	1	74	971	1056	105.60
1996-97	82	5	2	89	779	3	70	895	1016	101.60
1997-98	72	4	2	78	919	3	70	852	1135	113.50
1998-99	81	4	2	87	721	4	81	992	957	95.70
1999-2000	70	4	1	75	637	4	85	806	866	86.60
2000-01	89	4	1	94	846	4	76	926	1082	108.20
2001-02	59	6	1	66	974	6	76	1056	1174	117.40
2002-03	51	6	1	74	1023	6	74	1103	1202	120.20

तालिका - 4. गोविन्द सागर में प्रति वर्ष मछलियों का स्टाकिंग व उत्पादन

वर्ष	कामन कार्प सीट (लाख)	कामन कार्प (मात्रा टन)	प्रतिशत	ग्रास कार्प सिलवर कार्प प्रतिशत	देशी मछलियाँ (लाख)	उत्पादन (टन)	उत्पादन प्रतिशत
1976-77	6.26	87	16	1	-	285	52
1977-78	6.43	181	26	1	-	366	52
1978-79	8.68	209	28	2	1069	364	48
1979-80	7.44	249	35	6	-	243	34
1980-81	9.18	213	30	13	8.4	202	29
1981-82	12.99	163	25	15	1.25	99	15
1982-83	14.44	170	30	18	-	56	10
1983-84	15.33	144	34	25	3.20	36	9
1984-85	20.20	113	22	44	2.00	55	11
1985-86	21.95	144	27	45	2.00	45	8
1986-87	22.75	87	23	47	-	32	8
1987-88	17.22	74	14	66	10.03	45	8
1988-89	36.55	66	9	80	13.49	39	5
1989-90	25.97	51	6	81	3.72	60	8
1990-91	35.81	77	9	72	2.19	71	9
1991-92	59.53	69	8	72	0.55	75	9
1992-93	54.56	78	8	72	2.55	96	10
1993-94	33.48	52	5	76	-	132	13
1994-95	15.01	64	6	81	1.103	98	9
1995-96	59.69	74	7	79	10.64	80	8
1996-97	37.09	70	7	78	8.50	89	9
1997-98	14.83	70	6	82	9.88	78	7
1998-99	13.90	81	8	76	11.30	87	9
1999-2000	15.32	85	10	75	8.50	75	8
2000-01	15.10	76	7	79	8.40	94	8
2001-02	12.00	76	6	83	9.0	66	6
2002-03	11.20	74	6	86	8.70	74	5

पूर्वोत्तर में जलाशय मात्स्यिकीः वर्तमान स्थिति एवं संभावनायें

एन. पी. श्रीवास्तव एवं एम.चौधरी
उत्तर-पूर्वी आंचलिक केन्द्र
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
गुवाहाटी-781006

भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में जलाशय मात्स्यिकी का विशेष महत्व है क्योंकि इनमें मत्स्य उत्पादन व विकास की अपार संभावनायें है । अन्तर्स्थलीय मत्स्योत्पादन में जलाशय बहुत बड़ा योगदान दे सकते हैं किन्तु इस दिशा में समुचित वांछित प्रयास नही हो रहे हैं । जलाशय मात्स्यिकी की पूर्ण-क्षमता का सही दोहन इस क्षेत्र में अभी तक नहीं हो सका है । आवश्यकता इस बात की है कि जलाशयों में उनकी परिस्थिति के अनुरूप वैज्ञानिक पद्धति से मत्स्य विकास एवं प्रबंधन के कार्य किए जायें । जलाशय जैसे सक्षम संसाधन में उसके सुनियोजित प्रबन्धन द्वारा अधिक से अधिक मत्स्य उत्पादन किया जा सकता है ।

उपलब्ध संसाधन

उत्तर-पूर्व की 52 छोटी-बड़ी नदियाँ जिनमें विशाल ब्रह्मपुत्र एवं बराक भी शामिल हैं व यहाँ का अनुकूल भू-जलवायु बहुउद्देश्यीय परियोजनाओं के लिए आदर्श स्थल प्रदान करते हैं । यह परियोजनाएँ सिंचाई, जल-विद्युत क्षमता का 50% भाग सिर्फ ब्रह्मपुत्र तथा बराक प्रवहण-क्षेत्र ही बनाता है । उत्तर-पूर्वी राज्यों में बहुत कम जलाशय का निर्माण हुआ है । वर्तमान में कुल जलाशय उपलब्ध जल-क्षेत्र करीब 11000 हेक्टर ही है जबकि प्रक्षेप्य क्षेत्र करीब 80000 हेक्टर है । अर्थात् लगभग 86% भाग अभी भी उपयोग में लाना शेष है ।

नदी-घाटी परियोजनाओं के अन्तर्गत इस क्षेत्र में कई नई योजनायें कार्यान्वित हो रही हैं तथा भविष्य में एक बहुत बड़ा संसाधन जलाशयों के रूप में मात्स्यकी विकास हेतु उपलब्ध हो जाएगा । यदि सभी प्रस्तावित एवं उपलब्ध जलाशय जल-क्षेत्र की एक औसत मत्स्य उत्पादन दर (करीब 150 कि./हे.) से विवेचना की जाए तो लगभग 12000 टन मत्स्य उत्पादन इस क्षेत्र से हर वर्ष प्राप्त किया जा सकता है । इसके लिए एक सुव्यवस्थित मात्स्यिकी विकास योजना, परितंत्र अनुकूल अनुसंधान व उसके निष्कर्षों से प्राप्त अनुशंसाओं का समयबद्ध नीतिगत पालन अति आवश्यक है ।

जलाशय का वर्तमान परिदृश्य एवं संभावनायें

उत्तर-पूर्वी जलाशयों में अधिकतर में मात्स्यिकी कार्य-कलाप प्रायः ना के बराबर ही हैं । जिन कुछ जलाशयों में यह कार्य हो रहा है वह भी अव्यवस्थित ही है । वास्तव में मत्स्योत्पादन एवं उसके विकास हेतु इस संसाधन को इस क्षेत्र में अभी तक गंभीरता से लिया ही नहीं गया है । यह बहुत जरूरी है कि जलाशयों में सघन मत्स्य विकास के प्रयास शीघ्र ही आरंभ किए जाएं । वैज्ञानिक आधार पर इन संसाधनों का उचित प्रबन्धन व स्थानीय मत्स्य संपदा के बचाव व विकास हेतु आवश्यक मुद्दों में व्यवस्थित मत्स्य ग्रहण,उन्नत मत्स्य बीज की उपलब्धता व संचय,अधिक मत्स्य उत्पादन तथा देशी मत्स्याधार की सुरक्षा व उसका विकास प्रमुख है ।

यह विडंबना ही है कि उत्तर-पूर्व के जलाशयों में सिर्फ गुमती (त्रिपुरा) में ही व्यवस्थित मात्स्यिकी कार्य हो रहा है जबकि अन्य सभी जलाशयों में इसका अभाव है । इसी कारण इस अति विशिष्ट संसाधन का मत्स्योत्पादन में योगदान भी प्रायः नगण्य ही है । या तो जलाशयों का उपयोग उनकी वास्तविक मत्स्य उत्पादन क्षमता से काफी कम हुआ है या फिर उन्हें इस प्रयोग में लाया ही नहीं गया है ।

गुमती जलाशय (4500 हे.) इस क्षेत्र का सबसे बड़ा जलाशय है । इससे औसतन 141.8 टन (31.5 कि./हे.) मत्स्य उत्पादन प्राप्त हुआ है । सुखान व काँटा-मछली इसकी प्रमुख सम्पदा है । भारतीय सफर प्रजातियों का नैसर्गिक प्रजनन इसमें होता है लेकिन उसकी संदिग्ध प्रजनन-सफलता के कारण इसका प्रभाव जलाशय की मात्स्यिकी पर बहुत कम है । वैसे भी जलाशयों में नैसर्गिक प्रजनन की पूर्ण सफलता अनेक कारणों से प्रभावित होती है । इसी प्रतिकूलता के कारण जलाशयों में कृत्रिम संचयन की आवश्यकता होती है । गुमती जलाशय को भी संचित किया गया है । पूर्व में संचय की वार्षिक औसत दर 245 अंगुलिकाएं/हेक्टर थी जिसे बाद में 632 अंगुलिकाएं/हेक्टर तक बढ़ाया गया । लेकिन सुखान एवं काँटा मछलियों की प्रचुरतावश इसका प्रभाव अनुकूल नही रहा । सुखान मछलियाँ भारतीय सफर प्रजातियों से भोजन के लिए प्रतिस्पर्धा कर उन्हें विपरीत रूप से प्रभावित करती हैं । काँटा-मछली भी संचित सफर मछलियों पर प्रतिकूल असर डालती है । संचय के सफल एवं उत्साहवर्धक परिणाम हेतु सुखान व काँटा मछलियों का एक निश्चित सीमा तक नियंत्रण अति आवश्यक है ।

मेघालय राज्य के दो छोटे जलाशयों-किरडेमकुलाई (90 हेक्टर) व नाँगमाहिर (70 हेक्टर) का मात्स्यिकी विकास हेतु संभाव्यता अध्ययन केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान द्वारा 1991 में किया गया । इन जलाशयों में मत्स्य विकास की अपार संभावनाएं हैं

तथा सही व उपयुक्त प्रबन्धन द्वारा मत्स्योत्पादन को एक संतोषप्रद सीमा तक बढ़ाया जा सकता है । दोनों ही जलाशय करीब 1000 कि./हे. का मत्स्य उत्पादन देने में सक्षम हैं । किरडेमकुलाई में महासीर मछलियों (चाकलेट महासीर, गोल्डन महासीर, टार महासीर आदि) का प्रवास है । महासीर व्यवसायिक मछुओं व खेल-प्रमियों में काफी लोकप्रिय है । चाकलेट महासीर खाद्य रूप में स्थानीय लोगों में काफी पसंद की जाती है । यह जलाशय महासीर के बचाव व विकास में सहायक होकर परि-पर्यटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है । महासीर के प्रजनन तथा संभरण हेतु यह आदर्श स्थल है । छोटी महासीर व छोटी सफर मछलियों के शिकार पर पूर्णतः प्रतिबंध लगना चाहिए । जलाशय संचय हेतु आवश्यक मत्स्य बीज की प्राप्ति में बीज-संवर्धन के लिए बहुचर्चित बाड़ा-घेरे का उपयोग किया जा सकता है । किरडेमकुलाई जलाशय से प्रतिवर्ष करीब 50 टन मछली प्राप्त की जा सकती है । नाँगमाहिर जलाशय में भी व्यवस्थित मात्स्यिकी विकास की जरूरत है । इस जलाशय में कॉमन कार्प उपलब्ध है जिसका सफल प्रजनन भी इसमें हो रहा है । कॉमन कार्प की उपस्थिति में संचय के लिए सफर प्रजातियों में केवल कतला एवं रोहू को ही शामिल करना चाहिए ।

उमीअम (मेघालय) इस क्षेत्र का सबसे पुराना जलाशय है । हाल ही में इस जलाशय में कुछ मात्स्यिकी विकास के कार्य आरम्भ हुए हैं । पहले यह सिर्फ बंसी-मत्स्याखेट के लिए ही जाना जाता था । इस जलाशय में भी कॉमन कार्प का संचय किया गया है ।

खानड़ोंग एवं उमरांग (आसाम) जलाशयों में भी नियमित व्यवस्थित मात्स्यकी प्रबंधन का अभाव है । इन जलाशयों का भी संभावित उत्पादन क्षमता का अध्ययन हुआ है । खानड़ोंग की मत्स्य उत्पादन क्षमता करीब 50 कि./हे./वर्ष आंकी गई है । दोनों ही जलाशयों में मात्स्यिकी विकास की अनेक संभावनाऐं हैं ।

उपसंहार

जलाशय में सफल मात्स्यिकी प्रबन्धन हेतु इन जलाशयों की सही पारिस्थितकी विशेषकर उनकी वास्तविक उत्पादन क्षमता की जानकारी जरूरी है । विभिन्न पारिस्थितिकी अवस्थाओं में मत्स्य-आचरण का अध्ययन भी बहुत आवश्यक है । किसी एक प्रबन्ध-योजना को सभी जलाशयों में एकरूपता से लागू नहीं किया जा सकता । प्रत्येक जलाशय के लिए उसके विभिन्न पारिस्थितिकी पहलुओं के आधार पर एक भिन्न प्रबन्ध-योजना की जरूरत होती है । सही समय पर सही मत्स्य बीज का संचय जलाशय मात्स्यिकी प्रबन्धन व विकास की सबसे बड़ी एवं महत्वपूर्ण कड़ी है । जलाशयों का प्रबंधन संवर्धन-आधारित-मात्स्यिकी पर किया जाता है ।

निःसंदेह जलाशय उत्तर-पूर्वी राज्यों के मत्स्य उत्पादन एवं विकास में अहम भूमिका निभा सकते हैं यदि उनका सही अध्ययन कर उचित प्रबन्धन नीतियों को अपनाया जाए ।

तालिका 1. पूर्वोत्तर का जलाशय मात्स्यिकी संसाधन

राज्य	जलाशय क्षेत्र (हे.)	प्रक्षेप्य क्षेत्र (हे.)
अरूणांचल प्रदेश	160	-
आसाम	2314	-
मणीपुर	100	40000
मेघालय	660	-
मिजोरम	32	-
नागालैंड	2500	24600
त्रिपुरा	4500	1500
अन्य	600	-

तालिका 2 : पूर्वोत्तर के जलाशय

जलाशय	राज्य	जल-क्षेत्र (हे.)
उमीअम (बारापानी)	मेघालय	500
किरडेमकुलाई	तदैव	90
नाँगमाहिर	तदैव	70
खानड़ोंग	मेघालय/आसाम	1335
उमरांग	आसाम	979
गुमती	त्रिपुरा	4500
खोयूपम	मणीपुर	100
पालेक	मिजोराम	32
रंगानदी	अरूणाचल प्रदेश	160
दोयाँग	नागालैंड	2500
अन्य	-	600

कोशी नदी तंत्र का भू-आकृतिक अध्ययन

मनीष चन्द्र वर्मा, सुशील कुमार सिंह, अब्दुल खालीख, पवन कुमार ठाकुर
वि. वि. प्राणी विज्ञान विभाग, ति. मा. भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
*स्नातकोत्तर प्राणी विज्ञान विभाग, राजेन्द्र कालेज, जय प्रकाश विश्वविद्यालय,
छपरा, बिहार

लोककथाओं में वर्णित कोशिकी या वर्तमान की कोशी नदी नेपाल स्थित हिमालय पर्वत श्रंखला के दक्षिणी ढाल (20^0 20′ से 29^0 0′ तथा 85^0 20′ 88^0 0′ पूर्वी देशांतर या रेखांश) से निकलकर 70.409 वर्ग मि.मी. का आवाह क्षेत्र का निर्माण करती है । इसके अन्तर्गत नेपाल का 69.570 वर्ग कि.मी. तथा भारत का 10.839 वर्ग कि.मी. क्षेत्र निहित है । इस नदी का उद्‌गम तीन हिमनदों के मिलन से होता है । प्रथम हिमनद गोसाई थान (8.013 मी.) दूसरा एवरेस्ट (8.848 मी.) तथा तीसरा कुचनजंघा (8.579 मी.) है । इन तीन हिमनदों से तीन धारायें निकलती हैं इन मुख्य धाराओं का नाम सनकोशी, अरूणकोशी, तमार कोशी है । इन तीन पृथक धाराओं का संगम चतरा से 15 कि.मी. ऊपर त्रिवेणी में होता है । इन्द्रावती, भोते, लीखु और दूध जैसी वेगवती धाराऐं सनकोशी में उत्तर से आकर मिलती हैं । इन सात पवित्र धाराओं से नेपाल में इसका नाम सप्तकोशी है । दूनिया के प्रबल प्रवाह एवं प्रलयंकारी नदियों में से एक कोशी अपने जलागम क्षेत्र में गाद की मात्रा एवं भूसंरक्षण के चलते उत्तरी बिहार के मैदानी भाग में पहँचते ही तीव्रता से विसर्पित होती रहती है । इसके फलस्वरूप यह यहाँ 1736 ई. से ही ढेर सारे धाराओं एवं चौरों का निर्माण करती रहती है । इस शोधपत्र में बिहार का संताप जानी जानेवाली कोशी के जल सर्वेक्षण, जल निर्गम पद्धति, जल निरावेषण, अवसाद भार, धारा एवं चौर का निर्माण तथा उत्पादन क्षमता का तथ्यपूरक अध्ययन किया गया है ।

प्रस्तावना

चिरकाल से कोशी नदी उत्तरी बिहार की मानव आबादी के लिए अभिशाप के रूप में जानी जाती रही है । अपनी वेगवती धाराओं, प्रलयंकारी बाढ़ एवं अपनी मुख्य धारा के तेज विसर्पन के चलते यह यहाँ की आबादी के लिए हमेशा एक दुःस्वप्न की तरह है । नेपाल एवं भारत की करीब 21,000 वर्ग कि.मी. उपजाऊ भूमि, मानव आबादी एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था

इसके बाढ़ से प्रत्येक वर्ष प्रभावित होती है । अपनी विनाशलीला के चलते यह 'बिहार के शोक' या 'बिहार की ह्वांगहो' के रूप में जानी जाती है । (अहमद, 1947)

उत्तरी बिहार के इस विवर्त्तनिक गर्तीय क्षेत्र में कोशी तेज से विसर्पित होती है । इससे यह अपने जलग्रहण क्षेत्र में अनेक चौर, मान, बील एवं झीलों की जल-श्रंखला का निर्माण करती है । इस आर्द्र क्षेत्र में मुख्य धारा के विसर्पन के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई अनेक जलधाराएँ एवं नलिकाएँ वर्षा ऋतु में अपनी जल की मात्रा के चलते तटबंधों से निकलकर काफी बड़े भूभाग को जलप्लावित कर देती है जिससे एक छिछले जल-क्षेत्र को निर्माण होता है । ये जल-नलिकाएँ एवं ऐसे जल-क्षेत्र मछलियों के प्रजनन के लिए एक आदर्श क्षेत्र बनाती है । उत्तरी बिहार की मत्स्य प्रचुरता के चलते मिथिला राज्य का निशान न सिर्फ 'मछली ' है वरन् इस क्षेत्र को एक लोकोक्ति, एंक विशेषता प्रदान करती है । ''पग-पग पोखरी, माछ-मखान, सरस बोली मुसकी मुख पान''।

इस क्षेत्र की जल-कृषि में मछली उत्पादन के साथ मखाना (*यूराइल फोरेक्स*), सकुरी (*कुमुदनी*),अन्टरनेनथेरा पिग्वंस, सिंघाड़ा (*ट्रापा बिसीपीनोसा*), चिचोर तथा बारी इत्यादी बिना किसी अतिरिक्त पूँजी या लागत के प्राप्त होती है ।

कोशी की अपरदन प्रकृति जो इसके बहाव को निरंतर बदलती रहती है एवं उत्तरी बिहार के तराई क्षेत्र (उत्तरी भाग) एवं विवर्त्तनिक गर्त (उत्तर पूर्वी भाग) में निरंतर इसकी विभीषिका को देखते हुए 1959 ई. में बाँधों एवं नहरों के जाल के साथ कोशी बराज का निर्माण हुआ । निःसंदेह इस बराज से इसका जल ग्रहण क्षेत्र में बसी एक बड़ी आबादी को बाढ़ से राहत मिली, पर इसका सीधा असर इस क्षेत्र के जल संसाधन पारिस्थितिकी के ऊपर हुआ । जैव विविधता, जल-कृषि एवं मत्स्य आखेट के लिए विख्यात यह क्षेत्र तटबंध बन जाने तथा नदी और ढील को जोड़नेवाली जल-वहिकाओं के निष्क्रिय हो जाने के कारण अच्छे किस्मों की मछलियों की प्रचुरता के लिए जानी जाने वाली ये झीलें छोटी तथा शिकारी मछलियों का चारागाह बन कर रह गयी हैं । जलीय पौधें के जमाव ने इस क्षेत्र में मत्स्य उत्पादन प्रक्रिया एवं जल-कृषि को और भी मृतप्राय कर दिया है ।

कोशी की 'कौशिकी' भारत की नदियों में सबसे प्रचंड, अनिश्चित एवं परिवर्ती मानी जाती हैं । यह नेपाल स्थित हिमालय पर्वत के दक्षिणी पर्वत श्रंखला के दक्षिणी ढाल ($25^0 20'$ से $29^0 0'$ उ.अक्षांश तथा $85^0 20'$ से $89^0 0'$ पूर्वी देशांतर) से निकलकर पश्चिम में गोसाई थान (8.013 मी.) से पूर्व में कंचनजंघा (8,579 मी.) तक में फैली है । यह नेपाल और भारत में कुल मिलाकर 70,409 वर्ग कि.मी. आवाह क्षेत्र का निर्माण करती है । इसमें नेपाल का क्षेत्र

59,570 वर्ग कि.मी. एवं उत्तरी बिहार का 10,839 वर्ग कि.मी. का क्षेत्र है । क्षेत्रफल की दृष्टि से यह सिंधु (3,06,655 वर्ग कि.मी.) ब्रह्मपुत्रा (2,56,930 वर्ग कि.मी.) बाद तीसरी सबसे बड़ी नदी घाटी क्षेत्र है । गंगा (लम्बाई 2,575 कि.मी. एवं उद्‌गम स्थल गंगोत्री 3,950 कि.मी.) की तुलना में कोशी की आपरदनकारी प्रवृति अधिक है । अतः इसमें गाद की मात्रा भी अधिक है । इसके भौतिकी से यह स्पष्ट है कि अपेक्षाकृत छोटी प्रवाह पथ वाली यह नदी एक बड़ी अवाह क्षेत्र बनाती है तथा इसकी भू-आकृति एवं जल-निर्गम पद्धति इसे विष्व की सबसे समस्यात्मक नदियों में से एक बनाती है ।

कोशी नाम की उत्पति : 'कोशी' या 'कौशिकी' सदियों से कोशी के लिए ढेर सारे मिथक रहे हैं । प्राचीन ग्रन्थों एवं पुराणों जैसे स्कंद पुराण ,मत्स्य पुराण, बाल्मीकि रामायण तथा महाभारत में इसे 'कौशिकी' के नाम से जाना गया है । इन ग्रंथों में इसे वेगवती, बड़ी एवं पवित्र नदियों में से एक माना गया है जिसके दर्शन एवं स्नान से मनुष्य के पाप कट जाते हैं । स्कन्द पुराण के अनुसार कौशिकी महापराक्रमी क्षत्रिय राजा गधी की परी जैसी पुत्री थी जिसका भाई विश्वामित्र ब्रह्मा का उपासक एवं ऋषियों के श्रेणी में था । कौशिकी ने एक ब्राह्मन ऋषि ऋचिक से शादी कर ली । ऋचिक एवं कौशिकी का पुत्र कालांतर में देव विरोधी हो गया । पुत्र एवं पत्नी से अप्रसन्न होकर ऋचिक ने कौशिकी को नदी बन जाने का श्राप दिया । (बुकानन,1928)

एक प्राचीन लोककथा के अनुसार 'कौशिकी' एक जलपरी थी जिसका धड़ मानव का एवं शरीर का नीचला हिस्सा मछली का था । यह जलपरी मत्स्य देश में रहने वाले हर व्यक्ति द्वारा पूजित थी । मत्स्य या मछलियों का देश ब्रह्मपुत्रा के किनारे से कारकाकोटों के बीच अवस्थित था एवं कोशी जल मार्ग से मिली हुई थी (आर.के.चौधरी,1976) ।

बाल्मीकी रामायण के अनुसार कौशिकी एवं सत्यवती की कथाओं संबंधित है । इसके अनुसार विश्वामित्र की बड़ी बहन सत्यवती एक 'ऋषि रेहिका' से ब्याही गयी थी । सत्यवती अपने पति के साथ सशरीर स्वर्ग पहुँची । वहाँ से यह 'कौशिकी नदी' के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुई महर्षि विश्वामित्र ने इसलिए इसके किनारे पर अपना आश्रम बनाया ।

इस तरह गंगा, यमुना, सरस्वती एवं ब्रह्मपुत्र की तरह कोशी का अपना धार्मिक महत्व रहा है । सदियों से पवित्र दिनों में लोग इसमें स्नान कर पुण्य प्राप्त करते हैं तथा इसके किनारे पर देवालय खड़े किये गये । बराह महादेव (त्रिवेणी से 8 कि.मी. नीचे), कोकामुख (दोनों नेपाल में अवस्थित हैं) तथा देवन बाबा मंदिर (महिषी), कात्यायनी स्थान (सलखुआ) - ये सभी बिहार के सहरसा जिले में अवस्थित हैं, इत्यादि कुछ प्रमुख देव-स्थान हैं ।

कोशी का उद्‌गम/उत्पत्ति : इस नदी का उद्‌गम तीन हिमनदों के मिलन से होता है। प्रथम हिमनद गोसांई थान (8,013 मी.),दूसरा एवरेस्ट 8,848 मी. तथा तीसरा कंचनजंघा (8,579 मी.) से निकलती है । इन तीन मुख्य धाराओं का नाम सनकोशी, अरूण कोशी और तमार कोशी है । इन तीन पृथक धाराओं का नाम चतरा से 15 कि.मी. त्रिवेणी में होता है । ऊपरी प्रवाह क्षेत्र में अरूण कोशी की मुख्य सहायक नदियाँ फूंगचू, भांगचू, मेंचू, साईंचू, जारूचू, चिबलिंगचू तथा यारूचू हैं । इनके अलावा इन्द्रावती, भोते, लीखु और दूध कोशी जैसी वेगवती धाराएँ उत्तर से आकर सनकोशी में मिलती हैं । इन सात पवित्र धाराओं से त्रिवेणी नेपाल में इसका नाम सप्तकोशी है, चतरा (नेपाल), जहाँ से यह समतल क्षेत्र में से प्रवेश करती है, इसका नाम 'कोशी' पड़ जाता है । चतरा, नेपाल के ऊपर इसका कुल आवाह क्षेत्र करीब 59,570 वर्ग कि.मी. का है जिसमें 5,770 वर्ग कि.मी. हिमक्षेत्र में है ।

तालिका 1. चतरा के निकट स्प्तकोशी का निर्माण करने वाली विभिन्न सहायक नदियों का आवाह क्षेत्र

नदी	आवाह क्षेत्र (कि.मी.^{2})	कुल प्रतिशत
तमार	5770.1	10%
सनकोशी	18985.7	32%
अरूण	34524.7	58%
सप्त कोशी (त्रिवेणी के नीचे चतरा तक)	290.0	नगण्य
कुल	**59,570.5**	**100%**

स्रोत : सप्तकोशी-सनकोशी संयुक्त प्रोजेक्ट, कार्यालय स्टेटिसटिक्स, बराह क्षेत्र , नेपाल

आर्द्र क्षेत्रीय जलक्षेत्र : कोशी नदी का जल निस्सरण मुख्यतः हिमनदों एवं वर्षा से निर्धारित होता है । इसमें वर्षा जल 13-15% एवं हिमनदों का योगदान 85% है । गाद की मात्रा एवं भूचरण उत्तर-पूर्व बिहार के विवर्त्तनिक गर्त्त एवं बीच का लगभग समतल भाग को बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है ।

हिमनद : कोशी का एक बड़ा आवाह क्षेत्र (लगभग) 5770 वर्ग कि.मी. हिमालय श्रंखला के स्थायी हिमनदों से आच्छादित है । इसके चलते कोशी नदी में ग्रीष्म काल के दौरान काफी मात्रा में जल निस्सारण होता है । कंचनजंघा (13 कि.मी.), यालूंग (15 कि.मी.), जेमू (19 कि.मी.), रौंगबूक (17 कि.मी.) एवं केबाक (14 कि.मी.) इत्यादि कुछ महत्वपूर्ण हिमनद हैं ।

वर्षा : कोशी के ऊपरी आवाह क्षेत्र/घाटी में वर्षा की विशिष्टता का अध्ययन कोशी में जल निस्सारण के लिए महत्वपूर्ण है । आवाह क्षेत्र की औसत वर्षा दर 67.1'' (1704.3 mm.) परिकलित की गयी (सी.बी.एस., एच.एम.जी., नेपाल) । इस अवलोकन में दो वर्षों जून 1999 से मई 2001, के वर्षा दर की गणना बराह क्षेत्र में की गयी है जो त्रिवेणी, नेपाल का निचला आवाह क्षेत्र बनाती है । इस क्षेत्र की वर्षा दर के परिकलन से यह स्पष्ट होता है कि मानसून (जून-अक्टूबर ऋतु) में कुल हुई वर्षा का 84 से 96% अवक्षेपन 179.3 mm.एवं 306.7 mm है । (तालिका-2) जबकि अधिकतम अवक्षेपन 512.9 mm. जुलाई 1999 ई. एवं सितंबर 2000 ई. (1090.0 mm.) में था, जनवरी माह में यह दर अपने निम्नतम (0 to 1.9 mm.) पर था (1999-2001) ।

तालिका.2. कोशी के निचले आवाह क्षेत्र स्थित बराह क्षेत्र में (त्रिवेणी के नीचे, नेपाल) जून,1999 से मई 2001 तक वर्षा की मासिक दर

1999-2000		2000-2001	
महीना	**वर्षा दर (मि.मी.)**	**महीना**	**वर्षा दर (मि.मी.)**
जून	277.6	जून	272.1
जूलाई	512.9	जुलाई	602.0
अगस्त	335.1	अगस्त	923.4
सितम्बर	388.1	सितम्बर	1090.0
अक्टूबर	273.2	अक्टूबर	318.9
नवंबर	9.8	नवंबर	4.2
दिसंबर	5.9	दिसंबर	3.4
जनवरी	---	जनवरी	1.9
फरवरी	40.9	फरवरी	50.1
मार्च	97.4	मार्च	69.6
अप्रैल	104.4	अप्रैल	116.4
मई	107.0	मई	217.0
औसत वार्षिक वर्षा दर	**179.3**		**305.7**

स्रोत : सेन्ट्रल ब्यूरो ऑफ स्टेटिस्टिक्स (सी.बी.एस.) । एच.एम.जी. नेपाल, एक कॉम्पेंडियम ऑन इनवारनमेंट स्टेटिसटिक्स एवं कोशी प्रोजेक्ट विभाग, बिहार सरकार, पटना सचिवालय, पटना ।

जल-निस्सारण : कोशी नदी अपनी वेगवती धाराएँ एवं अस्थिर किनारों के लिए जानी जाती है । इस नदी का जल निस्सारण राबी की तुलना में आठ गुणा एवं ब्रह्मपुत्रा के बाद दूसरा स्थान पर आता है । सामान्य वर्षों में इस नदी का जल निस्सारण 1,75,000 क्यूसेक के आसपास रहता है लेकिन असामान्य वर्षा में जल निस्सारण के कीर्तिमान स्थापित हुए हैं जैसे- वर्ष 1929 (7,05,000), वर्ष 1984 (4,78,442 क्यूसेक), 1954 (8,55,000 क्यूसेक), वर्ष 1968 (9,25,000 क्यूसेक), 1984 (4,64,437 क्यूसेक) इत्यादि कुछ महत्वपूर्ण वर्ष हैं । (कोशी प्रोजेक्ट विभाग, बिहार सरकार, पटना सचिवालय, बिहार)

वर्ष 1999 के जून मास से वर्ष 2001 के जल निस्सारण के आंकड़े (लातिका-3) जो कोशी बराज भदरा नेपाल से एकत्र किये गये हैं, से पता चलता है कि नदी में जल निस्सारण की अधिकतम मात्रा दक्षिण पश्चिम मॉनसून के दौरान रहती है जब यह कुल जल निस्सारण का 83% बनाती है । यह मात्रा साल के बचे हुए 7 महीने में सिर्फ 17% रह जाती है । आँकड़ों के परिकलन के दौरान जल निस्सारण का अधिकतम बहाव (1,53,525 क्यूसेक और 2,09,082 क्यूसेक) जुलाई 1999 एवं अगस्त 2000 में परिकलित किये गये वहीं जनवरी 2000 एवं फरवरी 2001 के दौरान जब वर्षा की मात्रा अपने निम्नतम पर थी, जब वर्षा की मात्रा घट कर 7,005 क्यूसेक से 9,247 क्यूसेक पर आ गयी ।

कोशी में अवसाद भार एवं गाद : कोशी के आवाह क्षेत्र में प्रति इकाई गाद की मात्रा किसी भी अन्य नदी की तुलना में अधिकतम है । यह मात्रा चीन के पीली नदी के मुकाबले भी अधिक है (सिंह,1986) । कोशी की विध्वंसकारी बाढ़ अपने साथ बहुत अधिक मात्रा में गाद एवं छाजन लाती है । अपने अवसाद भार से यह उत्तरी बिहार के करीब 5,20,000 रू 8,00,000 हेक्टेयर एवं नेपाल के करीब 1,20,000 हेक्टेयर उपजाँऊ जमीन प्रतिवर्ष प्रभावित करती है । (यूनाइटेड नेशन्स,1951)

भौगोलिक रूप से भूतल ढाल एवं नदी के पथ की भू-आकृति जो अवसादी एवं बलूवाही चट्टानों का बना है, अवसाद एवं गाद की ज्यादा मात्रा के लिए जिम्मेदार है (दत्त मुंशी इत्यादि,1991) । नदी के आधार तल का ढाल यदि इसके उद्गम स्थल से लिया जाय तो मध्य भाग तक यह 1.52 मी. से लेकर 0.51 मी. तक आती है वहीं कुरसैला के नजदीक गंगा में अपने संगम स्थल पर यह सिर्फ 0.30 मी. रह जाती है । (दास,1967) । अपने बहाव पथ में क्रमिक रूप से समतल होने की प्रवृत्ति के चलते कोशी अपने अवसाद भार को जो यह चतरा नेपाल तक प्रचुर मात्रा में प्राप्त करती हैं, गंगा तक नहीं ला पाती है । इसका यह अवसाद भार क्रमिक रूप से चतरा के बाद कई जगह पर जमा हो जाती है ।

इसके अलावा कोशी आवाह क्षेत्र के नदी घाटी की कुछ विशेषताएँ जैसे,घाटी की ऊपरी भाग की अत्यधिक कमक चौड़ाई, खड़ी ढाल वाला किनारा, नदी के ऊपरी रास्ते में चौड़ी घाटी या विवर्तनिक गर्त का अभाव । ऊपरी भाग में उपस्थित तलीय चट्टानों की भू-आकृत्ति जिनके चलते रेत के बढ़ते स्तर एवं तराई क्षेत्र में जंगलों की अंधाधुंध कटाई के चलते नदी के आवाह क्षेत्र के ऊपरी हिस्से में अधिक वर्षा होने पर यह अपने साथ अत्यधिक अवसाद भार लाती है जिसमें बड़े गोल पत्थर, बड़े-छोटे कंकड़, रेत, गाद एवं बड़े पेड़ इत्यादि चतरा से हनुमान नगर तक (कोशी बराज) प्रचुर मात्रा में जमा हो जाते हैं एवं मध्यवर्ती एवं महीन गाद एवं महीन रेत सलखुआ (सहरसा) तक पहुँच जाती है । (दत्त मुंशी इत्यादि,1991) ।

अवसाद भार का विश्लेषण : बराह क्षेत्र के पास सप्तकोशी औसतन 1,00,000 एकड़/फीट/वर्ष अवसाद भार प्रति वर्ष लाती है जिसमें 16% रेतीले खुरदरे गाद (0.2 से 0.07 मि.मी.) एवं शेष महीन गाद (0.075 मि.मी. से भी छोटे अवसाद भार होते हैं । अवसाद भार के इस क्रम में सबसे अधिक अवसाद भार मॉनसून महीनों के दौरान (94.8%) जबकि वर्ष के अन्य महीनों में इसकी मात्रा 5% से ज्यादा नहीं रहती (सिंह, 1986; दत्त मुंशी इत्यादि, 1991) । यहाँ पर माह जून 1999 ई. से मई 2001 के दौरान किये गये अवलोकन में मानसून महीनों के दौरान अवसाद भार का 85 से 90% होता है । जुलाई 1999 एवं सितम्बर 2000 ई. सबसे ज्यादा अवसाद भार पाया गया (तालिका-3) ।

इस तरह कोशी के जल निस्सारण एवं अवसाद भार की अत्यधिक विभिन्नता इसे हिमालय श्रंखला की एक महत्वपूर्ण नदी होने के बाद भी इसे स्पष्ट विशेषताओं वाला वेगवती एवं प्रचण्ड धारा बनाती है ।

कोशी का विसर्पण : कोशी अपनी अपरदन प्रकृति के कारण अपने बहाव की दिशा अक्सर बदल देती है । इसके फलस्वरूप यह उत्तरी बिहार के अपने आवाह क्षेत्र में जो विवर्तनिक गर्त (उत्तर-पूर्वी भाग) एवं लगभग समतल बीच के भाग में किसी निश्चित जलवाहिका से नहीं बहती है । प्राचीन काल से यह उत्तर बिहार के बड़े भूभाग में अपना बहाव बदलती रहती है । बहाव का यह बदलाव अनिश्चित है एवं इस प्रक्रिया में पहले की जल नलिका में कुछ पानी रह ही जाता है एवं नदी नये जल नलिका से बहने लगती है (चिब्बर,1949) । इसके चलते इस क्षेत्र में अनेक मान एवं आर्द्र क्षेत्र का निर्माण होता है । दुनिया में इस तरह की दूसरी नदी सिर्फ चीन की 'ह्वांग हो' है (अहमद,1947) ।

तालिका-3. कोशी बराज के निकट जल निस्सारण एवं गाद निस्सारण की औसत मासिक दर

महीना	जल निस्सारण (क्यूसेक)		गाद निस्सारण (ग्रा./ली.)	
	1999-2000	2000-2001	1999-2000	2000-2001
जून	93,560	72,272	1,394	1,420
जलाई	1,53,625	1,78,492	2.452	1.849
अगस्त	1,08,899	2,09,082	2.190	1.570
सितम्बर	1,03,988	1,63,149	1.691	2.500
अक्तूबर	53,906	60,152	0.603	1.470
नवंबर	24,940	33,132	0.268	0.828
दिसंबर	19,451	21,999	0.198	0.202
जनवरी	7,005	12,348	0.075	0.060
फरवरी	7,229	92,47	–	0.077
मार्च	7,671	13,057	0.156	0.118
अप्रैल	16,477	14,890	0.476	0.233
मई	22,475	27,173	0.333	-

स्रोत : *कोशी प्रोजेक्ट, भदरा नेपाल*

विसर्पिक प्रवृत्ति के कारक : इस क्षेत्र की अन्य नदियों की तुलना में कोशी की अनिश्चित एवं निरंतर विसर्पन जल वैज्ञानिकों, भूगोलवेत्ताओं एवं भूवैज्ञानिकों के लिए सदा कौतुहल का विषय रहा है । इस नदी का अपने प्राकृतिक ढाल उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की जगह पश्चिम की ओर विसर्पित होने की प्रवृत्ति सदा ही रहस्यमय रही है। समय-समय पर इस संदर्भ में भूवैज्ञानिकों द्वारा अनेक मत प्रतिपादित किये गये हैं । इसमें सर्वमान्य मत दास (1968) एवं सिंह (1986) के माने जा सकते है इनके अनुसार अवसाद एवं गाद की मात्रा, तेज जल निस्सारण तथा कोशी के आवाह क्षेत्र के तल का ढाल इत्यादि इसके लिए जिम्मेदार कुछ महत्वपूर्ण कारक हैं ।

कोशी के निर्माण का इतिहास : 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध में कोशी पूर्णिया शहर से सटकर बहती थी । कालांतर में यह पश्चिम की ओर चलते हुए करीब 120 कि.मी. दूर सहरसा-दरभंगा की सीमा पर पहुँच गयी । पूर्णिया के पास छुटी हुई जल नलिका आज 'काली कोशी ' के नाम से जानी जाती है । उस दौरान चतरा (नेपाल) से अपने आगे की यात्रा में पूर्व एवं दक्षिण-पूर्व की ओर मुड़कर पूर्णिया शहर से सटकर बहती हुई गंगा से मनिहारी (कटिहार, बिहार) में

मिलती थी । 1956 ई. में यह मनिहारी के नजदीक काढ़ागोला में गंगा से मिलती थी । इसके बाद नदी पूर्णिया (1736) से अपने पश्चिम की ओर के प्रवसन में अपनी निर्मल (सुपौल) 1950 तक की यात्रा में ढेर सारे समानान्तर जल-नलिकाएँ छोड़ती चली गयी । कोशी की यह अनिश्चित एवं निरंतर विसर्पण की प्रक्रिया तालिका-4 से स्पष्ट है ।

तालिका-4. वर्ष 1736 से 1950 तक कोशी के विसर्पन की अनुमानित प्रवृत्ति

वर्ष	विसर्पण प्रवृत्ति (काल वर्षों में	दूरी (कि.मी.)	स्थान परिवर्तन (कि.मी.)	प्रवृत्ति (प्रतिशत)	प्रति वर्ष स्थान परिवर्तन औसतन
1736-1770	34	10.78	10.78	10	0.29
1770-1823	53	9.33	9.34	8	0.15
1823-1856	33	6.11	6.12	5	0.15
1856-1883	27	12.88	12.87	11	0.40
1883-1907	24	18.51	18.51	16	0.67
1907-1922	15	10.94	10.94	10	0.66
1922-1933	11	29.98	29.97	25	0.27
1933-1950	17	17.71	17.70	15	0.88

स्रोत : *कोशी प्रोजेक्ट विभाग, बिहार सरकार, पटना सचिवालय, पटना*

तालिका-4 से यह स्पष्ट है कि कोशी का यह पश्चिमी विसर्पन क्रमिक न होकर अनिश्चित है । इसकी प्रति वर्ष औसत विसर्पण गति सबसे ज्यादा 2.27 कि.मी./वर्ष 1922 से 1933 के दौरान थी । 1736 से 1950 ई. के दौरान इसके प्रतिवर्ष के औसत विसर्पण गति से इसके भी साक्ष्य मिलते हैं कि इसके पहले पिछले अधिकतम गति की दर पिछले मान से क्रमशः कम होकर पुनः अधिकतम को प्राप्त करने की रही है एवं अनेक बार यह अपने पूर्व के अधिकतम मान से ऊपर रही है । विसर्पन का यह गतिमान अन्य कारकों के अलावा नदी जल में गाद की मात्रा एवं अवसाद भार एवं नये जल-नलिकाओं में अवसाद के भरने की प्रक्रिया पर निर्भर रहती है । बाद में कोशी बराज एवं नहरों के निर्माण के बाद यह देखा जाता है कि कोशी के विसर्पन की इस गति पर रोक लगी है, एवं यह करीब अपने दोनों बाढ़ बचाव तटबंधों के बीच के क्षेत्र (जिसमें कुछ हिस्सा मधुबनी एवं दरभंगा,खगड़िया एवं भागलपुर तथा बड़ा हिस्सा सहरसा जिले को है) में थोड़ी बहुत बदलाव के साथ बह रही है ।

तालिका-5. कोशी नदी घाटी क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण धार

1.	तिलबे धार	29.	बलुआ धार
2.	धेबरा धार	30.	जागा धार
3.	बरधा धार	31.	फरही धार
4.	परवाने धार	32.	देमरा धार
5.	पट्टी धार	33.	सोने धार
6.	गजना धार	34.	मतहा धार
7.	तैलहा धार	35.	गाऊ धार
8.	कोनाली धार	36.	मराही धार
9.	जरूर धार	37.	पस्तपार धार
10.	दशहा धार	38.	रेशना धार
11.	भगा धार	39.	कासनगर धार
12.	नैया धार	40.	बाँसबारा धार
13.	बोचहा धार	41.	गोला धार
14.	छत्तरपुर धार	42.	हरेला धार
15.	सुरसर धार	43.	चौसा धार
16.	चिकनी बजार धार	44.	कीलपार धार
17.	मधैली धार	45.	कन्हुआ धार
18.	गोड़धुआ धार	46.	नीरेन धार
19.	सपहा धार	47.	बहदुरा धार
20.	बिननिया धार	48.	खुरहरी धार
21.	मोगला धार	49.	दुद्धी धार
22.	खारा धार	50.	लिबरी धार
23.	मरिया धार	51.	मरबरन्दी धार
24.	कजरा धार	52.	कारी कोशी धार
25.	फरियानी धार	53.	बोरा धार
26.	सीता धार	54.	निपपनिया धार
27.	सौरा धार	55.	पुरानी कोशी धार
28.	पेक्मा धार	56.	कदई नाला धार 1 और 2

स्रोत : *जल विकास एवं बाढ़ नियंत्रण, बिहार सरकार*

कुछ पूर्व की जल नलिकाएँ जो आज मान एवं धार के रूप से पूर्व पश्चिम तक अवस्थित हैं तालिका-5 में निरूपित किये गये हैं । इनमें से कुछ महत्वपूर्ण धार एवं मान *काली कोशी* (1736), *लिबारी* (1970) , *धमदाह* (1807-11), *सुरसुर* (1823-39), *हिरन* (1840), *दौस* (1873-92), *लोरान* (1893-1921), *दुसान* (1922), *परवाने* (1928), *धेमरा, तिलबै, धोधी* (1928-33), *पुरैन* (1938), *कोशी* (1950) है। इनमें से अनेक मानों का संपर्क अब मुख्य धारा से समाप्त हो चुका है । इनमें से कुछ वर्षा जल पर निर्भर हैं एवं ग्रीष्म ऋतु में सूख जाते हैं । इस सम्पूर्ण इलाके में अनेक मान, धार, चौर, बील, झील इत्यादि आज भी नदी के इसी चरित्र के चलते काफी संख्या में उपस्थित हैं ।

आर्द्र क्षेत्रों का निर्माण : कोशी अपने अवाह क्षेत्र के ऊपरी भाग में अपने प्रवाह के दौरान प्रचुर मात्रा में अवसाद भार लेकर चलती है । इस भाग में विवर्तनिक गर्तों के अभाव एवं तीव्र ढाल के चलते यह भार नदी के आवाह क्षेत्र के निचले एवं समतल भाग में समान रूप से वितरित हो जाते हैं । चतरा के बाद आवाह क्षेत्र अचानक ढाल से समतल में परिवर्तित हो जाता है एवं नदी का अवसाद जो गोल पत्थरों, छोटे-बड़े कंकड़ों, मोटे एवं महीन बालू इत्यादि पूर्व के जल नलिकाओं में भर जाते हैं । इसके फलस्वरूप नदी तल छिछला एवं उथला हो जाता है । इसके चलते नदी वैसी नयी नलिका बना लेती है या तलाश कर लेती है जिसकी गहराई अधिक होती है एवं किनारे छिछले नहीं होते । इस तरह विसर्पण की यह प्रक्रिया सतत चलती रहती है एवं नदी अनेक शाखाओं में बँटती रहती है । इस तरह के अवसाद भार से भरे हुए अवरूद्ध शाखाएँ एवं नलिकाएँ समूचे कोशी प्रक्षेत्र में फैली हुई है । गर्तों एवं विवर वाले ऐसी शाखाएँ स्थानीय तौर पर मान या धार कहलाती हैं एवं उथले तौर पर ये बड़े आर्द्र क्षेत्र एवं दलदली इलाका बनाती हैं । कुछ महत्वपूर्ण आर्द्र क्षेत्र आज भी मुख्य धारा से जुड़े हुए हैं ।

तालिका - 6. भीमनगर बराज के मुख्य पूर्वी शाखा (नहर) से निकलने वाली नहरें

1.	राजपुर शाखा (नहर) शाखाएँ
2.	सहरसा शाखा (नहर)
3.	गमहरिया शाखा (नहर)
4.	मधेपुरा शाखा (नहर)
5.	मुरलीगंज (नहर)
6.	पूर्णियाँ (नहर)
7.	अररिया शाखा (नहर)

स्रोत : *कोशी प्राजेक्ट विभाग, बिहार सरकार, पटना सचिवालय, पटना*

कोशी की जल निर्गम पद्धति : कोशी का जल निर्गम गंगा में होता है । गंगा से अपने संगम के क्रम में अपने आवाह क्षेत्र के निचले भाग में यह विसर्पित होकर कई नलिकाओं में बँट जाती है । ये सारी नलिकाएँ गंगा में गिरने से पहले डुमरिया घाट (खगड़िया,बिहार) के नजदीक पुनः एक होकर गंगा में निर्गम करती है एवं डेल्टा का प्रारूप देती है ।

इस अवलोकन के दो वर्षों में (1999 से 2001 ई.) कोशी नदी बराज से कोपरिया के बीच कई जल नलिकाओं में विभक्त होती है । इस 150 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में ये नलिकाएँ 5 से 10 कि.मी. की दूरी से पूरे कोशी दियरा क्षेत्र से एक-दूसरे से अलग होते हैं । अपने बहाव के अंतिम (दक्षिणी) चरण में कोपरिया के नीचे धमहरा घाट के पास से इसमें विसर्पन की प्रक्रिया थम जाती है एवं नदी एक निशचित जलनलिका में करीब-करीब गंगा के समानान्तर बहती है ।

तालिका-7. कोशी नदी घाटी क्षेत्र के कुछ महत्वपूर्ण आर्द्र क्षेत्र एवं चौर

1.	निर्मल चौर	36.	धमदाहा चौर
2.	बलुआ करजोन चौर	37.	हरिसाख चौर
3.	चनकला चौर	38.	पनदामी चौर
4.	जरौली चौर	39.	पचरा चौर
5.	कुशेश्वर स्थान चौर	40.	कनौला चौर
6.	बुढ़िया चौर	41.	मुसहरी चौर
7.	मरीचा चौर	42.	बसहे चौर
8.	ढेकुलिया चौर	43.	सजराना चौर
9.	बढ़िया चौर	44.	पीरनगर चौर
10.	कजरा चौर	45.	कुरसैला चौर
11.	ढेंगराहा चौर	46.	बरेला चौर
12.	मानपुर नरही चौर	47.	बेलदौर चौर
13.	सुदामा चौर	48.	जादूपट्टी चौर
14.	तराबे चौर	49.	दुरगो चौर
15.	बेईयापट्टी चौर	50.	टैहरा चौर
16.	गाडया चौर	51.	नाथपुर चौर
17.	रईसी चौर	52.	फतेहपुर चौर
18.	भाग्गय चौर	53.	गोखुलपुर चौर
19.	रघुनाथपुर चौर	54.	मीरदौलपुर चौर
20.	मटमगीर चौर	55.	भवानीपुर चौर
21.	श्रीनगर चौर	56.	गमहरिया चौर
22.	नवलाखी चौर	57.	हरिहरपट्टी चौर

23.	सिंधवा चौर	58.	कुसनौर चौर
24.	करमा चौर	59.	गमना चौर
25.	पटुआ चौर	60.	भतही चौर
26.	सहुरिया चौर	61.	बसैला चौर
27.	समदा चौर	62.	लक्ष्मीपुर चौर
28.	बरसाम चौर	63.	भगना चौर
29.	हरपुर चौर	64.	मरथोवा चौर
30.	भदा चौर	65.	तिलंगवा चौर
31.	बरीबन चौर	66.	फुटकाही चौर
32.	कमलिया चौर	67.	मनटोहा चौर
33.	श्याम चौर	68.	बरेठा चौर
34.	नेनुआर चौर	69.	भंडरता चौर
35.	पड़हरा चौर	70.	कवेटी चौर

स्त्रोत : जल विकास एवं बाढ़ नियंत्रण, बिहार सरकार

उत्पादन क्षमता : कोशी नदी प्रणाली अनेक छोटी सहायक नदियों जैसे बागमती, बूढ़ी गंडक, तिलजुगा, धेमरा, बलान, कमला, काडा, जीवछ इत्यादि से बनी है । इस प्रणाली में इन सहायक नदियों के अलावा ढेर सारे धार, ढील बील, मान, चौर एवं आर्द्र क्षेत्र आते हैं । ये क्षेत्र, जल-कृषि जिसमें जलीय फल एवं मात्स्यिकी इत्यादि आते हैं, के लिए उपयोग में लायी जाती हैं एवं एक बड़ी आबादी की जरूरतों को पूरा करती है । कोशी क्षेत्र बिहार के कुल मछली उत्पादन का 50% उत्पादित करती है ।

किसी भी जल के उत्पादन स्तर का अनुमान उसमें उपलब्ध जीवों की संख्या और प्रकार के आधार पर लगाया जा सकता है । इनमें प्लावक प्रथम समूह के सूक्ष्म जीव हैं जो वनस्पति एवं जन्तु दोनों मूल के जीवों का एक समुदाय बनाते हैं । ये प्लावक मछलियों तथा अन्य प्राणियों की खाद्य श्रृंखला में आहार के रूप में विशेष भूमिका निभाते हैं । इनके संख्यात्मक एवं गुणात्मक प्रकार किसी भी जल क्षेत्र की उत्पादकता में विषेश स्थान रखती है । आम तौर पर यह पाया गया कि ग्रीष्म ऋतु में इन प्लवकों की संख्या में खासी वृद्धि पायी गयी एवं मॉनसून ऋतु के दौरान इनकी संख्या में कमी पायी गयी । यह भी पाया गया कि वनस्पति प्लवकों (240-370 U/L) की संख्या जन्तु प्लवकों (15-98 U/L) के मुकाबले अधिक थी । यह संख्या अपरदनकारी नदियों के प्रकृति के अनुकूल है ।

मछलियों के समूह में इस प्रणाली में 87 प्रजाति की मछलियाँ पायी गयी जो 20 विभिन्न परिवारों से थी । कार्प, विडाल जाति एवं शिकारी मछलियों के अलावा सहायक श्वसन तंत्र के साथ वायु से श्वास लेने वाली मछलियों की विभिन्न प्रजातियाँ जैसे *एनाबस टेस्टीडूनियस, ए. ओलिगोलेपिस, हेट्रोप्यूनिटीस फॉसीलिस, क्लेरियस बेट्राकस,* चन्ना प्रजाति, *मोनोपटेरस कुचिया, मेकोगनेपस, कोलिसा फासियेटस, लेपिडोसिफेलिक्थेस गुंटिया, कोलिसा फेसियेटस, मस्टासिन बेलस आरमेटस, नोटोपटेरस नोटोपटेरस, नोटोपटेरस चिताला* इत्यादि कुछ प्रमुख प्रजातियाँ हैं जिनका निवास स्थान कोशी क्षेत्र के चौर एवं आर्द्र क्षेत्र में है (देहाद्राई,1972) । स्थानीय तौर पर इन मछलियों के खपत के अलावा इन्हें सिलीगुड़ी (प.बंगाल), कोलकाता, पटना, भागलपुर, दरभंगा एवं उत्तरी पूर्व के राज्यों में बेचा जाता है । वर्ष 2001 के दौरान करीब 1135 टन मछलियाँ सिलीगुड़ी के मुख्य आढ़त में इस क्षेत्र से आवक हुई ।

मात्स्यिकी के अलावा सीप एवं मोलस्क के करीब 28 प्रजातियाँ जिनमें गेस्ट्रोपोड 18 प्रजाति एवं वाइभल्व की 10 प्रजातियों में से कई के वाणिज्यक उपयोग सदियों से इस क्षेत्र में होता आया है । इनके प्रमुख वाणिज्यिक उपयोग सीप के बटन एवं मोलस्क कंकाल का चूना के अलावा उर्वरक, मोजैक, टाइल्स एवं खाद्य के रूप में होता है । ऐसे कोशी क्षेत्र में कई मान एवं धारा से संपर्क टूट जाने से जल के स्थिर हो जाने एवं मनुष्यों की बढ़ती क्रियाशीलताऐं के चलते इनकी आबादी में काफी कमी आई है ।

इसके अलावा यह क्षेत्र मछली के जीरों के उत्पादन में भी अग्रणी स्थान रखता है। मत्स्य बीज उत्पादन में इस क्षेत्र का स्थान देश में दूसरा है तथा इस क्षेत्र के बीज उत्तम श्रेणी के होते हैं (झींगरन,1985) । पश्चिम बंगाल एवं बंगला देश के मछुआरे इस क्षेत्र से बीज संग्रह करना पसंद करते हैं (दत्त मुंशी *इत्यादि,* 1991) वर्ष 2000 में मछलियों के जीरे (5 एम.एम.से 5.5.से 5.5 एम.एम.) 78,500 मिलियन तक उत्पादित हुए ।

साथ ही, यह क्षेत्र अपने मखाना (यूराईल फेरौक्स) उत्पादन के लिए भी जाना जाता है । अनुमानतः एक एकड़ जलकर में 4-6 क्विंटल मखाना उत्पादन इस क्षेत्र में होता है एवं दरभंगा एवं सहरसा जिलों में ही सिर्फ ऐसे 4800 से ज्यादा जलकर हैं ।

सदियों से कोशी नदी तंत्र उत्तरी बिहार में बाढ़ की विभीषिका के साथ उत्तम एवं उपजाऊ मिट्टी प्रदान कर नवजीवन का संदेश देता है । इस क्षेत्र की सभ्यता, संस्कृति तथा आर्थिक क्रिया-कलाप (कृषि/बागवानी/मात्स्यिकी) पर इस तंत्र का अटूट प्रभाव परिलक्षित होता है । वस्तुतः इस क्षेत्र की समस्त पारिस्थितिकी इस तंत्र के जल स्त्रोतों पर आधारित है । पर

हाल के दिनों में इसके आवाह क्षेत्र में बढ़ती आबादी एवं जंगलों की अंधाधुंध कटाई से इस तंत्र में बढ़ती मिट्टी की मात्रा, तल के छिछलेपन के चलते जलग्रहण की कमी, शहरों एवं कारखानों के कचरे एवं मलबे, बाँध के चलते जल आयतन एवं जल प्रवाह की कमी (जिसके चलते मछलियों के प्रजनन में बाधा उत्पन्न होती है), बड़े पैमाने पर प्रजनक एवं किशोरी मछलियाँ का आखेट, जीरों का अत्यधिक दोहन इत्यादि से इस तंत्र के उत्पादक क्षमता में गुणात्मक कमी आयी है । इनके अलावा आर्द्र क्षेत्र में बढ़ती आबादी द्वारा अत्यधिक कृषि कर्म में इस क्षेत्र को लाने से इसमें उत्तरोत्तर कमी आ रही है । मानों में अत्यधिक अपतृणों का जमाव एवं जलीय पौधों के घने जमाव ने भी मत्स्य उत्पादन की प्रक्रिया को कठिन बना दिया है । इससे शिकारी मछलियों की संख्या में वृद्धि हुई है एवं अच्छे प्रजाति की मछलियों का अभाव हुआ है ।

अतः इस क्षेत्र के बेहतर वैज्ञानिक प्रबंधन एवं समुचित संरक्षण तथा सभी वर्गों के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है जिससे कि इस क्षेत्र का समेकित विकास सुनिश्चित हो ।

सन्दर्भ :

अहमद,ई.: 'ह्वांगहो ऑफ बिहार 'अलीगढ़ मैगजीन (स्प्रिंग नम्बर 1946-47),पप 107.

बुकानन,एफ. (1928) : एन एकाउंट ऑफ दी डिस्ट्रीक्ट गजेटीयर,बिहार गवरमेन्ट प्रिंटिंग प्रेस,गया गुलजारबाग,335,प.4

चिम्बर,एच.एल. (1949) : वेस्टरली ड्रीफ्ट ऑफ रिवर्स ऑफ नार्दन इंडिया एंड पाकिस्तान,बुल एन.जी.एस.आई.,बनारस

चौधरी,आर.के. (1976) : मिथिला इन दी एज ऑफ विद्यापति,चौखंभा,बनारस ।

दत्तमुंशी; दत्तमुंशी; चौधरी,एल.के. और ठाकुर,पवन (1991) : फिजियोकग्राफी ऑफ दी कोशी रीवर बेसिन एंड फारमेशन ऑफ वेटलैण्ड इन नार्थ बिहार ए यूनीक फ्रेश वाटर सिस्टम,ज.फ्रेशवाटर बायॉल. 3(2) : 105-122

दास,के.एन. (1967) : दी कोशी ड्रेनेज एंड इट्स जीयोग्रफिकल सिगनीफीकेंस,ट्रांस.आई.सी.जी.4 : 27-28.

दास,के.जे. (1968) : स्वायल इरोसन एंड दी प्रोबलम ऑफ सिलटींग इन दी कोशा कैचमेंट जे.एस.डब्ल्यू.सी.आई.,16 (3-4) : 62-64.

देहाद्राई, पी.भी. (1972) : प्रोग्रेस ऑफ दी वर्क ऑन दी टेकनीक ऑफ कल्चर ऑफ एयर ब्रीदींग फीसेज इन स्वाम्प्स इन बिहार,आसाम एंड मैसर सेंटर ऑफ दी प्रोजेक्ट,सेकेण्ड वर्कसॉफ हेल्ड एट पटना,दिसम्बर,20-21,पप.1-26

झा,बी.एन. (1979) : प्रोब्लम्स ऑफ लैंड यूटिलाइजेशन-ए केश स्टडी ऑफ दी कोशी रीजन; क्लासिक पब्लिकेशन्स,नई दिल्ली,201,पप.

झींगरन,भी.जी. (1985) : फिश एण्ड फिशरीज ऑफ इंडिया; हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कारपोरेशन (इंडिया), देहली.

सिंह,.ए.के.(1986) : करेक्टरिस्टिक ऑफ सिल्ट डिपोजिशन इन द इन दी कोशी रिवर बेसिन,नेशनल ज्योग्रफर 21(1) :107-115.

यूनाइटेड नेशन्स (1951) : ब्येरो ऑफ फ्लड कंट्रोल ऑफ दी इकोनोमिक कमीशन फॉर एशिया एंड फार ईस्ट : मेथड्स एंड प्रोब्लम्स ऑफ फ्लड कंट्रोल इन एशिया एंड फार ईस्ट; फ्लड कंट्रोल सिरीज,नं.2,प.23.

ए.पी.आर.ओ.एस.सी.,1995 : इरीगेशन पोटेंशियलिटी ऑफ रेन फॉल इन नेपाल,काठमांडू, नेपाल ।

सेंट्रल ब्यूरो ऑफ स्टेटिस्टक्स (सी.बी.एस.), एच.एम.जी.,नेपाल,ए कम्पेनडम ऑन इनवारमेंट स्टेटिस्टक्स ।

गंगा नदी में जन्तु प्लवकों पर मौसम का प्रभाव

राघवेन्द्र प्रताप एवं मनीश चन्द्र वर्मा
वि. वि. प्राणी विभाग, ति. मा. भा. वि .वि.
भागलपुर - 812007

सारांश

गंगा नदी में जन्तु प्लवकों की मात्रा नदी के पानी के रासायनिक गुणों पर निर्भर करता है । वर्तमान कार्य में जन्तु प्लवकों का घनत्व दो स्तरीय प्रभाव दिखलाते हैं जिसमें दो अलग-अलग उन्नतांश पाया गया जिसमें पहला उन्नतांश मई के महीने में *क्लेडोसेरन* जन्तु प्लवक पाये गये जबकि दूसरा उन्नतांश जनवरी महीने में पाया गया । इसमें मुख्यतः रोटीफर एवं कोपीपोड थे । रोटीफर एवं कोपीपोड का घनात्मक सामंजस्य घुलनशील ऑक्सीजन, कुल क्षारीयता एवं पी.एच. थे जबकि क्लेडोसेरन पानी के तापमान, क्लोराइड, सी.ओ.डी. एवं बी.ओ.डी से अधिक प्रभावित होते हैं । वर्तमान अध्ययन में पाये गये जन्तु प्लवक की गणना में रोटीफर > क्लेडोसेरन > कोपीपोड पाया गया । मानसून के दौरान जन्तु प्लवकों की संख्या नगण्य पाई गई ।

प्रस्तावना

गंगा भारत की सबसे पवित्र नदी है । यह हिमालय से निकलकर उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड के मैदानों से बहती हुई पश्चिम बंगाल की खाड़ी में मिल जाती है ।

जन्तु प्लवक उत्पादक हरित प्लवक एवं द्वितीय उपभोक्ता के मध्य एक सेतु का कार्य करता है जो हरित प्लवकों का भोजन करता है और स्वयं द्वितीय परपोषी के भोजन के लिये प्रस्तुत रहता है । इस तरह यह जलीय वातावरण में प्राथमिक ऊर्जा के बहाव को दिशा प्रदान करता है ।

भारतवर्ष में बहुत सारे जीव विज्ञानियों ने पानी के रासायनिक प्रकार के विभिन्न आयाम एवं जन्तु प्लवकों के स्वभाव पर अध्ययन किया है जिसमें प्रमुख जीव विज्ञानी चक्रवर्ती व अन्य

1959, राधाकृष्णा एवं रेड्डी 1979, प्रकाश व अन्य, 1978, सम्पत व अन्य, 1979, वर्मा व अन्य, 1984, वैंकटसरवल, 1986, कुलश्रेष्ठ व अन्य, 1991 और 1997, राय, 1999, नायक व पुरोहित, 2001 आदि प्रमुख हैं ।

भारत में मछलियों का व्यावसायिक महत्व है । इसके लिये मत्स्य पालन को बढ़ावा दिया जा रहा है । पिछले कई दशकों से गंगा नदी पर शोधकार्य करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है । इसमें कुछ विशिष्ट जीव विज्ञानी क्रमशः लक्ष्मी नारायण 1965, रे व अन्य 1966, सक्सेना 1966, अग्रवाल व अन्य 1978, राय 1978, सिकंदर व त्रिपाठा 1983, विलग्रामी व अन्य 1985, विलग्रामी एवं दत्तामुंशी 1985, सिन्हा 1992, चौधरी 1987, चक्रवर्ती एवं मोइत्रा 1993, श्रीवास्तव एवं सिन्हा 1989 और 1995, चट्टोपाध्ययाय व अन्य 1984 है ।

जबकि दूसरे अन्य नदियों के संदर्भ में भी पूरे भारतवर्ष में शोध कार्य हुये जिसमें प्रमुख हैं चक्रवर्ती व अन्य 1959, (यमुना), एन. के. दाद 1981 (चम्बल), कुलश्रेष्ठ व अन्य 1991 (चम्बल), प्रकाश एवं रावत 1978 (यमुना), राधाकृष्णन एवं रंगारेड्डी 1976 (कृष्णा), श्रीनिवास एवं नारायणन 1979 (कर्वे), वर्मा व अन्य 1984 (कालिंदी), वर्मा 1990 (स्वर्णरेखा), नायक एवं पुरोहित 2001 (ब्रह्माणी) ।

उपरोक्त जीव विज्ञानियों ने विभिन्न नदियों के पानी के रासायनिक संरचना, जन्तु व हरित प्लवकों की उपस्थिति एवं उसपर विभिन्न घटकों के प्रभाव का व्यापक अध्ययन देश के विभिन्न भागों में किया है । लेकिन जन्तु प्लवकों पर मौसम एवं अन्य रासायनिक प्रभाव का अध्ययन स्थानीय जलीय पारिस्थितिकी अर्थात् भागलपुर जिले के कहलगाँव में गंगा प्रवाहित होती है जिसमें मुख्यतः एन.टी.पी.सी. के अवशिष्ट मिलने वाले क्षेत्र में नही किया गया है । इस औद्योगिक अवशिष्ट के द्वारा जलीय प्लवकों पर प्रभाव का अध्ययन मुख्यतः इस शोध में किया गया है ।

शोध सामग्री एवं विधि

गंगा नदी से पानी एवं जैव प्लवक का संचय प्लास्टिक के बोतल में निर्धारित नियमानुसार किया गया तथा प्लवक का संचय प्लवक जाल के माध्यम से किया गया । जैव प्लवक की पहचान नीधम एवं नीधम 1962 एवं पानी का रासायनिक अध्ययन APHA, AWWA एवं WPCF में वर्णित नियमानुसार किया गया ।

निष्कर्ष एवं विवेचना

गंगा नदी में मौजूद जैव प्लवकों का विवरण तालिका-1 एवं गंगा जल का रासायनिक विश्लेषण तालिका - 2 में दिया गया है ।

तालिका - 1 अध्ययन में पाए गए जैव प्लवक

रोटीफरस	कोपीपोड
ब्रेकियोनस क्लेसिफ्लोरस	साइक्लोप्स स्पीसीज
ब्रेकियोनस क्वाडरीडेंटा	नापुलस स्पीसीज
काराटेला ट्रोपिका	मीजो साइक्लोप्स
काराटेला प्रोकरभा	पारा साइक्लोप्स
फिलिनिया स्पीसीज	**क्लेडोसेरा**
स्वीमिंग रोटेटेरिया	डेफनिया स्पीसीज
डायकोसेरा	मोइना स्पीसीज
माइकोकोडोन स्पीसीज	सीरा डेफनिया
फिलोडीना स्पीसीज	एलोना स्पीसीज

अध्ययन के दौरान गंगा नदी का बहाव अमूमन धीरे-धीरे पाया गया (पहवा व मेहरोत्रा 1966, सिंह एवं श्रीवास्तव 1989 और 1991) ।

जैव प्लवकों की जनसंख्या में दो तरह का बदलाव देखा गया । ग्रीष्म काल के पहले पक्ष की जनसंख्या में वृद्धि देखी गई जिसमें क्लेडोसेरन जन्तु प्लवकों का बहुतायत था, यह मई महीने में संचय किया गया सारणी-4 जिसका घनात्मक संबंध प्रदूषण से है ऐसा निष्कर्ष पिछले जीवविज्ञानियों ने भी दी थी । (रे व अन्य 1966, प्रकाश व अन्य 1978, दाद 1981, कुलश्रेष्ठ व अन्य 1991) ।

फिर विलग्रामी व अन्य 1985 एवं कुलश्रेष्ठ व अन्य 1992 ने कहा कि डेफनिया एवं मोइना बहुत ही प्रदूषण सहने वाले जन्तु प्लवक हैं ।

तालिका - 2 गंगा नदी के सतही जल में मौसमी, भौतिक एवं रासायनिक बदलाव

$\bar{X} + \sigma$ (CV%)

प्राचल	मौसम		
	ग्रीष्म	मानसून	शीत
	(मार्च-जून)	*(जुलाई-अक्टुबर)*	*(नवम्बर-फरवरी)*
पानी का तापमान	30.1 ± 2.45	29.9 ± 1.52	20.62 ± 2.08
पी.एच.	7.38 ± 0.32	7.2 ± 0.02	7.83 ± 0.31
घुलनशील ऑक्सीजन (एम.जी/एल.)	9.5 ± 1.50	8.0 ± 1.60	10.8 ± 1.25
मुक्त ऑक्सीजन (एम.जी/एल.)	8.8 ± 3.48	8.0 ± 1.20	2.00 ± 1.32
कुल क्षारीयता (एम.जी/एल.)	196.3 ± 38.75	112.6 ± 16.78	186.0 ± 18.30
क्लोराइड (एम.जी/एल.)	30.75 ± 2.46	9.05 ± 9.63	18.86 ± 6.74
सल्फेट (एम.जी/एल.)	53.58 ± 11.0	105.32 ± 16.82	52.56 ± 15.52
कुल ठोस पदार्थ (एम.जी/एल.)	0.46 ± 0.02	1.51 ± 0.98	0.40 ± 0.05
बी.आ.डी.(एम.जी/एल.)	4.95 ± 0.4	6.38 ± 1.5	3.4 ± 0.53
सी.ओ.डी.(एम.जी/एल.)	9.2 ± 10.6	12.85 ± 2.03	6.58 ± 1.50

दूसरा उन्नतांश सर्दी के मौसम में अधिक थी जिसमें कोपीपोड व रोटीफर समुदायों के जंतुप्लवक की प्रधानता थी ।

तालिका - 3 में जनवरी के महीने में रोटीफरों की घनात्मक संबंध घुलनशील ऑक्सीजन, कुल क्षारीयता एवं पी.एच. (तालिका - 5) में पाया गया ।

कुछ इसी तरह का प्रभाव पहले काम कर चुके जैव वैज्ञानिकों ने भी देखा है । जैसे पाहवा एवं मेहरोत्रा 1966 , राय व अन्य 1966, बिलग्रामी एवं दत्तामुंशी 1985, सिंह एवं श्रीवास्तव 1989 बी, सिन्हा 1992, चक्रवर्ती एवं मोइत्रा 1993 ।

रोटीफर के सभी समुदायों के मध्य *ब्रेकियोनस क्लेसिफ्लोरस* एवं *काराटेला ट्रोपिका* लगभग सभी सैम्पल में पाया गया, ऐसा कुलश्रेष्ठ व अन्य 1991, 1992 ने भी कहा था कि यह वातावरण में एक बहुत बड़े अन्तर तक के परिवर्तन को भाँति सह लेता है ।

जुलाई	-	-	18 (4.40)
अगस्त	-	-	20 (4.38)
सितम्बर	14 (2.68)	5 (2.56)	10 (2.08)
अक्टूबर	11 (2.07)	14 (5.20)	-
नवम्बर	108 (22.43)	37 (16.30)	-
दिसम्बर	112 (22.72)	54 (23.61)	-
जनवरी	130 (26.75)	57 (24.46)	-
फरवरी	74 (15.43)	45 (18.90)	-
कुल	**490**	**242**	**456**

तालिका - 5 : कोरीलेशन, कॉफीसियेन्ट, जन्तु प्लवक के विभिन्न समुदाय एवं गंगा नदी के भौतिक-रासायनिक मानों के मध्य ।

प्राचल	समुदाय		
	रोटीफर	कोपीपोड	क्लेडोसेरन
पानी का तापमान	-0.4832 “““	(-)0.4602 “”	0.1876
पी.एच.	0.2867	0.3895	0.1895
घुलनशील ऑक्सीजन	0.6476 “”	0.6802 “	(-)0.0090
मुक्त कार्बनडाइऑक्साइड	(-)0.7813 ‘	(-)0.8279 ‘	0.2732
कुल क्षारीयता	0.5529 “”	0.4832 “”	0.2838
क्लोराइड	(-)0.0648	(-)0.0483	0.7022 “
सल्फेट	(-)0.6508 “	(-)0.06764 “	0.4233
सी.ओ.डी.	(-)0.6829 “	(-)0.6960 “	0.5357 “”
बी.ओ.डी.	(-)0.4770 “”	(-)0.5381 “	(-)0.3023
कुल ठोस पदार्थ	(-)0.4628 “”	(-)0.4898 “”	(-)0.1442

=P<0.001, “ =P<0.01, “ = <0.02, “” = P<0.1, “” = P<0.5

तालिका- 6 गंगा नदी के विभिन्न जैव प्लवकों का शेनॉन-वेभर सामुदायिक विचलन मान

महीना	रोटीफर	कोपीपोड	क्लेडोसेरन
मार्च	0.2072	0.3052	0.7946
अप्रैल	0.0883	0.0987	0.8850
मई	0.0682	0.0784	1.4283
जून	0.0596	0.0738	1.2032

जुलाई	-	-	0.3062
अगस्त	-	-	0.2955
सितम्बर	0.1396	0.1391	0.1164
अक्टूबर	0.1145	0.246	-
नवम्बर	1.3837	0.6278	-
दिसम्बर	1.3815	1.4915	-
जनवरी	1.5098	1.4980	-
फरवरी	0.9159	0.6466	-

वर्षपर्यन्त अध्ययन के दौरान यह देखा गया कि मानसून के दौरान गंगा नदी का जल काफी गंदला रहता है । पानी के साथ भारी मात्रा में मिट्टी एवं अन्य ठोस पदार्थों के बहते रहने के कारण एवं तीव्र प्रवाह के चलते गंगा नदी में जैव-प्लवकों की संख्या नगण्य सी होती जा रही है । केवल वही जैव-प्लवक पाये जाते हैं जिनके शरीर अपेक्षाकृत मजबूत होते हैं । कुछ इस तरह का निष्कर्ष सिंह एवं श्रीवास्तव 1991 एवं कुलश्रेष्ठ व अन्य (1991, 1992) ने भी दिया है ।

सामुदायिक विचलन मान ($\bar{d}$) (तालिका-3 एवं तालिका-6 में प्रदर्शित) के अनुसार गर्मी (जून) एवं मानसून भर (जुलाई-अक्टुबर) में अत्यधिक होने के कारण इसका मान बहुत कम होता है । अधिक सामुदायिक विचलन मान गर्मी (मार्च-मई) एवं मानसून भर (नवम्बर-फरवरी) में होता है जिसका कारण यह है कि इस समय गंगा का जल शुद्ध होता है । अतः हम कह सकते हैं कि जैव-प्लवकों के अच्छे उत्पादन के लिये पीने योग्य पानी अधिक उपयुक्त है । इस बात की पुष्टि त्रिवेदी 1981, कुलश्रेष्ठ व अन्य (1991, 1992) एवं सिन्हा 1992 ने भी किया है ।

आभार

इस कार्य के सफलता के लिये विभागाध्यक्ष, प्राणी विज्ञान, वि.ति.मा.भा.वि., भागलपुर को प्रयोगशाला एवं अन्य आवश्यक रसायनों की आपूर्ति के लिये आभार व्यक्त करते हैं ।

संदर्भ ग्रन्थ

अग्रवाल, डी. के गौर, एस. डी. तिवारी, आई, सी. एन. नारायणस्वामी एवं एस.एम.मारवाह, 1978 : वाराणसी में गंगा नदी का भौतिक एवं रासायनिक प्रकार का अध्ययन । इण्डियन ज. एनवाय.हेल्थ । 18(3) : 201-206 ।

विलग्रामी, के. एस. एवं जे. एस. दत्तामुंशी, 1985 : गंगा नदी के पर्यावरण पर मनुष्य के गतिविधियों का प्रभाव एवं जलीय जीवों का संरक्षण (पटना से फरक्का तक) अंतिम तकनीकी सार पत्र । पर्यावरण मंत्रालय, नई दिल्ली । पृष्ठ सं. 1-97 ।

विलग्रामी, के. एस., जे. एस. दत्तामुंशी एवं बी. एन. भौमिक, 1985 : बिहार के प्रदूषित स्थलों पर गंगा नदी का जैविक अध्ययन । सिम्पोजियम ऑन बायोमॉनिटरिंग स्टेट इनवायरनमेंट, आई. एन.एस.ए. 1 : 141-145 ।

चक्रवर्ती, आर.डी., पी.राय एवं एस.वी.सिंह, 1959 : इलाहाबाद में यमुना नदी के भौतिक व रासायनिक प्रकार का पादप प्लवक के संख्या पर असर । इंडियन ज.फिश 6 (1) : 186-203 ।

चक्रवर्ती, टी.के. एवं एस.मोइत्रा, 1993 : बोकारो स्टील सिटी में गंगा का पर्यावरणीय स्वरूप एडवांस सार भारतीय साइंस कांग्रेस का 8वाँ सेसन, गोवा 25 ।

दाद, एन.के., 1981 : चंबल नदी का लिम्नालोजिकल अध्ययन प्रदूषण के संबंध में । पी.एच.डी. थिसिस, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ।

कुलश्रेष्ठ, एस.के., अधोलिया, यू.एन. भटनागर, ए. ए. खान एवं एम वघेल, 1992 : नागदा के नजदीक चंबल नदी के जन्तु प्लवक का सामुदायिक प्रभाव पर औद्योगिक प्रदूषण का असर । एक्वा. हाइड्रोवॉयल । 19(2) : 207-216 ।

लक्ष्मीनारायण, जे.एस.एस. 1992 : वाराणसी में गंगा नदी पर अध्ययन भाग-1 । गंगा नदी का भौतिक व रासायनिक अध्ययन । हाइड्राबायोलोजिया 40 : 207-216 ।

नीधम, जे.जी. एवं पी.आर. नीधम, 1962 : ताजा पानी के अध्ययन का गाइड हालडेन डे इक - सैनफ्रेनसिसको ।

पाहवा, डी.एम. एवं एस.एन. मेहरोत्रा, 1966 : गंगा नदी में प्लवक को जलभौतिकी कारकों के कारण वचलन का अध्ययन । प्रॉक.नेचर.एकेडमी. ऑफ साइंस भारत 53(बी) ।। 157-189 ।

प्रकाश, सी, डी.सी.रावत एवं पी.पी.ग्रोवर, 1978 : गंगा नदी का पर्यावरणीय अध्ययन तकनीकी वार्षिक रिपोर्ट, पृष्ठ सं. 32-45 ।

राधाकृष्णा व रंगारेड्डी, 1976 : कृष्णा नदी के निचले डेल्टा भाग में पानी में कालानोईड प्रजातियों के स्वभाव एवं वास स्थान का अध्ययन । मेमोयर.इण्डियन सोसायटी ऑफ जूलोजिस्ट, गुंटूर, भारत । पृष्ठ सं. 66-69 ।

एल. सी. राय, 1983 : वाराणसी में गंगा नदी में शैवाल समुदायों का अध्ययन । इण्डियन ज. ऑफ इकोलोजी 51(1) : 1-6 ।

सिकंछर, एम. और वी.डी. त्रिपाठी : वाराणसी में गंगा नदी का भौतिक व रासायनिक अध्ययन । प्राक. नेचुरल. कॉनफरेन्स.ह्युमेन हेल्थ, फरवरी । पृष्ठ सं. 42-43 ।

एस. आर. सिंह एवं वी.के श्रीवास्तव, 1988 : बक्सर एवं बलिया के मध्य गंगा जल के परिवर्तन का अध्ययन । पॉल्युशन रिसर्च (3 व 4) : 85-92 ।

सिन्हा, ए.के., 1992 : बिहार में पटना के निकट रोटीफर के जनसंख्या का अध्ययन । प्रॉक.नेचर.एकेडमी. ऑफ साइंस, भारत 62(बी) ।।। 313-322 ।

त्रिवेदी, आर.सी., 1981 : जल के गुणवत्ता को मापने में डॉवरसिटी इन्डेक्स का प्रयोग - डब्लु. एच. आर. सेन्ट्रल. बोर्ड. प्रीभ. कॉट. पॉलु., उशमानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, भारत । पृष्ठ सं. 175-188 ।

वेंकटेस्वरलु, वी., 1986 : आंध्र प्रदेश के नदियों का जल प्रदूषण के संदर्भ में पर्यावरणीय अध्ययन । प्रॉक.इण्डियन.एकेडमी. ऑफ साइंस, भारत 96 : 495-508 ।

वर्मा, एस.आर., पी. शर्मा, ए. त्यागी, एस. रानी, ए.के. गुप्ता, एवं आर.सी. दलेला, 1984 : पूर्वी कालिंदी नदी का लिम्नोलॉजिकल अध्ययन । लिम्नोलोजिया (वर्लिन) 15 (1) : 69-133 ।

पर्वतीय नदियों में मात्स्यिकी का वर्तमान स्वरूप : एक अध्ययन

कृपाल दत्त जोशी
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
24 पन्नालाल रोड, इलाहाबाद-211002

सारांश

पर्वतीय नदियाँ अपने सघन वनाच्छादित जलागम, निर्मल जल तथा इनमें अठखेली करती मछलियों के लिए विख्यात रहीं हैं, लेकिन विगत कुछ दशकों से क्षेत्र में हो रहे अत्यधिक मानवीय हस्तक्षेप के कारण यह अपना नैसर्गिक स्वरूप खोती जा रहीं हैं । प्रस्तुत शोध पत्र में कुमाऊँ (उत्तरांचल) क्षेत्र की पाँच विभिन्न आकार की नदियों व सदानीरा पर्वतीय नालों की पारिस्थितिकी तथा मात्स्यिकी में हो रहे कुछ प्रभावी परिवर्तनों पर प्रकाश डाला गया है । यह समस्त नदीय तन्त्र-*रईगाढ़, धड़किया, गण्डकी, लोहावती* व *लधिया* समुद्र तल से 400 मी. से लेकर 2050 मी. तक की ऊँचाई में स्थित हैं तथा विभिन्न जलागम क्षेत्रों से प्रवाहित होते हैं, इन नदियों व नालों में प्रमुख रूप से *असेला बर्फानी ट्राउट, सुनहरी महासीर, काली महासीर, बेरिल, भारतीय ट्राउट, गारा, विडाल* तथा *निमेकिलस* मत्स्य प्रजातियाँ पायी जाती हैं, इनमें से बर्फानी ट्राउट तथा सुनहरी महासीर क्षेत्र की प्रमुखतम प्रजातियाँ हैं । उपरोक्त जलीय तंत्रों में *बर्फानी ट्राउट* की उपलब्धता 28.06 से 98.08 प्रतिशत तक पायी गयी तथा सुनहरी महासीर शून्य से 53.33% तक उपलब्ध थी ।

वर्तमान समय में इन स्त्रोतों की मात्स्यिकी सम्पदा का निरन्तर ह्रास हो रहा है, इसके लिए प्रमुख जिम्मेदार कारकों में जलागम क्षेत्रों में वनों का विनाश, अत्यधिक निर्माण गतिविधियाँ एवं निर्वाध गति एवं विध्वंसक विधियों से मत्स्य दोहन सम्मिलित है, इस कारण क्षेत्र के *रईगढ़, धड़किया* तथा *गण्डकी* सदृश अनेकों छोटे पर्वतीय नाले ग्रीष्मकाल में लगभग मत्स्य विहीन हो जाते हैं, आलेख में इन समस्त बिन्दुओं पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है ।

प्रस्तावना

हिमालय पर्वत 5,94,400 वर्ग कि.मी. के विस्तृत भू-भाग में फैला हुआ है । इस क्षेत्र में भिन्न-भिन्न उँचाई की अनेकों पर्वत श्रृंखलायें स्थित हैं । इसके अन्तर्गत उत्तरी क्षेत्र में हिम आवरण युक्त उच्च पर्वत तथा दक्षिणी भाग में छोटी-छोटी पर्वत श्रृंखलायें आती हैं । उच्च हिमालयी क्षेत्र के हिमनदों से *गंगा* व *यमुना* सदृश विशाल नदियों का उद्‌गम होता है। इन नदियों में ग्रीष्मकाल में हिमनदों के तीव्र गति से पिघलने के कारण जल स्तर तथा प्रवाह बढ़ जाता है । यह नदियाँ उच्च हिमालयी क्षेत्र में प्रवाह के दौरान न्यूनतम तापमान तथा तीव्र वेग के कारण अल्प उत्पादकता युक्त होती हैं । लेकिन मध्य एवं उप हिमालयी क्षेत्र से उत्पन्न नदियाँ तथा सदानीरा नाले अपेक्षाकृत रूप से उत्पादक तथा जैव-विविधता से परिपूर्ण होते हैं । मध्य तथा उप हिमालयी पर्वतीय क्षेत्र की नदियों में अनेकों महत्वपूर्ण मत्स्य प्रजातियाँ पायी जाती हैं । इन क्षेत्रों में प्रचुरता से उपलब्ध *सुनहरी महासीर* आखेट मछली के रूप में विश्व भर में प्रसिद्ध है । उच्च, मध्य एवं उप हिमालयी क्षेत्र की प्रमुख *असेला बर्फानी ट्राउट* को विशिष्ट स्वाद के कारण बहुत पसन्द किया जाता है । कुछ पर्वतीय प्रजातियाँ अपने अनुकूल स्वभाव के कारण भी विशेष स्थान रखती है ।

मध्य तथा उप हिमालयी क्षेत्र में उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में अत्यधिक पर्यावरणीय परिवर्तन हुए हैं, जिनका स्पष्ट प्रभाव क्षेत्र की नदियों तथा नालों में पड़ा है । इसके अन्तर्गत नदियों के जलाशय क्षेत्रों से अत्यधिक वनों का कटाव, वनभूमि का खेती हेतु उपभोग, सड़कों, पुलों व भवनों का निर्माण तथा नदियों पर बहुउद्देश्यीय बाँध परियोजनायें सम्मिलित हैं । इस तरह के मानवीय हस्तक्षेप के कारण नदियों व पर्वतीय नालों का भौतिक स्वरूप विकृत हो चुका है । साथ ही अत्यधिक मत्स्यन के कारण जलीय तंत्रों से प्रजनक मछलियों के साथ-साथ जीरे व अंगुलिकाओं का भी संहार हो रहा है । फलतः पर्वतीय मात्स्यिकी का अस्तित्व संकट के दौर से गुजर रहा है (जोशी 2003,2004) ।

इस शोध पत्र में कुमाऊँ (उत्तरांचल) क्षेत्र की पाँच विभिन्न आकार की छोटी नदियों तथा सदानीरा नालों की पारिस्थितिकी तथा मात्स्यिकी के वर्तमान स्वरूप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । यह पाँचों नदियाँ व नाले उत्तरांचल हिमालय की एक प्रमुख नदी-काली नदी तंत्र की सहायिकाऐं हैं ।

शोध सामग्री एवं विधियाँ

इस अध्ययन के अन्तर्गत मध्य हिमालय के कुमाऊँ क्षेत्र की पाँच छोटी नदियाँ एवं सदानीरा क्षेत्र की पाँच छोटी नदियाँ एवं सदानीरा पर्वतीय नाले - *गण्डकी, लोहावती* व *लधिया* (जनपद चम्पावत) तथा *रईगाढ़* एवं *धड़किया* (जनपद पित्तौड़ागढ़) में प्रवाहित होती हैं । यह समस्त नदियाँ एवं नाले एवं काली नदी तंत्र के अन्तर्गत आते हैं । इन पाँचों नदियों व नालों में वर्षपर्यन्त जल प्रवाह बना रहता है । यद्यपि ग्रीष्म काल में जल की मात्रा न्यूनतम तथा वर्षा ऋतु में अधिकतम होती है, इन नदियों में जल आपूर्ति चट्टानों के बीच से निरन्तर बहते झरनों तथा रिसाव से होती है । इनके जलागम क्षेत्र में स्थित पर्वत शिखरों में शीतकाल में हिमपात होता है । यह नदियाँ समुद्र तल से 410 मी. से 2050 मी. तक की ऊँचाई के मध्य स्थित हैं (तालिका -1) । नदियों व नालों की लम्बाई 18 कि.मी. से 75 कि.मी. तक है । नदियों के जलागम क्षेत्र में पर्वतीय शिखर वनों से आच्छादित है जबकि घाटी क्षेत्र में आबादी तथा खेती की जाती है ।

वर्ष 1994 से 2002 के मध्य अनेकों बार उपरोक्त जलीय तन्त्रों के जलागम क्षेत्र, आकार तथा मात्स्यिकी पर अध्ययन किया गया । पर्वतीय क्षेत्र में नदियों व नालों की मत्स्य उत्पादकता बहुत कम होने के कारण संगठित मत्स्यन एवं सम्बन्धित विपणन व्यवस्था नहीं है जिसके कारण नदी विशेष की मात्स्यिकी संबंधी जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती है । इस कारण प्रत्येक नदी में मत्स्य प्रजातियों की विविधता तथा प्रतिशत उपलब्धता के लिए समय-समय पर प्रायोगिक मत्स्यन किया गया, जिसके लिए एक मीटर व्यास वाले कास्ट नेट का प्रयोग किया गया । जलागम तथा नदियों के बदलते स्वरूप संबंधी जानकारी स्थानीय लोगों से ली गयी ।

शोध परिणाम तथा विवेचना

नदियों का विवरण

उपरोक्त पाँच में से *गण्डकी* तथा *लोहावती* नदियों के जलागम क्षेत्र अपने ऊपरी भागों में घने वनों से आच्छादित है, लधिया नदी केवल प्रारम्भिक तथा अन्तिम चरण में सघन रूप से वनाच्छादित है । धड़किया नदी का जलागम वनों के कटाव तथा अन्य मानवीय हस्तक्षेप के प्रभाव में है । *रईगाढ़* एक सदाबहार पर्वतीय नाला है जो *पिथौड़ागढ़* शहर के विस्तार से समाप्त होता जा रहा है । *गण्डकी, लोहावती* व *लधिया* नदियों की तलछटीय संरचना में समानता पायी जाती है । यह चट्टानों, बड़े-बड़े पत्थरों तथा रेत युक्त है जबकि **रईगढ़** की तलछटी में गाद की अधिकता है । *रईगढ़* में नदी का वेग तथा जल की मात्रा बहुत कम रहती

है जबकि अन्य नदियाँ पर्वतीय नदियों के अनुरूप वेगवान हैं । रईगढ़ के अतिरिक्त अन्य चार नदियों के बीच-बीच में गहरे तालाब बने हुए थे लेकिन जलागम क्षेत्रों की विकृति के कारण हो रहे भूमि कटाव के कारण यह तालाब निरन्तर मिट्टी, कंकड़ के मलवे से भरते जा रहे हैं ।

नदियों में मत्स्य विविधता

इन समस्त नदियों में कुल 13 प्रजातियाँ पायी गयीं (तालिका-2), जिसमें से न्यूनतम 2 प्रजातियाँ गण्डकी में तथा अधिकतम 10 प्रजातियाँ लधिया नदी में पायी गयी। नदी की संरचना एवं जल प्रवाह के स्वरूप के अनुसार मत्स्य प्रजातियों की विविधता दृष्टिगोचर हुयी । छोटे जलागम क्षेत्र, छोटा आकार तथा संरचना में एकरूपता के कारण गण्डकी नदी में केवल 2 प्रजातियाँ पायी जाती हैं जबकि विविधता से परिपूर्ण *धड़किया* में 8 तथा *लधिया* में 10 प्रजातियाँ पायी जाती है । *असेला बर्फानी ट्राउट* इन समस्त नदियों में पायी गयी । यह तथ्य *बर्फानी ट्राउट* की इन विभिन्न पारिस्थितिकीय तंत्रों में अनुकूलता एवं व्यापकता का प्रतीक है । *सुनहरी महासीर* इनमें से 4 नदियों में पायी गयी । जबकि काला महासीर 3 नदियों में पाया गया । न्यूनतम जल प्रवाह तथा गादयुक्त तलहटी के कारण *रईगाढ़* में *चन्ना स्ट्रयेट्स* तथा *पंटियस टिक्टों* प्रजातियाँ पायी जाती हैं । *धड़किया* नदी में एक विरल प्रजाति *पंटियस डुकाई* पायी गयी । देश के उत्तर पूर्वी क्षेत्र (तीस्ता नदी) के अतिरिक्त मध्य तथा पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में केवल धड़किया से ही प्रजाति पायी गयी (जोशी तथा जोशी,1995) । उपरोक्त नदियों में जलीय तापमान 5.0^0 से. से 29.6^0 से. तक पाया गया । न्यूनतम 5.0-22.0^0 से. गण्डकी नदी का तथा अधिकतम 11.3-29.60 से. लधिया नदी में था । गण्डकी नदी का कम तापमान समुद्र तल से ऊँचाई (1500-1700 मी.) तथा नदी के वनाच्छादित रहने के कारण रहता है । लधिया तथा धड़किया नदियों की समुद्र तल से कम ऊँचाई के कारण तापमान अपेक्षाकृत रूप से अधिक पाया गया । रईगाढ़ में जल की मात्रा कम होने से तापमान में अधिक परिवर्तनशीलता देखी गयी । जलागम क्षेत्र में वनाच्छादन का स्वरूप तापमान नियन्त्रण में सहायक प्रतीत होता है ।

समस्त पर्वतीय नदियों व प्राकृतिक नालों में गहरे तालाब पाये जाते हैं । इन पाँचों नदियों में भी गहरे तालाब है लेकिन जलागम क्षेत्रों में अत्यधिक मानवीय हस्तक्षेप के कारण लधिया, धड़किया तथा रईगढ़ के तालाब भूमि कटाव के फलस्वरूप बहकर आये हुए कंकड़, पत्थर, व गाद से पट चुके हैं । गण्डकी तथा लोहावती के ऊपरी भाग में अभी कुछ तालाब बचे हैं जो समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं । जबकि नदी तन्त्र में गहरे तालाबों का बहुत महत्व है । यह तालाब तन्त्र की कड़ी तथा प्रजनक मछलियों की शरणस्थली के रूप में होते हैं तथा नदी के छिछले जल से आवागमन करते समय बीच-बीच में शरण लेने के लिए उपयोग में आते

हैं । पर्वतीय क्षेत्र में नदी तन्त्र के गहरे तालाब मछलियों को वाह्य तापमान के परिवर्तनशीलता से सुरक्षा प्रदान करते हैं ।

नदियों में प्रमुख प्रजातियों की प्रतिशत उपलब्धता

इन नदियों की मुख्य प्रजातियों की उपलब्धता का आंकलन तालिका-3 में दर्शाया गया है । इस अध्ययन से पता चलता है कि समुद्र तल से लगभग 1000 मी. से अधिक ऊँचाई वाले नदीय तन्त्र में *असेला बर्फानी ट्राउट* की प्रमुखता रहती है जबकि 1000 मी. से नीचे वाले तन्त्र में सुनहरी महासीर की अधिकता रहती है । इस प्रकार ऊँचाई में स्थित *रईगाढ़, लोहावती* तथा *गण्डकी* में *असेला ट्राउट* की प्रतिशत उपलब्धता क्रमशः 50.0,33.01 तथा 98.08 पायी गयी, अपेक्षाकृत निम्न ऊँचाई में स्थित धड़किया लधिया में यह क्रमशः 28.06 तथा 28.54% थी । इसके विपरीत *सुनहरी महासीर* की इस ऊँचाई में स्थित नदियों में 0.00 से. 1.67% तथा निम्न ऊँचाई वाले क्षेत्रों में 24.39 से 53.33% तक थी । इन पाँचों नदियों में अन्य प्रजातियों की उपलब्धता 1.92 से 47.96% तक देखी गयी । अन्य प्रजातियों में विडाल वर्ग (*स्मूडोइकेनिस सल्केट्स, ग्लिप्टोथोरेक्स पेक्टिनोप्टेरस*), बाम (*मेस्टेसिम्बेलस आर्मेट्स*), एवं *निमेकिलस* आदि प्रजातियाँ थीं ।

नदियों का वर्तमान स्वरूप

जलागम क्षेत्र में उपलब्ध संसाधनों के अत्यधिक दोहन के कारण यह पाँचों नदियाँ एवं नाले अपने प्राकृतिक स्वरूप को खोते जा रहे हैं । शहरीकरण के विस्तारस्वरूप *रईगाढ़* नाले का जल स्तर कम होता रहा है तथा नाले में शहरी मल जल व अन्य घरेलू अवशिष्टों की मात्रा बढ़ती जा रही है । इस कारण *रईगाढ़* के उपरी भाग में मत्स्य प्रजातियाँ पूर्णतया समाप्त हो गयीं तथा यह "*जैविक रेगिस्तान*" निचले भागों की ओर अग्रसर हो रहा है । भूमिकटाव के कारण समस्त नदियों एवं नालों के तलहटी का प्राकृतिक स्वरूप विकृत हो रहा है तथा नदियों के बीच में उपलब्ध गहरे तालाब लगभग समाप्त हो चुके हैं । क्षेत्र से वनों के अन्धाधुन्ध कटान के साथ-साथ अनियन्त्रित खेती बाड़ी तथा सड़क व भवन निर्माण कार्य इसके लिए उत्तरदायी हैं । प्रख्यात भूवैज्ञानिक डा. वल्दिया के अनुसार कुमाऊँ क्षेत्र से प्रतिवर्ष 1 मि.मी. भूमि कटाव व सामान्य अपरदन द्वारा कंकड़, पत्थर, मिट्टी व गाद जलीय तन्त्र में पहुँचकर इनको छिछला करते हैं, गहरे तालाबों को पाट देते हैं जिसके फलस्वरूप मछलियों के प्राकृतिक भोजन, प्रजनन व शरण स्थल विकृत हो जाते हैं । इनका दुष्प्रभाव मत्स्य प्रजातियों की विविधता व प्रतिशत उपलब्धता पर पड़ता है ।

मात्स्यिकी का वर्तमान परिदृश्य

नदीय संरचना एवं जल में मात्रात्मक एवं गुणात्मक प्रतिकूल परिवर्तनों के साथ-साथ इनकी बहुमूल्य मत्स्य प्रजातियों का विनाशकारी दोहन मात्स्यिकी संसाधनों को संकट में डाल रहा है । इन नदियों में परम्परागत मत्स्यन उपायों के अतिरिक्त विषैले पदार्थों, डाइनामाइट तथा यहाँ तक कि विद्युत स्पर्शाघात के उपयोग से मछलियों का विनाश किया जाता है । जिसके कारण ग्रीष्म काल में *गण्डकी, धड़किया* एवं *रईगाढ़* सदृश छोटी नदियाँ लगभग पूर्ण रूप से मत्स्य विहीन हो जाती है । इन विध्वंसक उपायों से वांछित प्रजातियों (*महासीर, असेला, ट्राउट, गारा, विडाल* इत्यादि) के साथ-साथ अवांछित छोटी-छोटी प्रजातियाँ (*निमेकिलस, पंटियस)* भी समाप्त हो जाती हैं ।

इन पाँच नदियों में किये गये अध्ययन से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार की पर्वतीय नदियाँ एवं छोटे-छोटे नाले जलागम क्षेत्रों में हो रहे अत्यधिक मानवीय हस्तक्षेप के कारण अपना प्राकृतिक स्वरूप खोते जा रहे हैं तथा इनमें रहने वाली मत्स्य प्रजातियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । मत्स्यन की विध्वंसक विधियों के कारण मत्स्य प्रजातियों के संरक्षण के लिए केवल प्रजाति विशेष को प्राथमिकता के आधार पर संरक्षण देने के प्रयास फलीभूत नहीं हो सकते । इनके संरक्षण हेतु एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत समस्त नदियाँ, जलागम क्षेत्र तथा प्रभावित होने वाला मानव समाज सम्मिलित है ।

सन्दर्भ

वाल्दिया,के.डी.2003 : वांटन डिस्ट्रक्शन औफ फिसरी रिसार्सेज इन अपलैण्ड स्ट्रीमस-ए.केस स्टडीज प्रोटेक्टेड हैविटैट एन्ड वायोडाइवर्सिटी (सम्पादक एस.अय्यपन,आदि), नेचर कर्सेवेटर प्रकाशन 8: 249-254 ।

जोशी,के.डी. एव पी.सी.जोशी,1995 : पंटियस डुकाई (डे) (पीसेज : सिप्रिनीडी) : ए न्यू रिकार्ड क्रोम यू.पी.हिल्स. जर्नल बौम्वे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी 93-103।

वाल्दिया,के.डी.2003 : वांटन डिस्ट्रक्शन औफ फिसरी रिसार्सेज इन अपलैण्ड स्ट्रीमस-ए.केस स्टडीज प्रोटेक्टेड हैविटैट एन्ड वायोडाइवर्सिटी (सम्पादक एस.अय्यपन,आदि) ,नेचर कर्सेवेटर प्रकाशन 8: 249-254 ।

जोशी,के.डी.2003 : वांटन डिस्ट्रक्शन औफ फिसरी रिसोर्सेज इन अपलैण्ड स्ट्रीमस ए केस स्टडी प्रोटेक्टेड हैविटैट एण्ड वायोडाइवर्सिटी (सम्पादक एस.अय्यपन,आदि),नेचर कर्सेवेटर प्रकाशन 8 : 249-254 ।

जोशी, के.डी.,2004 :आर्टिफिश्यल ब्रीडींग एण्ड रियरिंग औफ साइजोथोरेक्स रिचार्डसोनी (ग्रे) । इण्डियन जर्नल आफ फिसरीज : 51 (प्रेस) ।

तालिका 1 : नदियों का संक्षिप्त विवरण

नदियाँ	जनपद	लम्बाई (कि.मी.)	समुद्र तल से ऊँचाई (मी.)	जलीय तापमान (0 से.)	कुल मत्स्य प्रजातियाँ
गण्डकी	चम्पावत	15	1500-1700	5.0-22.0	2
लोहावती	चम्पावत	36	900-1700	5.5-24.5	5
लधिया	चम्पावत	75	410-2050	11.3-29.6	10
रईगढ़	पिथौरागढ़	18	1200-1400	6.0-28.5	4
धड़किया	पिथौरागढ़	26	600-1250	9.5-26.0	8

तालिका 2 : नदियों में प्रमुख मत्स्य प्रजातियों की प्रतिशत उपलब्धता

नदियाँ	प्रतिशत उपलब्धता				
	साइजोथोरेक्स रिचार्डसोनी	टौर प्यूटीटोरा	गारा गोटाइला	वेरिलियस वेण्डेलिसिस	अन्य
गण्डकी	98.08	-	-	-	1.92
लोहावती	83.01	1.67	-	-	12.12
लधिया	28.54	24.29	22.44	20.73	3.90
रईगढ़	50.00	1.02	-	-	47.96
धड़किया	28.06	53.33	-	-	15.83

तालिका 3 : नदियों में मत्स्य विविधता

नदियाँ	साइजो-थोरेक्स रिचार्ड-सोनी	टौर प्यूटीटोरा	टौरा चेलिनौ-इडिस	गारागो-टाइला	वेरिलि-यस वेण्डेलि-सिस	ग्लिप्टो-थोरेक्स पेक्टिनो-प्टेरस	स्युडोइ-केजिस सल्केटस	मेस्टेसि-म्बेलस आर्मेटस	रायमास बोला	निमेकि-लस वोटिया	पंटियस टिक्टो	चन्ना स्ट्रियटस	पंटियस डुकाई
गण्डकी	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✗	✗	✗	✗
लोहावती	✓	✓	✓	✗	✗	✗	✗	✓	✗	✓	✗	✗	✗
लधिया	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✗	✗	✗
रईगाढ़	✓	✓	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✗	✓	✓	✗
धड़किया	✓	✓	✓	✗	✗	✓	✓	✓	✗	✓	✗	✗	✓

सुन्दरवन मंगल में मात्स्यिकी : क्षमतायें, समस्यायें, संभावनायें एवं चुनौतियाँ

गणेश चन्द्र एवं आर. एल. सागर
कृषि विज्ञान केन्द्र
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
काकद्वीप, पश्चिम बंगाल - 743344

सारांश

सुन्दरवन विश्व का सबसे बड़ा डेल्टा है जो अपने मंगल वनों एवं समुद्री तथा ज्वारनदमुखीय मात्स्यिकी के लिये विश्व प्रसिद्ध है । यहाँ की जनसंख्या का एक बड़ा भाग मत्स्य व्यवसाय के ऊपर अपना जीविकोपार्जन करता है तथा मात्स्यिकी यहाँ की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी मानी जाती है । सुन्दरवन में मात्स्यिकी की क्षमता का इस बात से पता चलता है कि यहाँ मछली की 400 प्रजातियों के अलावा 20 झींगा एवं 44 केकड़ों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं । यहाँ दोनों प्रकार की प्रग्रहण (समुद्री व अंतर्स्थलीय) एवं जल जीव पालन (जल एवं खारा जल) मात्स्यिकी प्रयोग में लाई जाती हैं । कृषि के पश्चात् मात्स्यकी यहाँ की मुख्य आय का साधन है जिससे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कई व्यवसाय जुड़े हुये हैं । यहाँ यंत्र चालित तथा बिना यंत्र के संचयन नौकाओं का मात्स्यिकी के लिये प्रयोग होता है । एक लाख से अधिक लोग मत्स्य / झींगा बीज से जुड़े हुये हैं । मुख्य समस्याओं में बागदा झींगा मछली की संख्या में अत्यधिक कमी, अनियंत्रित मत्स्य बीज संचयन, भंडारण एवं अन्य बुनियादी सेवाओं का अभाव, प्रदूषण, गाद, हिल्सा मछली का अत्यधिक दोहन आदि है । सुन्दरवन में मात्स्यिकी की अपार संभावनायें हैं जिसमें से मुख्यतः नई बुनियादी सेवायें जैसे 6 नये मत्स्य हार्बर जो शीत गृहों, पैकेजिंग केन्द्रों तथा अत्याधुनिक विपणन केन्द्रों सें सुसज्जित हों, का विकास किया जा रहा है । नई तकनीकियाँ विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग से सूचनाओं के आदान-प्रदान में आसानी होगी । एक नये अंतर्राष्ट्रीय मत्स्य संवर्धन केन्द्र का विकास कलकत्ता में हो रहा है जिससे निर्यात की नई संभावनाओं का सृजन होगा । धान-सह-मत्स्य उत्पादन प्रणाली का प्रयोग यहाँ वृहत् पैमाने पर किया जा सकता है । सुन्दरवन मंगल में मात्स्यिकी की अनेक चुनौतियाँ भी हैं जिसमें मुख्य मंगल वन क्षेत्रों का क्षारण, बीज संग्रहण करने वाले मछुआरों का कई तरह की बीमारियों से सामना , बंगलादेश सीमा से निकट होने के कारण गिरफ्तार होने एवं नावों के जब्त होने की संभावना, चक्रवातीय तूफान का खतरा एवं

रोग आक्रमण आदि हैं । लेकिन इन सब समस्याओं एवं चुनौतियों के बावजूद यहाँ मात्स्यिकी विकास एवं उत्पादकता बढ़ने की असीम संभावना है ।

भूमिका

सुन्दरवन पृथ्वी पर अवस्थित सबसे बड़ा डेल्टा है जो गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदीय तंत्र के ज्वारनदमुखीय काल में निर्मित हुआ । भारतीय सुन्दरवन (अक्षांश $21^0$33' - $22^0$40' उत्तर एवं देशान्तर $88^0$22' - 89^0 पूर्व) भारत के उत्तर-पूर्वी तटीय क्षेत्रों में फैला हुआ है । यह पश्चिम दिशा में हुगली नदी, पूर्व में रायमंगल, दक्षिण में बंगाल की खाड़ी एवं उत्तर में डैम्पियर हौजेज रेखा से घिरा हुआ है । विभिन्न आकार के 56 द्वीप सुन्दरवन में हैं जो कि ज्वारीय मार्गों, क्रीक्स तथा इनलेट्स से घिरे हुये हैं । यह तटीय क्षेत्र समुद्र तल से 7-8 मीटर ऊँचाई पर बने हुये हैं तथा यहाँ जमीन की सतह मध्यम नीची है । यहाँ दैनिक रूप से तापमान, लवणीयता, गहराई, दिशा एवं जल गमन की तीव्रता में अत्यधिक अंतर पाया जाता है । ओग (1939) ने सर्वप्रथम यहाँ की ज्वार प्रणाली को तीन ऋतुओं में बाँटा था। दक्षिण-पश्चिम मानसून के समय मीठे जल की अधिकता के कारण ज्वार की तीव्रता निम्न होती है । नवम्बर से फरवरी के मध्य ज्वार एवं भाटा एक समान रहता है । अप्रैल से मई के बीच ज्वार की गति तीव्र होती है एवं इस समय सबसे अधिक लवणीयता पाई जाती है ।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन के केन्द्र, अहमदाबाद भारत में अवस्थित 3900 जल क्षेत्रों (वैटलैण्ड) का मानचित्रण किया है एवं इसके अनुसार भारत में 4871 वर्ग कि.मी. के भू-भाग पर मंगल क्षेत्र हैं (गर्ग व अन्य 1999) । सुन्दरवन मंगल 2123 वर्ग कि.मी. में फैला देश का सबसे बड़ा मंगल क्षेत्र है । गंगा एवं ब्रह्मपुत्र नदियों के निचले डेल्टा क्षेत्रों की 80% से अधिक मछलियाँ यहाँ से पकड़ी जाती हैं (गर्ग व अन्य 1999)।

सुन्दरवन मात्स्यिकी

मंगल क्षेत्र अत्यधिक उत्पादक होता है तथा यह मछलियों, केकड़ों एवं झींगा के मुख्य नर्सरी क्षेत्र के रूप में विख्यात है । बहुत सी मत्स्य प्रजातियाँ (लगभग 400) मंगल खालों को नर्सरी क्षेत्रों के रूप में व्यवहार करती है (गुडंरमैन एवं पौपर, 1984 लोमेक्कॉनेल, 1987) । इन मत्स्य प्रजातियों के अलावा 20 झींगा प्रजातियाँ एवं केकड़ों की 40 प्रजातियाँ पायी जाती हैं । सुन्दरवन मंगल इन प्रजातियों की प्राकृतिक आवश्यकता जैसे - तापमान, लवणीयता एवं अन्य भौतिक एवं रासायनिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । सामान्यतः ज्वारनदमुखीय क्षेत्रों में ऊपरी क्षेत्रों से निकास के द्वारा पोषक तत्वों तथा कार्बनिक पदार्थ अत्यधिक मात्रा में ग्रहण किये जाते हैं जो विभिन्न जीवों के ऊर्जा के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं । इसके अलावा

आर्थिक रूप से उपयोगी बहुत सी मत्स्य प्रजातियाँ यहाँ पर ही परिपक्व होती हैं तथा उत्तरी बंगाल की खाड़ी तटीय क्षेत्रों में होने वाली मात्स्यिकी का मुख्य भाग होती हैं । विभिन्न प्रकार के मीठे जल की मत्स्य प्रजातियाँ भी प्रजनन के लिए मंगल क्षेत्र में आती हैं । इसी प्रकार से बहुत सी समुद्री एवं अंतर्स्थलीय मत्स्य एवं झींगा प्रजातियों को भी अपना जीवन चक्र पूरा करने के लिए मंगल क्षेत्र में वास करना पड़ता है । यहाँ की मात्स्यिकी की क्षमतायें, समस्यायें, संभावनायें एवं चुनौतियाँ निम्नलिखित है :-

मछलियाँ

लेटस कैलकेरिफर, टेनुआलोसा इलिसा, लीजा पारसिया, लीजा टेड, हारपोडोन हीहेरीइस, प्लुटोसस केनियस, पॉम्पस अरजेन्टस, राइनोवैटस, पंगैसियस पंगैसियस, पॉलीडैक्टीलेन्स, चेनॉस चेनॉस, येलुओथ्रेनेमा टेट्राडैक्टीलम, पॉलीनेमस इंडीकम, पॉलीनेमस पैराडेसीयस एवं पामा पामा, लेबियो रोहिता, कतला कतला और सीरहिनस मृगला ।

झींगा मछलियाँ

पीनियस मोनोडोन, पैनिसियस पेनीकुलेटस, मेटापीनियस मोनोसोस एवं मेक्रोब्रेकियम रोजेनबर्गी ।

केकड़ा

स्कैला सिरेटा एवं नेप्टूनस पेलाजिएंस ।

सुन्दरवन मंगल क्षेत्र में दोनों प्रकार के प्रग्रहण (समुद्री एवं अंतर्स्थलीय) तथा जीवपालन (खारा जल एवं मीठा जल) मात्स्यिकी होती है ।

कृषि के बाद मात्स्यिकी ही यहाँ के निवासियों का मुख्य व्यवसाय एवं आय का स्रोत है । जीव पालन के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से हैचरी, बीज संग्रहणकर्ता, खाद्य व्यापारी तथा संबंधित व्यापारी जुड़े हुये हैं । प्रग्रहण मात्स्यिकी नाव बनाने वाली तथा जाल बुनकरों को अप्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्रदान करती है । दोनों प्रकार की मात्स्यिकी का प्रत्यक्ष संबंध प्रग्रहण पश्चात् प्रोसेसिंग तथा विपणन केन्द्रों से होता है तथा इससे बहुत से लोगों की जीविका का निर्वाह होता है (लेविस व अन्य) । मात्स्यिकी के क्षेत्र में उत्पादन अधिक होने पर क्रय शक्ति में भी वृद्धि होती है तथा स्थानीय बाजारों में तेजी आती है ।

सुन्दरवन में 5000 से भी अधिक नौकाओं का प्रयोग होता है । यंत्र चालित नौकाओं में ट्रालर्स, गिलनेट्स तथा पर्स सीत्स आते हैं जबकि बिना यंत्र के नौकाओं में काठ की बनी नौका, डींगी तथा कैटामेरन्स प्रमुख हैं । जालों में ट्राल जाल, पर्स सीत्स, गिल जाल, नौका जाल, मीन जाल, वहुंडी जाल, शोर सीत्स, स्कूप जाल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है ।

सुन्दरवन में मछलियों के 14 आगमन केंद्र हैं । वर्ष भर रायदीघी, काकद्वीप स्टीमर घाट, काकद्वीप अक्षयनगर, काकद्वीप 8 नं. घाट, सुल्तानपुर मत्स्य हार्बर, डायमंड हार्बर, नामखाना, फ्रेजरगंज मत्स्य हार्बर, गंगासागर, बेगुआखाली, मायागोआलीनी घाट हैं । मौसमीय केन्द्र के रूप में काली स्थान, फ्रेजरगंज, बालीयार एवं पश्चिम गंगासागर कार्य करते हैं ।

एक लाख से अधिक मत्स्य जीवी मछलियों एवं झींगा के बीज संचयन से जुड़े हुये हैं । अप्रैल-मई तथा अक्टूबर - नवम्बर बीज संग्रहण के लिये अच्छा समय होता है । इन मछुआरों के लिये बीज संचयन चरमकाल में 150-200 रू. प्रतिदिन आय होती है जबकि दूसरे समय में यह केवल 60-70 रू. ही संचयन है । तीन से चार व्यक्तियों के एक समूह को बीज संग्रहण के लिये निम्न वस्तुओं की आवश्यकता होती है - (1) नाव, (2) दो शूटिंग जाल, (3) चार अल्युमिनियम हैंड जाल, (4) दो बाँस, (5) कच्ची तीस कि.ग्रा., (6) चार थाली, (7) तीन छोटे हैंडनेट, (8) एक हाजार्क लाइट, (9) एक लंगर तथा (10) टार्चलाइट । (मुखर्जी 2003)

यहाँ पर वर्तमान में दो मुख्य मत्स्य विपणन केन्द्र, डायमण्ड हार्बर तथा कैनिंग कार्य कर रहे हैं ।

खारा जल एवं मीठा जल जीव पालन को तीन भागों में बाँटा जा सकता हैः

1. विस्तृत - बहुत ही कम मात्रा में बाह्य वस्तुओं का प्रयोग होता है ।
2. अर्द्ध गहन - अधिक मात्रा में बाह्य वस्तुओं (इनपुट्स) का प्रयोग होता है ।
3. गहन - यहाँ अधिक मात्रा में बाह्य वस्तुओं का प्रयोग कर अधिक उपज की जाती है ।

गहन पालन पूर्ण रूप से उत्पादकता से संबंधित है । प्रति इकाई उत्पादन गहन क्षेत्रों में अधिक होता है इसके बाद अर्द्ध गहन एवं विस्तृत क्षेत्रों का स्थान आता है । (हैच एवं ताई 1997 , अल्टसन एवं पार्डी 1995) ।

समस्यायें

प्राकृतिक रूप से सुन्दरवन में पाई जाने वाली बागदा झींगा मछली (*पीनियस मोनोडोन*) दारूण स्थिति में पहुँच चुकी है । इसका मुख्य कारण इसके जीवन चक्र की विभिन्न अवस्थाओं में इसका अत्याधिक दोहन है । ज्वारनदमुखी क्षेत्रों में लार्वा पश्चात् अवस्था में मीन जाल से, अपरिपक्व अवस्था में वहुंडी जाल से तथा समुद्री क्षेत्रों में युवा एवं प्रौढ़ को बड़े बैग जाल से एवं वयस्क एवं अति व्यस्क को ट्रेमल जाल से दोहन किया जाता है । समुद्र में ट्राल जाल से इसके जीरों को भी पकड़ लिया जाता है ।

सुन्दरवन में भूमिहीन मछुआरों की आय का मुख्य स्रोत झींगा मछलियों का बीज संचयन है । आर्थिक रूप से प्रमुख झींगा के बीजों के संग्रहण के समय ग्रामीण लोग बागदा झींगा मछली (पीनियस मोनोडोन) को छाँटकर बाकी बचे 91-95% मत्स्य एवं झींगा प्रजातियों को नष्ट कर देते हैं जिससे बहुत सी ज्वारनदमुखीय प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं ।

मछलियों में सड़न एवं क्षरण इसके पकड़ने के समय से ही आरंभ हो जाता है । सही भंडारण, संवर्धन एवं त्वरित परिवहन सेवाओं का न होना बहुत सी परेशानियों का कारण है एवं मानसून के समय 20-30% उत्पाद नष्ट हो जाते हैं ।

हुगली मतला ज्वारनदमुखीय क्षेत्र के जल में कोलकाता, हावड़ा एवं हल्दिया के औद्योगिक क्षेत्रों से निष्काषित रसायनों के कारण प्रदूषण का स्तर तेजी से बढ़ता जा रहा है जिसके कारण मत्स्य एवं झींगा प्रजातियों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है । इसके अलावा मलजल के प्रवाहित होने के कारण खारा जल मछलियों के बीजों का क्षरण हो रहा है । धान के खेतों में कीटनाशकों के उपयोग से भी प्रदूषण की मात्रा बढ़ रही है सेट एवं भास्करण (1950) : एफ.ए.ओ./यू.एन.डी.पी. (1967) : घोष एवं अन्य (1973) ।

फरक्का बैरेज के निर्माण के पश्चात् हुगली ज्वारनदमुखीय क्षेत्रों में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है । ग्रीष्म काल में, पहले काकद्वीप में जल की क्षारीयता 25% थी जो अब घट कर केवल 15% तक रह गया है । इस कारण इस क्षेत्र की प्रजातियों की संरचना में भी परिवर्तन हो सकता है (सिलास 1987) ।

2002 एवं 2003 वर्ष में कुछ मत्स्य प्रजातियाँ विशेषकर हिल्सा मछली का अत्यधिक दोहन सुन्दरवन क्षेत्र में किया गया था । इस प्रकार के अत्यधिक दोहन से विशेषकर जब वे

प्रजनन के लिये मीठे जल की ओर आती हैं, इस प्रजाति को विलुप्तता के कगार पर ले जायेगा ।

कुछ वर्षों से यह देखा जा रहा है कि फीडर नहरें तथा भेरिज सिल्ट के आगमन के कारण मत्स्य एवं झींगा प्रजातियों के प्रजनन स्थल एवं वास स्थान में कमी आती जा रही है । इस कारण फ्राई एवं लार्वा का आवागमन रूक जाता है ।

मध्यस्तों के विशेष प्रभाव के कारण मछलियों की उचित कीमत मछुआरों को प्राप्त नही होती है जिससे उन्हें आर्थिक नुकसान होता है ।

सुन्दरवन मंगल क्षेत्रों में मत्स्य सहकारी समितियों का न होना भी मत्स्यजीवियों के जीविकोपार्जन में व्यवधान उत्पन्न करता है ।

अच्छी गुणवत्ता वाले खाद्य पदार्थों का स्थानीय बाजारों में न पाया जाना भी मत्स्यजीवियों की उत्पादकता को घटा देता है ।

सुन्दरवन मंगल क्षेत्रों को कृषि प्रक्षेत्रों में बदला जा रहा है । इस तरह के अनैतिक कार्यों से पारिस्थितिक असंतुलन के साथ - साथ मछलियों का आवागमन भी प्रवाहित होता है तथा इसका प्रतिकूल प्रभाव मात्स्यिकी व्यवसाय पर भी पड़ रहा है । नेयलॉर एवं अन्य (2000) के अनुसार प्रति हेक्टेयर मंगल क्षेत्रों के परिवर्तन से 100 कि.ग्रा. से अधिक मछलियाँ नष्ट हो जाती हैं ।

प्राकृतिक आपदा जैसे चक्रवातीय तूफान एवं निम्न दाब का क्षेत्र बनना, इस क्षेत्र की बहुवार्षिकी समस्यायें हैं तथा इसके कारण बहुत से मछुआरों की जान जा चुकी है । इस क्षेत्र में हार्बर का न होना तथा जम्बूद्वीप में मछुआरों के शरण स्थल पर प्रतिबंध लग जाने के कारण मछुआरों की जान को अत्यधिक खतरा उत्पन्न हो गया है क्योंकि महादेशीय तटों एवं द्वीपों पर कोई प्राकृतिक शरण स्थल नही है । वर्ष 2002 में बहुत से मछुआरों की जान चक्रवातीय तूफान ने ले ली थी ।

संभावनायें

सुंदरवन मंगल में समुद्री एवं अंतर्स्थलीय दोनों प्रकार के मत्स्य संसाधनों की उपलब्धता के कारण यहाँ मात्स्यिकी विकास की संभावनायें असीम हैं ।

पश्चिम बंगाल भारत का सबसे अधिक मछली उत्पादन करने वाला राज्य है तथा वर्ष 2002-03 में यहाँ से 11.20 मेट्रिक टन मछली का निर्यात किया गया है जिससे 533.134 करोड़ रूपये की आमदनी हुई है । इसका एक बड़ा भाग सुन्दरवन मंगल में मत्स्य उत्पादन से प्राप्त हुआ है ।

कोलकाता महानगरीय क्षेत्र से सुंदरवन मंगल क्षेत्र की दूरी केवल 100 कि.मी. है तथा यह भौगोलिक लाभ यहाँ के मछुआरों को प्राप्त है । काकद्वीप से कोलकाता के बीच रेल परिवहन की शुरूआत हो जाने के कारण मछुआरे बिना किसी बिचौलिये के अपने उत्पाद को बेच सकते हैं ।

नई बुनियादी सुविधाओं का विकास जैसे 6 नए मत्स्य हार्बर, जो शीत गृह, पैकेजिंग केन्द्र तथा अत्याधुनिक मत्स्य विपणन केंद्रों से सुसज्जित होंगे फ्रेजरगंज, शंकरपुर, डायमंड हार्बर, काकद्वीप, सागर एवं पाथर प्रतिमा में विकास किया जा रहा है । फ्रेजरगंज, शंकरपुर और डायमंड हार्बर में निर्माण कार्य पूरा किया जा चुका है तथा अन्य सभी का निर्माण कार्य वर्ष 2005-06 तक पूरा हो जाएगा । इन सभी बुनियादी सुविधाओं के विकास से 75,000 मछुआरों को रोजगार का लाभ होगा ।

सफलतापूर्वक मात्स्यिकी में हो रहे तकनीकी परिवर्तनों को मछुआरों तक पहुँचाने के लिये प्रसार एवं उन्नत सूचना तंत्र की आवश्यकता है (जैगर एवं पेंडर 2001) । मात्स्यिकी प्रसार को समुद्री, अंतर्स्थलीय एवं खारा जल क्षेत्र में लगे मछुआरों, उद्योगपति, अंतिम प्रयोगकर्ता मत्स्य विभागों, विश्वविद्यालयों, अनुसंधान संस्थानों एवं गैर सरकारी संस्थाओं को सम्मिलित कर मजबूती प्रदान की जा सकती है ।

प्रौद्योगिकी सूचना की प्राप्ति एवं आदान-प्रदान में आसानी हो सकती है जैसे भौगोलिक सूचना तंत्र के प्रयोग के द्वारा बहुत ही अच्छे तरीके से सूचनाओं का आदान-प्रदान, स्थानीय, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं भूमंडल स्तर पर किया जा सकता है (कैडी व गारसिया 1986) । सूचना क्रांति के क्षेत्र में हो रहे विकास से सुन्दरवन क्षेत्र भी अछूता नही रहा है । मोबाइल एवं वायरलेस सेटों की मदद से मछुआरे दूर समुद्र से ही अपने मालिक को मछलियों की प्राप्ति की सूचना दे देते हैं जिससे प्रग्रहण पश्चात् होने वाली क्षति को कम करके विपणन केन्द्रों पर ले जाने के लिये त्वरित व्यवस्था करने में सुविधा होती है । इसके अलावा दूरभाष की सुविधा दूर-दराज के गाँवों में पहुँच जाने के कारण प्रतिदिन के भाव की जानकारी मछुआरों को आसानी से मिल जाती है ।

एक नया अंतर्राष्ट्रीय मत्स्य संवर्धन क्षेत्र का विकास कोलकाता महानगरीय क्षेत्र में स्थित चकबेरिया में किया जा रहा है । 14 एकड़ क्षेत्र में फैला यह केंद्र 20 करोड़ रू. की लागत में वर्ष 2004 में बनकर तैयार हो जाएगा तथा इसमें 10 निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ कार्य करेंगी । यह दक्षिण एशिया में अपने तरह का पहला केंद्र होगा ।

अभी तक प्रयोग में नही लाई गई जल क्षेत्रों का उपयोग जीवपालन के लिये किया जा सकता है जैसे धान के प्रक्षेत्र, सिंचाई नहरों, मौसमीय तालाबों आदि । इस तरह के स्थानों पर बहुत ही कम लागत पर अधिक आय की प्राप्ति की जा सकती है तथा मछलियों की उपलब्धता को भी बढ़ाया जा सकता है । धान-सह-मत्स्य प्रणाली द्वारा 35000-60000 रू. तक की अतिरिक्त आय की प्राप्ति की जा सकती है (फर्नान्डो एवं हालवल्ड 2000 ; ली 1999) ।

चुनौतियाँ

सुन्दरवन मंगल क्षेत्रों के क्षरण होने से यहाँ की मात्स्यिकी पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है । एक लोकोक्ति के अनुसार, मंगल वन नही होने पर झींगा मछली का भी वास नही होता अर्थात् बिना मंगल वनों के संरक्षण से *पीनियस मोनोडोन* तथा *पीनियस पेनिकुलेटस* की संख्या पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है । सिलास 1987 ने झींगा मछलियों को तीन वर्गों में बाँटा है ।

1. जो मंगल पर अपरिपक्व अवस्था में निर्भर करती हैं तथा व्यस्क होने पर स्थानीय तटीय जल में ही विचरण करती हैं । जैसे - *मेटापीनियस एफिनिस, मेटापीनियस डोबसोनी* एवं *मेटापीनियस मोनोसोरॅस* ।

2. जो मंगल का अपने जीवन चक्र विकास के एक भाग को पूरा करने के लिये उपयोग करती हैं एवं तटीय क्षेत्र वाले जल में लम्बी दूरी तक विचरण करती हैं । जैसे - *पीनियस मोनोडोन* एवं *पीनियस पेनिकुलेटस* ।

3. कुछ प्रजातियाँ तटीय जल में अपना पूरा जीवन बिता देती हैं लेकिन मंगल में प्रवेश नही करती हैं । जैसे - *पैरापीनिऑपसिस स्टाइलीफेरा* ।

झींगा एवं अन्य मछलियों का बीज संचयन करने वाले मछुआरों एवं महिलाओं को अनेक प्रकार की बीमारियों का सामना करना पड़ता है क्योंकि उन्हें बीज संग्रहण करने के लिये घंटों पानी में खड़ा रहना पड़ता है ।

बहुत सी स्थितियों में यह देखा गया है कि जनसंख्या का सबसे गरीब हिस्सा भूमिहीन मछुआरों का होता है । (केन्ट 1998 ; अहमद एवं लोरिका 2002) ।

भारत-बांग्लादेश सीमा के निकट होने के कारण बांग्लादेश जल सीमा में प्रवेश करते ही बांग्लादेश राइफल्स एवं नौसेना के द्वारा यंत्र चालित नौकाओं को जब्त कर लिया जाता है तथा नौका पर सवार सभी मछुआरों को गिरफ्तार कर लिया जाता है ।

चक्रवातीय तूफान एवं निम्न दाब का क्षेत्र बनना एक आकस्मिक घटना है जिसकी लंबे समय पहले से भविष्यवाणी नही की जा सकती है तथा इसका प्रतिकूल प्रभाव सुन्दरवन के मछुआरों पर भी पड़ता है ।

हुगली मतला के ज्वारनदमुख क्षेत्र के एक बड़े भू-भाग को पर्यटन क्षेत्र के रूप में विकास के लिये एक निजी कम्पनी को पट्टे पर दिया गया है । सुन्दरवन मंगल में मात्स्यिकी पर इसका असर पड़ने की संभावना है ।

रोग आक्रमण जीव पालन की एक प्रमुख समस्या है जिसके कारण तालाबों की उत्पादकता अत्याधिक प्रभावित होती है । अधिक मात्रा में संचयन करना, निम्न गुणों वाले जल एवं बीजों के प्रयोग से तालाब में रोगों का आक्रमण हो रहा है । यह रोग जल के आदान-प्रदान से दूसरे तालाबों में भी चला जाता है । इसके अलावा रोगों का फैलना भी तेजी से होता है । (फजस्मिथ एवं ब्रीड्स 1998 ; लॉटज 1997) ।

दिनोंदिन बढ़ती हुई जनसंख्या का प्रभाव मीठे जल पर देखा जाने लगा है तथा यह अनिश्चित संपदा होती जा रही है (रोजग्रान्ट, काई एवं क्लाइन 2002) ।

उपरोक्त समस्याओं एवं चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये सामाजिक एवं वैज्ञानिक कदमों को उठाने की आवश्यकता है । भारत सरकार एवं पश्चिम बंगाल सरकार ने कुछ वैधानिक कदम उठायें हैं जो निम्नलिखित हैं :

मंगल की उपयोगिता को ध्यान में रखकर भारत सरकार ने इसके संरक्षण एवं प्रबंधन के लिये इस क्षेत्र को पर्यावरण रूप से संवेदनशील क्षेत्र (पर्यावरण रक्षा कानून, 1986 के तहत) घोषित कर दिया है । इसके अलावा 1991 में तट नियंत्रण क्षेत्र अधिसूचना के अंतर्गत मंगल क्षेत्रों में विकास कार्य एवं गंदे पदार्थ के निष्कासन पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया है ।

पश्चिम बंगाल सरकार ने समुद्री मत्स्य नियंत्रण अधिनियम के अंतर्गत झींगा / मत्स्य बीज संचयन में वहुंडी जाल के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है । इसी कानून के अंतर्गत मार्च से जून महीने तक मछली मारने पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया है ।

मात्स्यिकी एवं जीव पालन के सतत विकास के लिये प्रौद्योगिकी विकास एवं स्थानांतरण एक आवश्यकता है विशेषकर इसलिये कि विस्तृत पद्धति का तेजी से गहन पद्धति में परिवर्तन होता जा रहा है (एन.ए.सी./एफ.ए.ओ. 2001) ।

उपसंहार

सुन्दरवन मंगल में मात्स्यिकी की अनेक समस्यायें एवं चुनौतियाँ होने के बावजूद संभावनायें असीम हैं । सही भंडारण, संवर्धन एवं त्वरित परिवहन जैसी बुनियादी सुविधाओं का विकास हो जाने के बाद बिना किसी अतिरिक्त प्रयास के मात्स्यिकी पर आधारित लोगों की आमदनी को बढ़ाया जा सकता है । ये सुविधायें इस क्षेत्र के निर्यात तथा नये आय की संभावनाओं में वृद्धि के साथ-साथ त्वरित विकास में सहायता प्रदान करेगा । 10वीं पंचवर्षीय योजना समुद्री क्षेत्र में 2.5% एवं अंतर्स्थलीय क्षेत्र में 8% वृद्धि दर का लक्ष्य तय किया गया है । मत्स्य विभाग, गैर सरकारी संगठन, मछुआरों एवं अनुसंधान संस्थानों के प्रत्यक्ष सहयोग के द्वारा ही इस लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है ।

संदर्भ

अन्य (1999) । द स्टेट ऑफ फॉरेस्ट रिपोर्ट, फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ एन्वायरनमेन्ट एण्ड फॉरेस्ट ।

आल्टासन, जे.एम., जी डब्लु नार्टन एवं पी.जी.पार्डी (1995) । साइन्स अंडर स्कारसिटी : प्रिन्सीपल्स एण्ड प्रैक्टिस फॉर एग्रीकल्चरल रिसर्च इवोलुसन एण्ड प्राइओरिटी सेटिंग । कार्नेल यूनिवर्सिटी प्रेस, इथिका, न्युयार्क, यू.ए.एस. ।

अहमद, एम. एवं एम.एच.लोरिका (2002) । इम्प्रुविंग डेवेलपिंग कंट्री फूड सिक्युरिटी थ्रू एक्वाकल्चर डेवेलपमेंट - लेसंस फ्राम एशिया । फूड पॉलिसी 22 (5) : 393-404 ।

केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान (2002) वार्षिक प्रतिवेदन 2001-2002, बैरकपुर ।

एन.ए.सी.ए./एफ.ए.ओ. (2001) एक्वाकल्चर इन द थर्ड मिलेनियम : टेक्नीकल प्रोसिडिंग ऑफ द कॉनफ्रेन्स ऑन एक्वाकल्चर इन द थर्ड मिलेनियम, बैंकाक, थाइलैंड । 20-25 फरवरी 2000, संपादित सुभासिंगे आर. पी., पी.ब्रुनो, एम. जे.फिलिप्स, सी. हॉज तथा एस.ई.मैक्गलैडरी ।

फर्नान्डो, सी.एच.और एम.हालवार्ट (2000) । पॉसिबिलिटीज फॉर द इन्टीग्रेसन ऑफ फिश फार्मिंग इन्टु इरीगेशन सिस्टम्स फिशरीज मैनेजमेन्ट एण्ड इकोलॉजी । 7 (1-2) : 45-54 ।

फंज स्मिथ, जे. एस. और एम.आर.पी.ब्रीड्स (1998) । न्युट्रीन्ट बजट इन इन्टेन्सिव श्रिम्प पॉन्ड्स इम्पलिकेशन्स फॉर सस्टेनेबिलिटि । एक्वाकल्चर 164 (1-4) : 117-133 ।

गर्ग, जे.के., टी.एस.सिंह और टी.वी.आर.मूर्ति (1998) । कोस्टल वेटलैण्ड्स ऑफ इंडिया, नेशनवाइड वेटलैण्ड्स मैशिंग प्रोजेक्ट स्पेस एप्लीकेशन सेंटर, अहमदाबाद ।

घोष, बी.बी., पी.रॉय और वी. गोपालाकृष्णन (1962) । सर्वे एण्ड कैरेक्टराइजेशन ऑफ वाटर डिस्चार्ज इन्टु द हुगली एस्चुरी । जरनल ऑफ इन्लैण्ड फिशरीज सोसायटी । 5: 82-101 ।

गुंडरमैन, एन. एवं डी. एम. पौपर (1984) । नोट्स ऑन दी इंडों पैसीफिक मंगल फिसेस एंड ऑन मैंग्राव्स रीलेटेड फिशिरीज, इन : पोर. डी. तथा आई. डोर. संपादित हाइड्रोबायोलॉजी ऑफ दी मंगल, पृष्ठ सं. 201-206 । डॉ. डब्लू. जंक. हेग ।

हैच, यू. और सी.एफ.ताई (1997) । ए सर्वे ऑफ एक्वाकल्चर प्रोडक्शन इकोनोमिक्स एण्ड मैनेजमेंट । एक्वाकल्चर इकोनोमिक्स एण्ड मैनेजमेंट । 1 (1) : 13-27 ।

जैगर, पी. और पेंडर, जे. (2001) । इश्युज फॉर एक्वाकल्चर इन ईस्ट अफ्रीका: द केस ऑफ युगान्डा । नागा - द इक्लार्म क्वाटर्ली । 24 (1-2) : 42-51 ।

केन्ट, जी. (1998)। फिशरीज फूड सिक्युरिटी एण्ड पुअर फूड पॉलिसी । 22 (5) : 393-404 ।

कैंडी, जे.एफ. और एस.एम.गारसिया (1986) । फिशरीज थिमैटिक मैपिंग : ए प्रिरिक्वीजीट फॉर इन्टेलिजेन्स डेवेलपमेन्ट एण्ड मैनेजमेंट ऑफ फिशरीज । ओसनोग्राफी ट्रापिकल 21(1):31-52 ।

लो-मैवकोलेन, आर. एच. (1975) । फिश कम्युनिटिज इन ट्रॉपिकल फ्रेश वाटर, देयर डिस्ट्रीब्यूसन, इकॉलॉजी एंड इबोलुरान, पृष्ठ सं. 337 । लांग मैन, लंदन ।

लेविस, डी.जे., जी.डी.वुड और आर. ग्रेगरी (1996)। ट्रेडिंग द सिल्वर सीड : लोकल नॉलेज एण्ड मार्केट मोरटैलिटीज इन एक्वाकल्चर । युनिवर्सिटी प्रेस लिमिटेड, लंदन ।

लॉग्ज, जे.एम.(1997) । वाहरसेस, बायोसेक्युरिटी एण्ड स्पेसेफिक पैथोजेन फ्री स्टॉक इन श्रिम्प एक्वाकल्चर । वर्लड जरनल ऑफ माइक्रोबायोलॉजी एण्ड बायोटेक्नोलॉजी । 13(4) : 405-413 ।

ली.एस. (1999) । एवेलेबिलिटी ऑफ एरियाज फॉर फरदर एक्वाकल्चर प्रोडक्शन । इन एन एसवेनेबिग एच रिटर्नसन और एम. बीन्यु (संपा.) । सस्टेनेबल एक्वाकल्चर ए.ए. बालकेमा, राटर्डम ।

मुखर्जी, एम. (2003) । फिशरवोमन ऑफ सुन्दरवन वेटलैण्ड एरिया एटीट्युड्स, बिलिफ्स एण्ड कांस्ट्रेन्ट्स । फिसिंग चाइम्स ।

नेयलार, आर.एल., आर जे गोल्डनबर्ग, जी.एच.प्रीमावेश एम.सी.एम.वेवरीज, जेवले, सी. फोल्क, जे लुवचिवको, एच. मुनी एवं एम ट्रोल (2000)। एफेक्ट ऑफ एक्वाकल्चर ऑन वर्लड फिश सप्लाइज । नेचर 405: 1017-1024 ।

ओआग, टी. एम. (1939)। रिपोर्ट ऑन द रिवर हुगली एण्ड इट्स हेड क्वार्टर्स्, कमिशनर फॉर द पोर्ट ऑफ कलकत्ता, कोलकाता ।

रोजग्रान्ट, एम., एक्सकाई एंवं एसक्लाइन (2002) । वर्लड वाटर एण्ड फूड टू : डीलिंग विथ स्कारसिटी । आई.एफ.पी.आर.आई. वाशिंगटन डी.सी. ।

सीलास, ई. जी. (1986) । सीग्निफिकेन्स ऑफ मैंग्रोव इकोसिस्टम इन द रिक्रुटमेन्ट ऑफ फ्राई एण्ड लार्वा ऑफ फिनफिश एण्ड क्रस्टेशियन्स एलांग द ईस्ट कोस्ट ऑफ इंडिया

पर्टिकुलरली द सुन्दरवन्स । पेपर प्रेजेन्टेड एट द वर्कशॉप ऑन कन्जरवेशन ऑफ मैंग्रोव्स एरियाज फॉर एक्वाकल्चर , 21-26 अप्रैल । फिलीपिन्स ।

सीलास, ई. जी. (1950) । मैनेजमेन्ट ऑफ मैंग्रोव एशोसियेटेड फिशरीज एण्ड एक्वाकल्चर इन द सुन्दरवन्स । इन माफाम आर. एच. एवं टी पीटर संपा. एफ.ए.ओ.फिश रिपोर्ट 370 ।

सेठ, जी. के. और टी. आर.भास्करन । इफेक्ट्स ऑफ द इन्डस्ट्री वेस्ट डिस्पोजल ऑन द सैनीटरी कन्डीशन्स ऑफ द हुगली रीवर इन्डियन जरनल ऑफ मेडिकल रिसर्च । 38 (4) : 34 ।

हुगली-मातलह ज्वारनदमुख की हिल्सा मात्स्यिकी

डी. नाथ, एच. सी. कर्माकार एवं आर. एन. मिश्रा
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता- 700120

परिचय

पश्चिम बंगाल के हुगली ज्वारनदमुखी परितंत्र में इंडियन शेड *टेनुलोसा इलीशा*, जिसे स्थानीय रुप से हिल्सा या *इलीशा* कहा जाता है, की प्रचुरता है जो व्यवसायिक मात्स्यिकी के लिए बहुत ही लाभदायक है । चमक वाली (सिल्वरी) हिल्सा मछलियों की संख्या अधिक होती है जो विशेषकर मानसून के दौरान (जुलाई-अक्तूबर) पाई जाती है, जब मछलियॉ समुद्र से प्रजनन के लिए ज्वारनदमुख के ऊपरी मीठे जल क्षेत्र की ओर आती हैं । शीतकाल के दौरान भी (मध्य नवम्बर से फरवरी तक) हिल्सा मछलियाँ अच्छे परिमाण में प्राप्त होती हैं । इस प्रजाति की वार्षिक उपज में काफी उतार चढ़ाव रहता है (तालिका-1) जबकि फरक्का बाँध निर्माण के बाद ज्वारनदमुख की हिल्सा उपज में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है ।

हुगली ज्वारनदमुख के मात्स्यिकी में हिल्सा मछलियों का विशेष महत्व है जिसका मुख्य कारण है इनका उच्च विक्रय दर एवं उपभोक्ताओं की पसन्द । अनेक वैज्ञानिकों ने (पिल्लई, 1958; डे, 1980-1986; दत्ता आदि, सिन्हा आदि, 1996; मित्रा आदि 1997 एवं 2001) इस प्रजाति की समुद्रापगामी प्रवृत्ति, प्रजनन स्थल तथा अवधि, प्रग्रहण में उपयोग किए जानेवाले विभिन्न मत्स्यन विधाओं तथा अन्य संबंधित विषयों का अध्ययन किया । इन कुछ वर्षों में ज्वारनदमुख से प्राप्त हिल्सा उपज में वृद्धि हुई है। इस लेख में हुगली ज्वारनदमुख की हिल्सा मात्स्यिकी की वर्तमान अवस्था पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

सामग्री एवं विधि

मत्स्य उपज के आंकलन हेतु हुगली ज्वारनदमुख क्षेत्र को इसकी लवणीयता, मत्स्यन एवं प्रग्रहण, मत्स्यन संभारों की विविधता तथा भौगोलिक स्थिति के आधार पर चार भागों में बाँटा गया है जैसेः-

1) **जोन-I** मुख्य धारा में नवाद्वीप से बारानगर तक का जलीय क्षेत्र ।

2) **जोन-II** मुख्य धारा में बारानगर एवं डायमंड हारवार के बीच का क्षेत्र ।

3) **जोन-III** (निचले क्षेत्र) सुन्दरवन का पूरा ज्वारनदमुखी क्षेत्र तथा मुख्य धारा में डायमंड हारवार से नीचे का जलीय क्षेत्र ।

4) **जोन-IV** रुपनारायण उपनदी जो डायमंड हारवार से ऊपर 19 कि.मी. की दूरी पर मुख्य धारा में मिलती है ।

जोन-I, II तथा IV ऊपरी ज्वारनदमुख तथा जोन- III निचली ज्वारनदमुख माना जाता है ।

सैम्पलिंग तथा आंकलन प्रणालियों का विस्तृत विवरण दत्ता आदि (1972) और मित्रा आदि (1997) द्वारा दिया गया है । अतः उन्हें फिर उल्लेख नहीं किया जा रहा है।

परिणाम एवं विवेचना

हुगली ज्वास्नदमुख से प्राप्त वार्षिक हिल्सा उपज वर्ष 1998-99 से 2002-03 के दौरान 6448.2 टन से 15799.0 टन के बीच आंकी गयी है जो औसतन 10382.9 टन प्रति वर्ष है । इस आंकलन से देखा गया है कि पिछले पाँच वर्षों (1993-94 से 97-98 के दौरान) की औसत वार्षिक उपज 6279.6 टन में प्रति वर्ष 65.3% की वृद्धि हुई है । ज्वारनदमुख की कुल उपज में इस प्रजाति के मछलियों का योगदान 10.2 से 21.9% तक (औसतन 15.7%) रहा है । यद्यपि वर्ष 2000-01 के दौरान प्राप्त हिल्सा उपज (15799 टन, तालिका-1) अब तक की अधिकतम उपज है । वर्ष 2000-01 में हिल्सा का अपेक्षित या अच्छा उत्पादन, विशेष प्रयास, मत्स्यन कार्य का आधुनिकीकरण तथा अच्छी सुविधाओं का ही परिणाम है । किन्तु वर्ष 2002-03 के दौरान हिल्सा उपज में विशेष कमी (6448.2) टन हुई है जिसका मुख्य कारण है

मानसून के दौरान हिल्सा मछलियाँ की उपज में कमी । ज्वारनदमुख के विभिन्न क्षेत्रों की हिल्सा उपज तालिका-1 में दर्शाया गया है ।

तालिका-1 ऊपरी ज्वारनदमुख, निचली ज्वारनदमुख एवं दीघा केन्द्र से प्राप्त हिल्सा उपज (टनों में)

वर्ष	ऊपरी ज्वारनदमुख	निचली ज्वारनदमुख	कुल	दीघा केन्द्र	दोनों का कुल योग
1998-99	528.6	8464.2	8992.8	2587.7	11580.5
1999-00	305	5037.1	5342.1	1197.1	6539.2
2000-01	354.1	9436.1	9790.2	6008.8	15799
2001-02	391.4	7358.9	7750.3	3797.4	11547.7
2002-03	480.7	3697.6	4178.3	2269.9	6448.2
औसत	411.9	6798.8	7210.7	3172.2	10382.9
%	4	65.5	69.5	30.5	100.0

ऊपरी ज्वारनदमुख क्षेत्र में वर्ष 1998-99 से 2002-03 के दौरान प्रति इकाई मत्स्यन प्रयास से प्राप्त उपज (CPUE) तालिका-2 में दर्शाया गया है ।

तालिका-2 विभिन्न मत्स्यन जालों द्वारा वर्ष 1998-99 से 2002-03 के दौरान ऊपरी ज्वारनदमुखी क्षेत्र से प्राप्त उपज

वर्ष	जोन-I			जोन-II	जोन-IV
	ड्रिफ्टगिल नेट CPUE (कि.ग्रा.)	पर्स नेट CPUE (कि.ग्रा.)	सेट्गिल नेट CPUE (कि.ग्रा.)	ड्रिफ्ट गिल नेट CPUE (कि.ग्रा.)	ड्रिफ्ट गिल नेट CPUE (कि.ग्रा.)
1998-99	0.95	0.36	1.78	1.48	1.16
1999-00	0.58	0.21	0.78	0.82	1.02
2000-01	0.63	0.23	0.71	0.77	0.88
2001-02	0.79	0.4	-	1.85	1.15
2002-03	0.81	0.58	1.42	1.29	1.06

वर्ष 1998-99 से 2002-03 की अवधि के दौरान जोन-I, जोन-II तथा जोन- IV में ड्रिफ्टगिल नेट के उपयोग से प्रति इकाई प्रयास से प्राप्त उपज दर में भिन्नता क्रमशः 0.58 से 0.95 कि.ग्रा., 0.77 से 1.48 कि.ग्रा. तथा 0.88 से 1.16 कि.ग्रा. पाई गई है । वर्ष 1998-99 से 2002-03 की अवधि के दौरान निचली समुद्रीय क्षेत्र जहाँ से मानसून के दौरान प्राप्त कुल हिल्सा उपज का 70-90 प्रतिशत उपज प्राप्त होती है, में हिल्सा संभारों की प्रति यूनिट प्रयास से प्राप्त उपज का औसत दर 92 से 228 कि.ग्रा. के बीच पाया गया है ।

अधिकतम उत्पादन

वर्ष 2000-01 में प्राप्त हिल्सा मछलियों के भारी परिमाण से ज्ञात होता है कि हुगली ज्वारदनदमुख से हर 10 वर्षों के अन्तराल में एक भारी उपज प्राप्त होती है । दस वर्षों के अन्तराल में प्राप्त वार्षिक उपज निम्नलिखित हैः-

वर्ष	हिल्सा उपज (टन में)
1971-72	6573.3
1981-82	6886.0
1991-92	6256.0
2000-01	15799.0

मत्स्यन उपष्कर

नदीय एवं ज्वारनदमुख परितंत्रों से हिल्सा मछलियों को पकड़ने के लिए विभिन्न प्रकार के संभारों एवं जालों का प्रयोग किया जाता है । इनमें से प्रमुख है - *ड्रिफ्ट गिल नेट* (स्थानीय रुप से चन्डी, धोली एवं कोना), *सेट-गिल नेट* (स्थानीय रुप से *नंगर जाल*), *सीन नेट* तथा *क्लाप* या *परसे नेट* (स्थानीय रुप से *सांगलो जाल*) । ड्रिफ्ट गिल नेट सामान्यतः तटीय क्षेत्रों, ज्वारनदमुख एवं नदियों में उपयोग किया जाता है जब कि क्लाप नेट विशेषकर ज्वारनदमुख के ऊपरी क्षेत्रों में तथा नदियों में उपयोग किया जाता है । गिल नेट के छिद्रों के आकार तथा चयन कारकों में काफी भिन्नता देखी जाती है । छिद्रों का आकार 8-12 से.मी. होता है । ये जाल विशेष रुप से नाइलॉन की बनी होती है । ज्वारनदमुख के ऊपरी क्षेत्र में मानसून के दौरान ड्रिफ्ट गिल नेट के अतिरिक्त परसे और सेट गिल नेट का भी उपयोग किया जाता है । मानसून के दौरान 80-90% हिल्सा मछलियाँ ड्रिफ्ट गिल नेट के प्रयोग से ही पकड़ी जाती है ।

मत्स्यन कार्य में उपयोग किए जाने वाले नाव सामान्यतः यंत्र चालित नहीं होती हैं और ये लकड़ियों के पट्टों से बनी होती है । किन्तु वर्तमान अध्ययनों से पता चलता है कि नवें दशक के पश्चात् मत्स्यन नाव यंत्र चालित बना दिए गए हैं और इनका उपयोग बड़ी तेजी से प. बंगाल के तटीय क्षेत्रों में मत्स्यन और परिवहन के लिए होता है।

छोटे एवं अपरिपक्व हिल्सा मछलियों का अवांछित नाश

छोटे छिद्रों वाले जाल विशेषकर बेग नेट एवं सीन नेट के अनुचित प्रयोग से हिल्सा मछलियों के बच्चे भी पकड़ में आ जाते है जिससे बड़े पैमाने पर इस प्रजाति का ह्रास हो रहा है । वर्ष 1998-99 से 2002-03 के दौरान इन मत्स्य बीजों का परिमाण 44.1 से 151.0 टन आंका गया है जो औसतन 85.1 टन प्रति वर्ष है । इन मत्स्य बीजों से अनुमानतः लगभग 190.4 लाख छोटी मछलियाँ प्राप्त हो सकती थी । इस प्रकार के अवांछित दोहन से भविष्य में हिल्सा की उपज प्रभावित हो सकती है । अतः छोटे छिद्रों वाले जालों के प्रयोग को निषेध किया जाना आवश्यक है ।

उपसंहार

हिल्सा मछली की विशिष्ठता एवं बहुमूल्यता के कारण हिल्सा मात्स्यिकी मानसून के दौरान अन्य प्रजातियों की अपेक्षा महत्वपूर्ण हो जाती है । ज्वारनदमुख के ऊपरी क्षेत्रों में हिल्सा मत्स्यन उपष्कारों की प्रचुरता देखी जाती है जबकि अन्य मछलियों के मत्स्यन संभारों के उपयोग में कमी होती है । हिल्सा मछलियों की औसत लम्बाई जो वर्ष 1984-85 से 1993-94 के दौरान 356 मि.मी. मापी गई है, वह अब वर्ष 98-99 से 2002-03 के दौरान घटकर 325 मि.मी. रह गई है । यह स्थिति चिन्ताजनक ही नहीं बल्कि भविष्य में इस प्रजाति के बीजों की उपलब्धता के ह्रास का भी संकेत है । इस समस्या से जूझने के लिए जालों के छिद्रों के आकार पर पाबंदी लगायी जानी आवश्यक है ।

संदर्भ

दे, डी. के., 1980. मैचूरिटी, फेकन्डीटी एण्ड स्पानिंग ऑफ पोस्ट मानसून रन ऑफ हिल्सा, तेनुलोसा इलीशा (हैम.) इन द अपर स्ट्रेचेज ऑफ द हुगली इस्टुराइन सिस्टम जर्नल इंलैंड फिशरीज सोसाइटी ऑफ इंडिया **12 :** 54-63

------- , 1986. स्टडीज ऑन द फूड एण्ड फिडिंग हैबीट ऑफ हिल्सा, तेनुलोसा इलीशा (हैम.) ऑफ द हुगली इस्टूरान सिस्टम एण्ड सम आस्पेक्टस ऑफ इटस बायोलोजी पी.एच.डी. थेसिस ऑफ कोलकाता यूनिवर्सिटी, कोलकाता

दत्ता, पी., जी. सी. लाहा, पी. एम. मित्रा, डी. के.डे, ए. चौधरी, पी. के पंडित, ए. आर. चौधरी, आर. एन. दे, बी. के. साहा, एच. एस. मजूमदार, एन. डी. सरकार, एन. सी. मंडल, जी. पी. भट्टाचार्या, ए. के. नामासुद्र, एस. पी. घोष एवं ए. आर. पाल 1973. फिशरीज ऑफ हुगली-मातलाह एस्टूराइन सिस्टम बुले. *सेंट्रल इंलेंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट* न. **19** पी.24

मित्रा, पी.एम., एच. सी. कर्माकार, एम. सिंहा, ए. घोष एवं बी. एन. सैगल 1997. फिशरीज ऑफ द हुगली-मातलह इस्टूराइन सिस्टम- एन एप्रैजल बुले. *सेंट्रल इंलेंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट* न. **67** : 49 पी.

मित्रा, पी. एम., एच. सी. कर्माकार, ए. के. घोष, एन. सी. मंडल, एच. के. सेन एवं बी. एन. दास 2001 फिशरीज ऑफ हुगली-मातलह इस्टूराइन सिस्टम- फरदर एप्रैजल बुले. *सेंट्रल इंलेंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट* न. **109** : 18 पी.

पिल्लइ, टी.वी.आर., 1958. बायोलोजी ऑफ हिल्सा, *हिल्सा इलीशा* (हैमीलटन) ऑफ द रीवर हुगली, *इंडियन जे.फिश.* **5**(2): 201-257

सिंहा, एम., एम. के. मुखोपाध्याय, पी. एम.मित्रा, एम. एम. बागची एवं एच. सी. कर्माकार 1996. इम्पैक्ट ऑफ फरक्का बैरैज ऑन हाइड्रोलोजी एण्ड फिशरी ऑफ हुगली इसटूरी. *इस्टूरी* **19**(3): 710-722.

हुगली-मातलह ज्वारनदमुख की मात्स्यिकी

एच. सी. कर्माकार, आर. एन. मिश्रा एवं डी. नाथ
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता -700120

परिचय

हुगली-मातलह ज्वारनदमुखी परितंत्र एवं इसकी डेल्टाई क्षेत्र विश्व के बड़े ज्वारनदमुखी परितंत्रों में से एक है, जो लगभग 8 लाख हेक्टेयर में फैला हुआ है । हुगली ज्वारनदमुख की लम्बाई 295 कि.मी. है, जो 21^0 31' उत्तरी एवं 23^0 30' उत्तरी अंक्षाश तथा 87^0 45' पूर्वी एवं 88^0 45' पूर्वी देशान्तर रेखाओं के बीच स्थित है । यह जलीय क्षेत्र जलजीव सम्पदा से भरपूर है एवं देश की प्रग्रहण मात्स्यिकी का महत्वपूर्ण अंग है । वर्ष 1975 में फरक्का बाँध के निर्माण से ज्वारनदमुख की पारिस्थितिकी एवं संबंद्ध पर्यावरणीय स्थितियों में उल्लेखनीय परिवर्तन आ गया है । इसके परिणामस्वरुप लवणीयता में कमी, मीठे जल क्षेत्र का विस्तार, ज्वारनदमुखी मत्स्य उपज में विभिन्न प्रजातियों की उपलब्धता में परिवर्तन, ज्वारनदमुख के ऊपरी क्षेत्रों में नेराटिंचली प्रजातियों का लुप्त होना आदि देखे गए हैं । अनेक अध्ययनकर्त्ताओं दत्ता इट एल., 1972,) ने यह सूचित किया है कि हुगली-मातलह ज्वारनदमुख से प्राप्त वार्षिक मत्स्य उपज में वृद्धि हुई है । प्रस्तुत लेख में हुगली ज्वारनदमुख की मात्स्यिकी की वर्तमान अवस्था पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

सामग्री एवं विधि

मत्स्य उपज के आंकलन हेतु हुगली ज्वानदमुख क्षेत्र को इसकी लवणीयता, मत्स्यन एवं प्रग्रहण, मत्स्यन संभारों की विविधता तथा भौगोलिक स्थिति के आधार पर चार भागों में बाँटा गया है जैसेः-

1) **जोन-I** मुख्य धारा में नावाद्वीप से बारानगर तक के जलीय क्षेत्र ।

2) **जोन-II** मुख्य धारा में बारानगर एवं डायमंड हारवारर के बीच का क्षेत्र ।

3) **जोन-III** (निचले क्षेत्र) सुन्दरवन का पूरा ज्वारनदमुखी क्षेत्र तथा मुख्य धारा में डायमंड हारवार से नीचे का जलीय क्षेत्र ।

4) **जोन-IV** रुपनारायण उपनदी जो डायमंड हारबार से ऊपर 19 कि.मी. की दूरी पर मुख्य धारा में मिलती है ।

जोन-I, II तथा IV ऊपरी ज्वारनदमुख तथा जोन- III निचली ज्वारनदमुख माना जाता है ।

सैम्पलिंग तथा आंकलन प्रणालियों का विस्तृत विवरण दत्ता *इट एल* (1972) और मित्रा *इट एल* (1997) द्वारा दिया गया है । अतः उन्हें फिर उल्लेख नहीं किया जा रहा है ।

परिणाम एवं विवेचना

हुगली-मातलह ज्वारनदमुखी परितंत्र में उच्च उत्पादन क्षमता है । इस परितंत्र की कुल वार्षिक मत्स्य उपज वर्ष 1998-99 से 2002-03 के दौरान 62165.4 टन से 72098.7 टन के बीच, औसतन 66027 टन प्रति वर्ष आंकी गयी है । मित्रा आदि (2001) के अनुसार वर्ष 1994-95 से 99-00 की अवधि के दौरान औसत वार्षिक मत्स्य उपज 55915.4 टन रही । ज्वारनदमुख की वर्तमान औसत उपज की तुलना मित्रा आदि (2001) द्वारा इंगित औसत उपज से करने पर ज्ञात होता है कि वर्ष 1998-99 से 2002-03 की अवधि के दौरान प्रति वर्ष 18% उपज की वृद्धि हुई है । वर्ष 2000-01 में प्राप्त अधिकतम उपज (तालिका-1) का मुख्य कारण है - *हिल्सा, स्कियाना बियारिटस,* पामा पामा, *पेम्पस अरजेन्टिसस* और झींगा प्रजातियों की उपज में वृद्धि । वर्ष 1999-00 एवं 2002-03 में मत्स्य उपज में विशेष कमी का प्रमुख कारण - हिल्सा एवं शीत प्रवासी बैग नेट मात्स्यिकी की उपज में गिरावट । ज्वारनदमुख से वर्ष 1998-99 से 2002-03 के दौरान प्राप्त वार्षिक मत्स्य उपज का विवरण तालिका-1 में दर्शाया गया है ।

कुल मत्स्य उपज में विभिन्न प्रजातियों की प्रतिशत उपलब्धता क्रमशः *हारपोडन नेहिरियस* 12.7-19.8% (औसतन 16.4%), *टेन्युलोसा इलीशा* 10.2-21.9% (औसतन 15.7%), *पामा पामा* 10.0-12.3% (औसतन 11.2%), *सेटीपिन्ना* प्रजाति 6.4-11.3% (औसतन 8.3%), *ट्रिच्यिरस* प्रजाति 5.9-8.5% (औसतन 7.5%), झींगा 4.2-7.3% (औसतन 6.0%), *अरियस जेल्ला* 5.1-5.8% (औसतन 5.4%), *स्कियाना बियारिटस* 0.0-3.4% (औसतन 3.1%), *कोयलिया* प्रजाति 1.7-4.2% (औसतन 2.7%), *पेम्पस अरजेन्टियस* 1.3-4.0% (औसतन

2.6%), *इलीशा मेगालॉपटेरा* 1.3-2.2% (औसतन 1.9%) और मैकरेल 0.8-2.1% (औसतन 1.2%) पायी गयी । ज्वारनदमुख से प्राप्त इन प्रजातियों का उत्पादन 76.4-85.8% है जो औसतन 82.0% आंका गया हैं ।

तालिका-1 हुगली-मातलह ज्वारनदमुख की मत्स्य उपज में विभिन्न प्रजातियों की उपस्थिति

प्रजातियाँ	1998-99	1999-00	2000-01	2001-02	2002-03	Average	%
टी. इलीशा	11580.5	6539.2	15799	11547.7	6448.2	10382.9	15.7
एल.टेड	0.8	0.8	0.6	0.8	12.4	3.1	0.0
एल.पारसिया	21.2	18.2	17.6	31.7	57	29.1	0.0
एल.कालकारीफर	108.5	20.1	17.5	9	40.3	39.1	0.1
एस.पानीजस	28.6	19.2	82	37.8	232.4	80.0	0.1
पी.पाराडीसियस	421.6	361.3	568.9	328.2	240.8	384.2	0.6
पी. इंडिकस	113.9	98.6	66.8	88.5	163.3	106.2	0.2
इ.टेट्राडेक्टाइलम	22.8	21.8	23.6	30.4	30	25.7	0.0
एस.बायूरिटस	2178.3	2115.9	3383.1	2398.6	28.9	2021.0	3.1
कोयलिया स्पेसिज	2713.1	2103.6	1338.2	1115.4	1571.7	1768.4	2.7
पी. पामा	6552.8	7645.1	7957	7172.9	7700.6	7405.7	11.2
एच.टोआइल				11.9		2.4	0.0
आइ.मेगालोपटेरा	1249.3	1215.2	1609	1445	853.1	1274.3	1.9
एनोडोनटोसटोना स्पेसिज	32.3	14.8	7.2	5.5	43.8	20.7	0.0
एम. गुलियो	24.6	24.5	21.4	47.2	38.9	31.3	0.0
सेटीपीना स्पेसिज	4164.5	7011.7	4775	6197.5	5129.7	5455.7	8.3
सी. डोराब	900.9	373.8	362	282.7	581	500.1	0.8
पी.पंगासियस	133.6	11.1	26.8	44.9	222.5	87.8	0.1
ए.जेला	3350.1	3488.2	4170.1	3437.6	3451.3	3579.5	5.4
ओ.मिलीटेरीस	192.8	216.1	216.5	164.5	244.9	207.0	0.3

पी. केनियस	1.8		0.3	2.1	5.4	1.9	0.0
लुतजानस स्पेसिज	31.3	196	267.7	220.2	110.8	165.2	0.3
त्रिचीयूरस स्पे.	5223.1	3655.5	4979	5735.7	5031.3	4924.9	7.5
एच.नेहिरियस	8318.2	12302.8	9275.9	11815.1	12358.6	10814.1	16.4
पी.आर्जेंटीयस	1436.6	807.7	1850.1	2053.7	2508.5	1731.3	2.6
प्रॉन	2729.9	3916.2	4359.4	4170.6	4615.1	3958.2	6.0
मैक्रेल	1356.2	700.1	588.6	538.8	754.7	787.7	1.2
विविध	12318.3	9212.5	10289.3	8302.1	10745.6	10173.6	15.4
खाराजल प्रजाति	51.3	75.4	46.1	57.3	99.9	66.0	0.1
कुल	**65256.9**	**62165.4**	**72098.7**	**67293.4**	**63320.7**	**66027.0**	**100.0**

मत्स्य उपज में क्लूपियड्स 23.3-31.6 (औसतन 29.4%), बम्बई डक 12.7-19.8% (औसतन 16.4%), स्कियानिड्स 12.2-15.7% (औसतन 14.3%), रिब्बन फिश्स 5.9-8.5% (औसतन 7.5%), झींगे 4.2-7.3% (औसतन 6.0%), कैट फिश्स 5.7-6.3% (औसतन 5.9%) और पोलिनिमिड्स 0.7-0.8% (औसतन 0.8%) वर्गों की बहुलता थी ।

हुगली-मातलह ज्वारनदमुख की आंकलित मत्स्य उपज में वृद्धि हो रही है । इसके अनुरुप वर्ष दर वर्ष मत्स्यन प्रयासों में भी तेजी आ रही है । जैसे मत्स्यन नावों का यंत्रीकरण एवं संबंधित उपकरणों की आधुनिकीकरण । इस परिपेक्ष्य में यह अध्ययन आवश्यक हो जाता है कि संभावित उत्पादन क्षमता का उचित आंकलन हो सके । वर्ष 1993-94 से 2002-03 तक की अवधि से संबंधित मत्स्य उपज के आंकड़ों को अधिकतम प्रग्रहण योग्य उत्पादन क्षमता (अलगाराजा, 1984) के आंकलन में उपयोग किया गया है । प्रग्रहण योग्य उत्पादन क्षमता (C-max) 67,855 टन आंका गया है । पिछले पाँच वर्षों की औसत मत्स्य उपज लगभग इसी श्रेणी में 66027 टन रही है ।

तालिका-2 हुगली-मातलह ज्वारनदमुख से प्राप्त कुल मत्स्य उपज

वर्ष	कुल मत्स्य उपज (टन में)
1993-94	37551.5
1994-95	37980.8
1995-96	44628.3

1996-97	69607.9
1997-98	55853.4
1998-99	65256.9
1999-00	62165.4
2000-01	72098.7
2001-02	67293.4
2002-03	63320.7

वर्ष 1993-94 से 1997-98 की पाँच वर्षों की अवधि में प्राप्त औसत वार्षिक उपज 45524.4 टन की तुलना में बाद के पाँच वर्ष 1998-99 से 2002-03 की अवधि में प्राप्त उपज में 36.1% की वृद्धि हुई है । इस उल्लेखनीय वृद्धि का मुख्य कारण है - मत्स्यन नावों का यंत्रीकरण एवं अन्य उपकरणों का आधुनिकीकरण, औसत वार्षिक उपज 67027 टन अधिकतम नियमित उपज (मैक्सीमम ससटेयनेबुल ईल्ड) की परिधि में (MSY:67855.1 t) है । मत्स्य उपज की निरन्तर प्राप्ति के लिए मत्स्यन प्रयासों को नियमित किया जाना आवश्यक है । यदि मत्स्यन प्रयासों में और अधिक तेजी लाई जाए तो ज्वारनदमुखी परितंत्र पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा और अन्ततः इसकी मात्स्यिकी बड़े पैमाने पर नष्ट हो जायगी ।

संदर्भ

अलगाराजा, के., 1984. सिम्पल मेथडस फॉर एस्टीमेशन ऑफ पारामीटरस फोर एसेसिंग एक्सपोलाइटेड फिश स्टोक्स *इण्डियन जे. फिश.* **31**(2): 177-208

दत्ता, पी. जी., सी. लाहा, पी. एम. मित्रा, डी. के.डे, ए. चौधरी, पी. के पंडित, ए. आर. चौधरी, आर. एन. दे, बी. के. साहा, एच. एस. मजूमदार, एन. डी. सरकार, एन. सी. मंडल, जी. पी. भट्टाचार्या, ए. के. नामासुद्र, एस. पी. घोष एवं ए. आर. पाल 1973. फिशरीज ऑफ हुगली-मातलाह एस्टूराइन सिस्टम बुले. *सेंट्रल इंलेंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट* न. **19** पी.24

मित्रा, पी.एम., एच. सी. कर्माकार, एम. सिंहा, ए. घोष एवं बी. एन. सैगल 1997. फिशरीज ऑफ द हुगली-मातलह इस्टूराइन सिस्टम- एन एप्रैजल बुले. *सेंट्रल इंलेंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट* न. **67** : 49 पी.

मित्रा, पी. एम., एच. सी. कर्माकार, ए. के. घोष, एन. सी. मंडल, एच. के. सेन एवं बी. एन. दास 2001 फिशरीज ऑफ हुगली-मातलह इस्टूराइन सिस्टम- फरदर एप्रैजल बुले. *सेंट्रल इंलेंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीटयूट* न. **109** : 18 पी.

सिंहा, एम., एम. के. मुखोपाध्याय, पी. एम.मित्रा, एम. एम. बागची एवं एच. सी. कर्माकार 1996. इम्पैक्ट ऑफ फरक्का बैरैज ऑन हाइड्रोलोजी एण्ड फिशरी ऑफ हुगली इसटूरी. *इस्टूरी* **19**(3): 710-722.

मिश्रित मत्स्य पालन अधिक उत्पादन के लिये वरदान

धर्म नारायण मिश्र
केन्द्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान केन्द्र
करनाल- 132001

भारत एक कृषि प्रधान और जनसंख्या बाहुल्य राष्ट्र है । जहाँ प्रान्तीय विभिन्नतायें होते हुये भी राष्ट्र के चहुँमुखी विकास में सबकी बराबर की भागीदारी है । देश के ग्रामीण अंचल में तालाबों, झीलों, जलाशयों आदि के रुप में जलक्षेत्रों का बाहुल्य है । खाद्य पदार्थ की बढ़ती हुई माँग को देखते हुये यह आवश्यक हो गया है कि जल संसाधनों का प्रयोग अतिरिक्त खाद्यान उत्पादन के लिये किया जाय । अब से पूर्व ग्रामीण अंचल के ये जलाशय अधिकांश पशुओं को नहलाने, सिंचाई आदि में प्रयोग किये जाते रहे है और बहुत से निष्प्रयोजन पड़े हुये है । यदि इन तालाबों में सुधार कार्य करा कर मत्स्य पालन किया जाय तो ग्रामीण अंचल में इनसे मत्स्य उत्पादन में बढ़ोतरी होगी और रोजगार के अतिरिक्त साधन भी उपलब्ध होंगे, साथ ही आर्थिक स्थिति के सुधार में सहायक सिद्ध होंगे ।

यदि हम मत्स्य पालन की ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि देखे तो मत्स्य उद्योग और भोजन के लिये हमारे इतिहास में वैदिक काल से लेकर निरन्तर साहित्य मिलता आया है, जो इस उद्योग को स्पष्ट कर देता है । गृहय सूत्र में यह स्पष्ट संकेत है कि मांस के न मिलने पर ही शाकाहारी भोजन किया जाता था । सम्राट अशोक के शिलालेखों में यह स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि उस काल में भी मछली पालने और मारने के लिये नियम बने हुये थे । ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व मौर्यकाल में ब्राह्मणविद्वान चाणक्य ने विभिन्न धर्म सूत्रों के अध्ययन के बाद शासन चलाने के लिये कौटिल्य शास्त्र की रचना की और उसमे भी मत्स्य उद्योग के लिये स्पष्ट नियम बनाये थे । उस समय से आजतक मत्स्य पालन में निरन्तर बढ़ोत्तरी होती आई है । परन्तु तकनीकी ज्ञान के अभाव में वह बढ़ोत्तरी जितनी होनी थी नहीं हो पाई । उसके कई कारण रहे हैं । देश के मत्स्य वैज्ञानिकों ने अपने अथक प्रयास से इन समस्याओं का निदान ढूंढ़ निकाला है ।

तालाब का चयन, खाद और उर्वरक का समुचित प्रयोग, स्वस्थ्य अंगुलिकाओं का संचय और तालाब का रखरखाव आदि अधिक उत्पादन के लिये विभिन्न पहलू अपनी अहम भूमिका निभाते हैं । जिनका विस्तृत विवरण निम्न रुप से है ।

तालाब स्थल का चुनाव

नये तालाब निर्माण या पुराने तालाब की मरम्मत करके उसे मत्स्य पालन के अन्तर्गत लाने के लिये निम्न बातों का ध्यान रखें ।

क) तालाब के स्थल तक पहुँचने के लिये रास्ता ठीक हो यदि रोड साइड हो तो ज्यादा अच्छा है ।

ख) तालाब निर्माण से पहले उसकी मिट्टी की जाँच अवश्य करा लें यदि मिट्टी में बालू (रेत) का प्रतिशत ज्यादा है तो पानी नहीं रुकेगा । वहाँ तालाब निर्माण नहीं कराना चाहिये ।

ग) दोमट मिट्टी तालाब के लिये अच्छी होती है । वहाँ पानी रुकता है

घ) क्षारीय मिट्टी में तालाब निर्माण नहीं कराना चाहिये ।

तालाब का क्षेत्रफल व गहराई

1) अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए 0.2 हेक्टयर से 5.0 हेक्टयर बीच का तालाब अच्छा होता है और उसका प्रबन्धन आसानी से किया जा सकता है ।

2) तालाब की गहराई 0.75 मी. से 3.0 मीटर के बीच मत्स्य पालन के लिये ठीक होती है । क्योंकि सूर्य की किरणे आसानी से नीचे तक पहुँच जाती है जो मछली के प्राकृतिक आहार निर्माण में सहायक होती हैं ।

चूने का प्रयोग

चूना मत्स्य उत्पादन में प्रमुख भूमिका निभाता है । जो निम्न है :

(अ) पानी के पी.एच. को ठीक रखता है ।

(ब) कार्बनिक पदार्थों को शीघ्र सड़ाने में मदद करता है ।

(स) मछलियों को बीमारी से मुक्त रखने में सहायक है ।

(द) पानी की शुद्धता बनाये रखता है ।

चूने का प्रयोग 200 से 500 कि.ग्रा. प्रति हे./वर्ष किस्तों में करना चाहिये । यदि पानी अधिक अम्लीय है तो चूने की मात्रा बढ़ सकती है और यदि क्षारीय है तो घटाई जा सकती है मिट्टी की जाँच करवा कर ही चूना तालाब में डालें ।

तालाब की सफाईः- जिन तालाबों में पहले से मत्स्य पालन का कार्य किया जा रहा है, अंगुलिका संचय से पूर्व तालाब की सफाई अत्यन्त आवश्यक है । यह तीन विधियाँ से सम्पन्न कराया जा सकता है ।

(1) तालाब का पूरा पानी निकालकर उसे सुखा देना चाहिये ।

(2) महुआ की खली 20-25 कुन्तल प्रति हेक्टयर 1.0 मीटर गहरे पानी के तालाब में छिड़काव

करना चाहिये । पानी की गहराई बढ़ने पर खली की मात्रा ज्यादा होगी । तालाब में पड़ी हुई सभी मछलियाँ बेहोश/मर जायेगी । चार घंटे के अन्दर जाल चलाकर इन्हें निकाल लेना चाहियें ये खाने योग्य रहती हैं इसके बाद तालाब का पानी प्रदूषित हो जाता है । महुआ की खली से सफाई किये गये तालाब में 21 दिन के बाद ही पानी का परिक्षण करके अंगुलिका संचय करना चाहिये ।

(3) महुए की खली के अभाव में एक मीटर गहरे पानी के लिये 250 से 300 कि.ग्रा. ब्लीचिंग पाउडर भी सफाई के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है । 8-10 दिन तक पानी का प्रयोग न करें । पानी की जांच के बाद ही अंगुलिका संचय करें ।

खाद और उर्वरक का प्रयोग

खाद और उर्वरक का प्रयोग मत्स्य उत्पादन बढ़ाने में अधिक सहायक है । प्रति हेक्टयर/प्रति वर्ष निम्न दर से किया जाता है -

गोबर की खाद	-	20,000 कि.ग्रा./हे./वर्ष
यूरिया	-	25 कि.ग्रा./हे./वर्ष
अमो.सल्फेट	-	150 कि.ग्रा./हे./वर्ष
सिंगल सु.फा.	-	300 कि.ग्रा./हे./वर्ष
म्यु. पोटाश	-	40 कि.ग्रा./हे./वर्ष

उक्त खाद और उर्वरक को छः बराबर हिस्सों में बाँटकर एक भाग अंगुलिका संचय से 15 दिन पूर्व करना चाहिये । शेष बचे हुए खाद और उर्वरक को 10 हिस्सों में बाँट लें । पुनः प्रत्येक हिस्से को तीन हिस्से में बाँट लें और महीने के प्रत्येक दसवें दिन इसका प्रयोग तालाब में करें । इससे तालाब में पैदा होने वाले सूक्ष्म मत्स्य आहार का क्रम नहीं टूटता है और मछलियों की अच्छी बढ़त होती है । ध्यान रहे यदि तालाब की सफाई में महुआ की खली का प्रयोग किया गया है तो अंगुलिका संचय में पूर्व खाद और उर्वरक का प्रयोग नहीं करना चाहिये । महुआ की खली खाद का भी काम करती है ।

फार्म पर और गाँवों के तालाबों में किये गये प्रयोग के आधार पर यहाँ तालाब में खाद और उर्वरक का प्रयोग एक साथ करने से बहुत अच्छे परिणाम मिलते है ।

उदाहरण स्वरुप 0.1 हे. तालाब में खाद और उर्वरक का एक साथ प्रयोग निम्न प्रकार हैः

(य)	चूना	500 ग्रा0
(र)	गोबर की खाद	20 कि.ग्रा.
(ल)	यूरिया	500 ग्रा0
(व)	सिंगल सुप. फा.	1.0 कि.ग्रा.
(श)	म्यु पोटाश	40 ग्रा0

(ष) सरसो/गूँगफली की खली 3-5 कि.ग्रा.
(स) पो0 परमैगनेट 10 ग्रा0

प्रत्येक 10वें दिन पेस्ट बनाकर छिड़काव करें ।

खाद और उर्वरक को प्रयोग के लिये गोबर की खाद और पोटाशियम परमैगनेट को छोड़कर सभी को शाम के समय एक बाल्टी में भिगों दे । सुबह तालाब के वन्धे पर आधा भाग गोबर की खाद के साथ सभी को मिलाकर थोड़ा-थोड़ा एक बाल्टी में लेकर पानी मिलाकर पूरे तालाब में छिड़काव करें । आधे गोबर की खाद को तालाब में पानी के अन्दर कोने में रखना चाहिये ताकि तालाब का पानी प्रदूषित न हो । पोटे. परमैगनेट से हाथ में घाव हो सकता है । हाथ में दस्ताना या प्लास्टिक की थैली बाँध लें । खाद और उर्वरक का प्रयोग सुबह 10 बजे से पूर्व करना चाहिये यदि आसमान में बादल हो तो उस दिन छिड़काव नहीं करना चाहिए ।

अंगुलिका संचय

स्वस्थ्य अंगुलिका तालाब को भली भांति तैयार करके संचय करना चाहिये । संचय से पूर्व तालाब के खुराक आदि की जांच आर उपलब्ध आहार के आधार अंगुलिका की संख्या और प्रतिशत निर्धारण करना चाहिए ।

पानी की उपरी सतह पर खुराक लेने वाली अंगुलिका का 30-40 प्रतिशत (कतला, सिल्वर कार्प) पानी के बीच में रहने वाली मछली 10-25 प्रतिशत (रोहू) और पानी के तलछटी में रहने वाली मछली 30-40 प्रतिशत (मिरगल, कामन कार्प) रखना चाहिये । यदि तालाब नया खुदा हुआ है तो पानी के उपरी सतह पर पाई जाने वाली मछली का प्रतिशत बढ़ा देना चाहिए । यदि पूरक आहार दे रहे हों ।

एक महत्वपूर्ण बात अंगुलिका संचय के समय ध्यान में रखना चाहिये । तालाब में मौजूदा आहार, अंगुलिका उपलब्धता को ध्यान में रखकर उनकी संख्या व प्रतिशत निर्धारित करना चाहिए । तालाब के पानी की भली भाँती जाँच के बाद ही अंगुलिका 5-10,000/ हेक्टयर के दर से संचय करना चाहिये । किये गये भिन्न भिन्न प्रयोगों और मत्स्य अंगुलिकाओं के उपलब्धता के आधार पर प्रगतिशील किसानों के लिये अंगुलिका संचय का प्रतिशत उनके उपलब्धता के आधार निम्न है -

(1) तीन प्रजाति के लिये-

कतला 40 प्रतिशत, रोहू 30 प्रतिशत, मिरगल 30 प्रतिशत संचय करें ।

(2) चार प्रजाति की अंगुलिकाओं के लिये -

कतला 35 प्रतिशत, रोहू 25 प्रतिशत, मिरगल 20 प्रतिशत और कामन कार्प 20 प्रतिशत संचय करना चाहिये ।

(3) पाँच प्रजाति की उपलब्ध अंगुलिकाओं के लिये-

कतला 15 प्रतिशत, सिल्वर कार्प 25 प्रतिशत, रोहू 20 प्रतिशत, मिरगल 20 प्रतिशत और कॉमन कार्प 20 प्रतिशत संचय करना चाहिये ।

(4) छः प्रजाति की अंगुलिका संचय के लिये -

कतला 10 प्रतिशत, सिल्वर कार्प 25 प्रतिशत, रोहू 15 प्रतिशत, मृगल 20 प्रतिशत, कामन कार्प 20 प्रतिशत और ग्रास कार्प 10 प्रतिशत अंगुलिका संचय से बहुत अच्छा उत्पादन प्राप्त होता है ।

तीन देशी और तीन विदेशी मछलियों की अंगुलिकाओं को क्रम संख्या चार पर बताये हुये प्रतिशत गें संचय से उत्पादन अच्छा मिलता है । समय समय उपर बताये हुये तरीके से खाद उर्वरक का प्रयोग और पूरक आहार 2-3 प्रतिशत शरीर के वजन के अनुसार प्रतिदिन देना चाहिये साथ ही ग्रास कार्प को शैवाल/बरसीम आदि प्रतिदिन दिया जाय तो 5000-8000 कि.ग्रा./हे./वर्ष के तालाबों से उत्पादन किया जा सकता है ।

पूरक आहार

संचय की गई अंगुलिका के आधार पर ही पूरक आहार का निर्धारण किया जाता है । सरसों या मूँगफली की खल ओर राईस पालस को शाम को बराबर मात्रा में भिगोकर अंगुलिका/मछली के शरीर के वजन का 2-3 प्रतिदिन सुबह देना चाहिये । इसे तीन प्रकार से दिया जाता है ।

भिगोया हुआ खली और राईस पालिस का लड्डू बनाकर तालाब के पानी में एक ही किनारे प्रतिदिन एक या दो मीटर किनारे छोड़कर देना चाहिये ।

प्लास्टिक की बोरियों बांध कर छोटे छोटे छेद बनाकर पानी के अन्दर बाँस के सहारे लटका देना चाहिए ।

ट्रे के भीतर लडडू बनाकर पानी के अन्दर रख देना चाहिये । एक बात का अवश्य ध्यान दें, पूरक आहार देने से आधा घंटा पूर्व ग्रास कार्प को शैवाल आदि वंधे के दूसरे किनारे पर प्लेटफार्म बनाकर या सीधे देना चाहिये और जिससे ग्रास कार्प दूसरी तरफ अपना भोजन ले ओर पूरक आहार अन्य मछलियों को गिल जायेगा ।,मछली की बाढ़ की जाँच प्रतिमाह अंतिम सप्ताह में तालाब में

जाल चलाकर देखना चाहिये और उसी के वजन और संख्या के अनुसार आहार का वजन घटाया और बढ़ाया जाता है 1 ग्रास कार्प को भी शैवाल/बरसीम आदि प्लेटफार्म बनाकर सुबह ही देना चाहिये । शाम को न तो पूरक आहार और न शैवाल ही देना चाहिये । फार्म और गाँवों में किये गये विभिन्न प्रयोगों के आकड़े आपकी जानकारी के लिए निम्न है । कतला 100-200 ग्रा0, रोहू 50-100 ग्रा0, मृगल 50-100 ग्रा0 सिल्वर कार्प 150-250 ग्रा0 ग्रास कार्प 150-250 ग्रा0 और कामन कार्प 150-200 ग्रा0 औसत प्रतिमाह बढ़ना चाहिये । यदि आपने पूरक आहार, शैवाल, उर्वरक और खाद का समुचित प्रयोग किया है । किसी प्रकार की कमी आने पर नजदीकी मत्स्य विभाग के अधिकारी से संपर्क करके पानी और मिट्टी की जाँच करानी चाहिये ।

मछली की देखभाल और निकासी

मछलियाँ बड़ी होने पर चोरी का भय बना रहता है या रंजिशवश लोग पानी में जहर मिला देते हैं जिससे मछली समूह में मर जाती हैं ऐसी दशा में पहरेदारी होनी चाहिए ।

मछलियों को एक वर्ष के बाद निकाल लेना चाहिये जिस समय रेट प्रति कि. अच्छा हो उसी समय मछली बिक्री करना चाहिए । सबसे उपयुक्त निकासी का समय दिसम्बर और जनवरी है क्योंकि तापक्रम कम होने पर मछलियों की बाढ़ नहीं के बराबर होती है और उस समय पूरक आहार आदि भी कम खाती है । यदि सिल्वर कार्प 25 प्रतिशत है तो एक कि.ग्रा. वजन के होने पर आधा निकाल देना चाहिये और प्रति माह बड़ी मछली जो एक और दो किलो के बीच हो निकाल लेना चाहिए और उतनी उस प्रजाति की अंगुलिका डाल देनी चाहिये । इस विधि से प्रति इकाई अधिकतम उत्पादन लिया जा सकता है ।

उत्पादन में लागत और आय

एक कि.ग्रा. वजन की मछली तैयार करने में 8-15 रु. खर्च आता है और दूने भाव से अधिक मछली का विक्रय किया जाता है इस तरह से किसान को अच्छी आय होती है ।

प्रगतिशील मत्स्य पालकों को कुछ प्रमुख सुझाव

(1) खाद उर्वरक और खली को एक साथ पेस्ट बनाकर देने से अच्छे परिणाम मिलते हैं ।
(2) अच्छे उत्पादन के लिये प्रतिमाह जाल चलाकर मछली की बढ़त देखना और आहार निर्धारण करना अति आवश्यक है ।
(3) तालाब के वन्धो पर वृक्ष नहीं लगाना चाहिये, उसकी छाया तालाब पर पड़ती है, प्राकृतिक भोजन बनने सूर्य के प्रकाश न रहने पर रुकावट पड़ती है और मांसाहारी पक्षियों का बसेरा भी बन जाता है ।
(4) सूर्योदय से पूर्व तालाब निरीक्षण प्रतिदिन करना चाहिये ।

(5) तालाब में मछलियों को आहार देने से कम से कम आधा घन्टे पहले ग्रास कार्प के लिये शैवाल आदि तालाब के दूसरे किनारे पर डालना चाहिये ।

(6) सुबह बादल रहने पर या पानी गन्दा हो जाने पर मछलियाँ उपर आ जाती हैं । उस समय ताजा पानी डालना चाहिये । चूने और पौटै. परमैगनेट के साथ का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए । आहार और शैवाल डालना बन्द कर देना चाहिए । पानी को किनारे से मग द्वारा उपर उछालना चाहिये ताकि वायुमण्डल की ऑक्सीजन पानी में घुल जाय ।

अन्त में उत्साही मत्स्य पालकों को यह संदेश है कि उपर लिखी हुई विधि से यदि वे मत्स्य पालन करते है तो निःसंदेह अच्छा उत्पादन प्राप्त होगा, वह आपकी आर्थिक दशा सुधारेगा और राष्ट्र अतिरिक्त खाद्यान का स्त्रोत बनेगा ।

अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी एवं स्वास्थ्य प्रबंधन-विस्तृत चर्चा

मानस कुमार दास एवं रंजना सिन्हा
केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता - 700120

भारत जैसे कई घनी आबादी वाले देशों में मत्स्य पालन, आजीविका निर्वाह करने के कई महत्वपूर्ण साधनों में से एक है । मछली में रोगों के प्रादुर्भाव की सूचनाएँ इस दशक के शुरूआत से ही प्राप्त की जाती रही हैं किन्तु वर्तमान में मत्स्य पालन पद्धति में तीव्रता के साथ-साथ मछलियों के अधिक रोगग्रस्त होने की संभावनाएँ भी बढ़ गई हैं । इसलिए मछलियों का रोग निदान तथा स्वास्थ्य प्रबंधन अब मछली पालन पद्धति का एक अभिन्न अंग बन गया है । अधिक मत्स्य उत्पादन हेतु उन्नत तकनीकी प्रणाली अपनाने की होड़ लगी हुई है, जिसमें सघन संचय दर, अधिकतम रासायनिक व कार्बनिक खादों का प्रयोग और अनवरत सम्पूरक आहार का प्रयोग करने से पानी की गुणवत्ता बिगड़ जाती है, जिससे मछलियों के रोगग्रस्त होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। मछली में रोगों का प्रादुर्भाव मत्स्य पालन के विकास में एक बड़ा अवरोध है ।

मछलियों के जलीय निवास एवं स्थिति

मछलियाँ भी अन्य प्राणियों के सामान प्रतिकूल वातावरण में रोगग्रस्त हो जाती हैं। अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी के मुख्यतः स्त्रोत हैं नदियाँ और सहधाराएँ, तालाब, जलाशय। यहाँ का पर्यावरण उनके अनुकूल रहना अत्यंत आवश्यक है । पानी का आसवन, बालू का अत्यधिक जमाव, शहरी प्रदूषित जल, फैक्ट्रियों के स्रावित दूषित जल या खेतों से प्रवाहित कीटनाशियों से युक्त प्रदूषित जल नदियों में जाकर गिरता है जिससे मछलियों के आवास पर इनका विपरीत असर पड़ता है जिसके फलस्वरूप अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी की मृत्यु दर बढ़ती जा रही है और उत्पादन क्षमता में कमी आती जा रही है । उदाहरण स्वरूप देश के विभिन्न भागों में मछलियों की मृत्यु दर निम्नलिखित है :-

तालिका-1 : भारत में मछलियों की सामुहिक मृत्यु दर

स्थान	सन्	मूल कारण	स्त्रोत
कालूकारिया ताल, अहमदाबाद	1982	घरेलू बहिस्त्राव	वारानडानी एवं सहयोगी-(1)
नैनी ताल, नैनीताल गोमती नदी, लखनऊ	1980-81 1983, 1984, 1986	घरेलू बहिस्त्राव महानिर्माणशाला का स्त्राव	जोशी-(2) जोशी-(2)
चाहार नदी, अलवेज	1974	कीटनाशी	जोशी-(2)
तुंगभद्रा नदी, हरिहर	1984	पाली फाइबर, रेयान	मूर्थि- (3)
गंगा नदी, मूगेर, बिहार	1968	तेलशोधक कारखाना	सुन्दरेसन एवं सहयोगी-(4)
अदयार, मद्रास	1981-82	चर्मशिल्पशाला	जोशी-(2)
रिहन्द जलाशय	1970, 78, 80	रासायनिक कारखाना एवं उष्मित प्रवाह	अरोरा एवं सहयोगी-(5) पानवार एवं सहयोगी-(6) चन्द्रा एवं सहयोगी-(7)
गोमती नदी, त्रिपुरा	1988	एपीजुएटिक अलसरेटिव सिन्ड्रोम (ई.यू.एस.)	दास एवं दास-(8)
शेला नदी, मेघालया चुरनी नदी, पश्चिम बंगाल	1988 1983, 1997	(ई.यू.एस.) चीनी मिल का स्त्राव	दास एवं दास-(8) घोष एवं कोनार (1983)-(9) कोनार एवं सहयोगी (1997)-(10)
यमुना नदी, हरियाणा	1999	चीनी मिल के स्त्राव के कारण अचानक गंदलापन का बढ़ना	एनॉन-(11)
बूढ़ी गंडक नदी, बिहार	2000	चीनी मिल का स्त्राव	आलम एवं सहयोगी-(12)

भारत में जल आच्छादित मात्स्यिकी के काफी क्षेत्र हैं जिनमें आवांछित अपतृणों का जमाव एक विशेष समस्या है । अत्यधिक अपतृण का जमाव से जल में उपलब्ध प्राकृतिक मत्स्याहार के लिए वांछित पोषण नहीं मिल पाता और जल की गुणवत्ता प्रभावित होती है । सुगुणन एवं भट्टाचार्या-(13) । जल में मछली को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं :-

पानी की गुणवत्ता, तापमान, पी.एच., आक्सीजन व कार्बनडाईआक्साइड, जल में घुलनशील आक्सीजन व कार्बनडाईक्साइड के बीच का संतुलन मत्स्य पालन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होता है । इन सभी कारकों के स्तर में प्रतिकूलता मछली के लिए घातक होती है तालिका-2 ।

तालिका-2 स्रावित आर्द क्षेत्र में मछली हेतु जल के प्रमुख कारकों का परिमाप
(औसत परिमाप) (दास-14)

कारक	माली गादा भेरी	सामीति बील	काथोरे भेरी	त्रिपले भेरी	आगामुरा भेरी	बाराचक भेरी
स्वच्छता (सेमी.)	17	21	15	18	25	20
पी.एच.	8.6	8.5	8.6	9.0	8.3	8.3
क्षारीयता (मिग्रा/ली.)	125	126	127	147	127	114
कठोरता (मिग्रा/ली.)	3,000	3,000	2,800	3,200	11,000	2,300
अमोनिया (मिग्रा/ली)	1.1	0.5	0.3	0.2	0.1	0.4
लवणता (पी.पी.टी.)	9.0	10.2	6.4	7.0	9.0	10.0
घुलित आक्सीजन की मात्रा (मिग्रा.ली.घं.)	-	1.8	-	-	-	-

जल की गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए गानारापोटा बील जो एक प्रतिकात्मक आर्द्र क्षेत्र है, उनमें घुलित आक्सीजन का तल 3.5/ली.रात्री 10 बजे से और घट जाता है जो कि वहाँ के आवासीय मछलियों में एक प्रकार का वातावरणी तनाव उत्पन्न करता है। इसके अलावा,अनायनिक अमोनिया का तल भी 0.05-0.25 मि.ग्रा./ली. होता है जो कि पहले से ही वातावरणीय तनाव का कारक है । इस प्रकार वहाँ की मछलियों का उत्पादन सामान्य से घटकर केवल 550 कि.ग्रा./हे. रह गया है । रात्रि में कुछ घंटों के लिए पानी में घुलित आक्सीजन की मात्रा, सूक्ष्म जीवाणुओं के उपभोग के कारण घटकर सामान्य से 1.8 मिली.ग्रा/घं. हो जाती है, मछलियों के लिए वातावरणीय तनाव का एक कारक हैं। इसके अलावा पानी में अनायनित अमोनिया की मात्रा भी बढ़ जाती है ।

मत्स्य पालन में नई प्रणाली का प्रभाव

बहुत से परजीवी जो वातावरणीय परितंत्र में प्रत्यक्ष रूप से मछलियों को हानि पहँचातें हैं वो रोगजनित कारक के रूप में मछलियों में गंभीर इपीजोइटिक का कारक होते हैं । *इरगैसिल* नामक परजीवी द्वारा फैलाया जाने वाला यह संक्रमण *इरगैसिलोसिस* के नाम से जाना जाता है । यह मछलियों में खासकर भेरी में पाया जाता है । यह मछलियों में बढ़ने की क्षमता को रोकता है जिसके फलस्वरूप मछलियों में अन्य शारीरिक क्रियाएँ भी असामान्य हो जाती हैं और मछलियाँ मरने लगती हैं दास-(14) ।

विदेशी मछलियों की भूमिका का प्रभाव

भारत में विदेशी कार्प मछलियों की उत्पादन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन मछलियों में उत्पन्न होने वाली बीमारियों के गंभीरता को परिलक्षित नहीं किया गया है । इस देश में बहुत से बाह्य परिवेशी रोगग्रस्त मछलियाँ पहले से ही हैं,जो निम्न हैं-

तालिका-3 भारत में पाये जाने वाले वाह्य परिजीवियों की सूची

जाति	परपोशी	लेख प्रमाण
ट्राइ पारसिपेला कोपिओबा	साइप्रीनल कारपिओ	दास व हलदार (16)
टी-अबटुसे	सी.आइडेला	दास व हलदार (16)
ड्राइकोडिना निग्रा	ओ.मोजोम्बीकस	मुखर्जी व हलदार (17)
टी-रेटीकुलेटा	एच.मोलीट्रीक्स	मिश्रा व दास (18)
निओइर गैसिलस जैपोनिकस	सी.आइडेला	दास व हलदार (19)

भारत के मछलियों में रोग का घटनाक्रम

एक सर्वे के अनुसार, पानी में मछलियों की मृत्यु कम ही पायी जाती है । हमारे देश में अपर्याप्त सूचना के कारण मछलियों में स्वास्थ्य प्रबंधन के प्रचलन को एक ढाँचा दिया गया है । किन्तु सबसे पहले ई.यू.एस. रोग का जीवित अवस्था में पाया जाना और उसका रोकथाम एवं सही दिशा में निर्देशन दास (20) ने किया था । मछलियों का मरना,मछलियों में पाये जाने वाले रोग का एक हिस्सा ही नहीं है, इसके साथ-साथ अवस्था और शारीरिक विकृति उनके भार में कमी और कमजोर वृद्धि का एक हिस्सा है। इसी कारण मछलियाँ जीवित नहीं रह पाती और यही कारक मत्स्य पालकों को नुकसान पहुँचाता है । वास्तव में ये कारक ही मछलियों के जीवित न रहने के इसी कारण ही मत्स्य पालकों के नुकसान को दर्शाता है । तालिका-4 दास (14)

तालिका-4 : कतला कतला पर मिक्सोबोलियासिस का प्रभाव

विस्तृत भण्डारण एवं संग्रह (0.04 हेक्टेयर) का तालाब

जाति	कतला कतला		एल.रोहिता	सी.म्रीगाला	एच.मोलिट्रिस	सी.आई -डिला
संख्या	160		120	100	10	10
जाति प्रमाण	4		3	2.5	0.25	0.25
औसत भार (ग्राम)	50		20	20	30	25
सं.संग्रह	20	105	105	85	9	7
आखिरी औ.भार (ग्राम)	240	650	500	360	620	710
अतिजीवन	78.1		78.5	85	90	70

मछलियों में दबाव के कारण रोग निदान

मछलियों में दबाव के कारण कई शरीर विज्ञान शास्त्र संबंधी परिवर्तन होते हैं ये परिवर्तन मुख्य रूप से जैविक, रासायनिक और भौतिक कारकों द्वारा होते हैं । जिससे मछलियाँ में तनाव आ सकती हैं । मछलियों के स्वास्थ्य प्रबंधन में जैविक और अजैविक दबाव कारक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । जिससे उनमें सहनशीलता की क्षमता पर एकल अथवा समुचित प्रभाव पड़ता है । बहुत सारे जैविक कारक मछलियों के स्वास्थ्य वृद्धि एवं अतिजीवन को प्रभावित करते हैं । इस प्रकार के शरीर विज्ञान शास्त्र संबंधित परिवर्तन, वातावरणीय प्रभाव के कारण मछलियों पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पड़ते हैं । वेडमेयर एवं सहयोगी (21) ।

सामान्य मछली का रूधिर संबंधी प्रोफाइल

मछलियों में वातावरणीय दबाव के स्थिति की परीक्षण के लिए सामान्य रक्त की स्थिति जानना बहुत ही आवश्यक है । इसके आधार पर सामान्य और दबावजनित मछलियों के स्वास्थ्य का परीक्षण किया जा सकता है । दास व सहयोगी (22 ,23) ने मछलियों में *एल.रोहिता* एवं *आर.रीता* के रूधिर में सामान्य दशा को स्थापित किया है । इन्होंने यह बतलाया कि यह सामान्य रक्त की दशा (कार्प एवं कैटफिश) दबावजनित मछलियों के रक्त परीक्षण में सहयोगी होगा । तालिका-5 ।

तालिका-5 : अचानक ताप परिवर्तन (28^0 से-35^0से) के कारण *एल.रोहिता* में शरीर विज्ञान शास्त्र संबंधी पैरामीटर की परिवर्तित मात्रा,दास एवं सहयोगी (26)

पैरामीटर्स	स्ट्रेस		रिकवरी			
	कंट्रोल/0 घंटा	1 घंटा	1 घंटा	3 घंटा	24 घटा	28 घंटा
हिमोग्लोबिन (ग्रा./ डीएल)	6.9 ± 0.117	7.5 ± 0.165*	7.6 ± 0.221*	7.2 ± 0.104	7.1 ± 0.081	7.0 ± 0.064
हिमोटोक्रिट	34.2 ± 0.634	38.6 ± 0.998*	365 ± 0.06*	36.0 ± 0.9233	35.9 ± 0.635	33.5 ± 1.16
ल्यूकोक्रिट	1.3 ± 0.063	1.14 ± 0.084	1.02 ± 0.089	1.03 ± 0.1022	0.95 ± 0.028	1.04 ± 0.093
प्लाजमा कॉर्टीसॉल (एनजी/एमएल)	90 ± 3.17	180 ± 9.08**	185 ± 12.19**	170 ± 11.07**	140 ± 1.22**	90 ± 4.48
प्लाजमा ग्लूकोज (एमजी/ डीएल)	95.18 ± 4.48	269.5 ± 4.75	273 ± 3.38**	230.9 ± 7.090	150.2 ± 6.34**	100.9 ± 2.95
प्लाजमा क्लोराइड (एमजी/ डीएल)	117.6 ± 1.022	102 ± 0.634**	100 ± 1.022**	102.1 ± 1.418**	108. ± 1.112**	116 ± 1.268
प्लाजमा प्रोटीन (जीएम/डीएल)	2.3 ± 0.2156	2.7 ± 0.063	2.8 ± 0.141	1.8 ± 0.181	2.2 ± 0.152	2.0 ± 0.141
प्लाजमा कोलेस्टरॉल (जीएम/डीएल)	274 ± 3.054	2.97 ± 4.634	321.5 ± 8.04**	290 ± 4.158	287 ± 2.172	285.2 ± 3.170
प्लाजमा लैक्टिक (जीएम/डीएल)	102.4 ± 2.338	122.7 ± 2.159	108.2 ± 2.675	105.3 ± 1.445	103 ± 2.675	99.1 ± 1.902
ग्लाइकोजेन (एमजी/ जीएम)						
लिवर	8.0 ± 0.288	7.0 ± 0.317	7.2 ± 0.179	7.1 ± 0.74*	6.0 ± 0.152**	5.5 ± 0.158**
मांसपेशी	4.2 ± 0.442	3.2 ± 0.213	3.0 ± 0.487*	2.5 ± 0165	3.2 ± 0.1022	4.3 ± 0.2156

एन = 10*, पी < 0.05, **पी < 0.01

मछलियों में तनाव कारक एवं उनके शरीर विज्ञान शास्त्र का प्रभाव

मछलियों में दबाव सामान्य से कम पानी की गुणवत्ता या त्रुटिपूर्ण संवर्धन प्रणाली के कारण हो सकते हैं । पानी की गुणवत्ता में कमी इसके आक्सीजन की क्षमता को घटाती है । अमोनिया का बढ़ना,कम या अधिक पी.एच. का होना, तापमान का बढ़ना ये सब दबाव के कारण है और मछलियों की वृद्धि को रोकते हैं । दास एवं उनके सहयोगियों के अध्ययन के अनुसार बहुत से अजैविक दबाव जैसे पानी में घुलित आक्सीजन का घटना, अमोनिया का बढ़ना, कम और अधिक पी.एच., तापमान का बढ़ना, दबाव के साथ-साथ मछलियों में संवेदनशील स्वास्थ्य पैरामीटर है ।

तालिका-5 यह प्रदर्शित करता है कि एल.रोहिता में जब शीघ्र तापमान का परिवर्तन होता है तब हीमैटोक्रीट, होमोग्लोबिन ग्लुकोज, क्लोराइड, कोलेस्टेरॉल, प्रोटीन, लैक्टिक एसिड, कार्टीसोल एवं वृक्क एसकार्बिक एसिड में क्या परिवर्तन होता है । तालिका यह दर्शाती है कि अचानक सह-तापमान को 28^0 से. से 35^0 से. बढ़ाने से कार्टीसोल का तल महत्वपूर्ण रूप से बढता है और एसकार्बिक एसिड का तल घटता है। इसके अलावा कोलेस्टेराल का बढ़ना, ग्लुकोज का बढ़ना, लैक्टिक एसिड का बढ़ने के साथ-साथ हिमोग्लोबिन, हाइड्रोक्लोरिक एसिड तथा प्रोटीन का तल भी बढ़ता है । क्षतिपूरक का परिणाम 72 घंटे के भीतर ही प्रारंभ होता है ।

मत्स्य पालकों के द्वारा जो तरीके अपनाये जाते हैं उनमें तीन प्रमुख हैं जैसे-हैंडलिंग, क्राउडिंग एवं ट्रांसपोर्टेशन या इन तीनों के मिश्रित तरीके ।

ये प्रभाव उत्तेजना के साथ प्रायः एडिटिव या सीनर्जेस्टिक होते हैं (उदाहरण- कम अनायित अमोनिया,घुलित आक्सीजन) । मछलियों के हीमियोस्टैकिक क्रिया पर इनके उचित मात्रा का दबाव रखा जा सकता है । वेडमेयर (21) । मछलियों को संग्रहित करने के बाद की मृत्यु का यह एक उचित कारण हो सकता है ।

रोग निवारण या रोकथाम

स्वास्थ्य प्रबन्धन,मछली पालन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण पहलू है । मछली पालन,संवर्धित मछलियों के स्वास्थ्य रक्षा हेतु तालाबों में रोगों का रोकथाम बहुत आवश्यक है जो उत्तम किस्म की पैदावार के लिए निम्नवत किये जा सकते हैं ।

मछलियों में रोगोपचार के नियम अधिकतर अन्य प्राणियों के समान ही होते हैं, लेकिन मछली के जलीय वातावरण में रहने व उसकी शारीरिक क्षमता अन्य प्राणियों से भिन्न होने के कारण दवाओं का प्रयोग अथवा वातावरणीय दबाव का ध्यान कुछ सीमाओं के भीतर रह कर ही करना पड़ता है ।

वातावरणीय दबाव के प्रभाव से मछलियों को रोगमुक्त रखने के लिए जल की गुणवत्ता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । कुछ जलगुणकारक जैसे-पूर्ण क्षारीयता, पी.एच., तापमान असामान्य होने से मछलियों की शारीरिक क्षमता को क्षीण कर देते हैं। इसलिए सबसे पहले इनके मान का पता लगाना आवश्यक होता है । इसके अलावा हैंडलिंग, क्राउडिंग और ट्रांसपोर्टेशन का तरीका सही न होने से भी मछलियाँ अति दबाव में आकर रोगग्रस्त हो जाती है, इसलिए मछलियों का सही रख-रखाव जरूरी है ।

संदर्भ

1. वारानडानी, एन.एस., एण्ड पी.पी.ओझा. 1985. फिश किल ऐट कंकरिया लेक-ए केस स्टडी. पे. 93-97. इन : प्रोसिडिंग ऑफ द नेशनल सेमीनार ऑन पाल्यूशन कंट्रोल एण्ड इन्वायरमेंटल मैनेजमेण्ट, नेशनल इन्वायरमेंटल इंजीनियरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट, नागपुर, 17-19 मार्च.

2. जोशी, एच.सी., 1994. इन्वायरमेंटल कांस्ट्रेन्ट्स इन मैनेजमेंट ऑफ फिशरीज इन इनलैंड ओपेन वाटर सिस्टम इन इंडिया.पे.8-19. इन एम.के.चक्रवर्ती (इडीएस.) कांट्रीब्यूशन टू द फिशरीज ऑफ इनलैंड ओपेन वाटर सिस्टम इन इंडिया. इनलैंड फिशरीज सोसाइटी ऑफ इंडिया .

3. मूर्थि, सी.के., 1984. ए फ्यू एसपेक्ट्स ऑफ फिश व्हील इन तुंगभद्रा रिवर दरवाड़ डिस्ट्रिक्ट ड्यूरिंग फरवरी, 1984. रिपोर्ट ऑफ द डिपार्टमेंट ऑफ फिशरीज, दरवाड़, 6 पे.

4. सुन्दरेसन, बी.बी., पी.व्ही.आर. सुब्रह्मणयम एण्ड ए.डी.भाईड, 1983, एन ओवरव्यू ऑफ टॉक्सिक एण्ड हेजर्ड्स वेस्ट इन इंडिया, यूएनईपी इंडस्ट्री एण्ड इन्वायरमेंट (स्पेशल इश्यू) पे. 70-73.

5. अरोरा, एच.सी., एस.एन.चट्टोपाध्याय एण्ड यू.पी.शर्मा, 1970. ए प्रोबेबल ऑकरेन्स ऑफ फिश मार्टिलिटी इन रेनूसागर रेनूकूट ड्यू टू क्लोरिन बियरिंग वेस्टेज. इन्वायरन. हेल्थ, 12 : 260-272 .

6. पानवार,आर.एस., के.चन्द्रा,डी.एन.सिंह,आर.एन.सेठ एण्ड डी.कपूर,1979. स्टडीज ऑन द पाल्यूशन इफेक्ट ऑफ इंडस्ट्रियल वेस्टेज ऑन रिहन्द रिजरवायर इकोसिस्टम.पे. 465-479. इन : आर.सी.दलेला,यू.एच. मनी,आर.एच.वर्मा एण्ड आर. के. त्यागी (ईडीएस.) . प्रोसिडिंग ऑफ द सिम्पोजियम ऑन एसेसमेंट ऑफ इन्वायरमेंटल पॉल्यूशन. एकेडेमी ऑफ इन्वायरमेंटल बॉयोलॉजी,औरंगाबाद,इंडिया.

7. के.चन्द्रा.,डी.एन.सिंह एण्ड आर.एस.पानवार,1985. पॉसिबल पॉल्यूशन प्रॉबल्मस प्रॉम वेस्टेज ऑफ थर्मल पॉवर प्लॉन्ट इन इंडिया-ए केस स्टडी ऑफ रिहन्द रिजरवायरमिर्जापुर,यू.पी.पे.283-294. इन : आर.सी. दलेला,यू.एच.मनी,एस.आर. वर्मा एण्ड आर.के.त्यागी.(ईडीएस) प्रोसिडिंग ऑफ द सिम्पोजिंग ऑन एसेसमेंट ऑफ इन्वायर मेंटलपॉल्यूशन. एकेडेमी ऑफ इन्वायरमेंटल बॉयलॉजी,औरंगाबाद, इंडिया.

8. दास,एम.के. एण्ड आर.के.दास,1993. ए रिव्यू ऑफ द फिश डिजिज इपीजोटिक अल्सरेटिव सिन्ड्रोम इन इंडिया. इन्वायरॉन,इको. 11 : 134-148.

9. टी.के.घोष एण्ड एस.के. कोनार,1993. मॉस मॉर्टिलिटी इन फिशइन द रिवर माथाभंगाचुरनी, वेस्ट बंगाल. इन्वायरॉन,इको. 11: 833-838.

10. कोनार,एस.के.1979. हेजर्डस ऑफ वाटर पॉल्यूशन बाई पेस्टिसाइड्स.सिम्प. इन्वायरॉन. पॉल्यूशन एण्ड टॉक्सीकोलॉजी. पे. 83-94.

11. अनॉन.1999.एनुअल रिपोर्ट,सेन्ट्रल इनलैंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीट्यूट,बैरकपोर.

12. आलम,एन.एस.उमा एण्ड एच.एम.वाई. हुसेन,2001. इम्पेक्ट ऑफ सुगर मिल इफ्लूएन्ट ऑन द फिश फना ऑफ बुढ़ी गंडक रिवर नियर समस्तीपुर टाउन,नार्थ बिहार,नेशनल सेमीनार ऑन फिश हेल्थ एण्ड मैनेजमेंट,आर्गेनाइज्ड बाई द डिपार्टमेंट ऑफ जूलॉजी,एल.एन. मिथिला यूनिवर्सिटी,दरभंगा, 25-27 मार्च
(आब्सट्रैक्ट).

13. सुगुणन,वी.वी.एण्ड भट्टाचार्या,2000. इकोलॉजी एण्ड फिशरीज ऑफ बिल्स इन आसाम.सेन्ट्रल इनलैंड फिशरीज रिसर्च इंस्टीट्टयूट (सीआईएफआरआई). बुलेटिन नं.104 ,64 पे.

14. दास,एम.के.1999. इम्पैक्ट ऑफ हैबिटेट क्वालिटी एवं डिजीज ऑन फिश प्रोडक्शन इन इनलैंड वाटर बॉडीज. जे. इनलैंड फिश.सो.इंडिया, 31: 28-30.

15. पटनायक,ए.के.1990. ऐन एक्शन प्लॉन फॉर द डेवलेपमेंट ऑफ कलकत्ता सिवेज फिड पॉन्ड्स सिस्टम. इन : वेस्ट वाटर फिड एक्वाकल्चर.पे. 223-235. इन : पी. एडवार्ड्स एण्ड आर.एस.वी.पुलीन.(ईडीएस.). प्रोसिडिंग ऑफ द इंटरनेशनल सेमीनार ऑन वेस्ट वाटर रिक्लेमेशन एण्ड रियूज फॉर एक्वाकल्चर,कलकत्ता,इंडिया,6-9 दिसम्बर,1988. आईसीएलएआरएम कॉन्ट्रीब्यूशन नं.684.

16. दास,एम.के. एण्ड हलदार डी.पी.1987. अरसिओलेरिड सिलिएट्स ऑफ द जिनस ट्राइपर्टिला इनवेडिंग गिल्स ऑफ फ्रेश वाटर कल्चर्ड् कार्प्स इन इंडिया. आर्क. प्रोटिसटेंक.,134 : 169-178 .

17. मुखर्जी,एम.एण्ड हलदार,डी.पी.,1982. आब्जर्वेशन ऑन द अरसिओलेरिड सिलिएट्स ऑफ द जनेरा ट्राइकोडिना एण्ड ट्राइपार्टिला इन फ्रेशवाटर टेलिओस्ट.आर्क. प्रोटिसटेंक.,126 : 419-429.

18. मिश्रा,आर.के.एण्ड दास,एम.के. 1995. अरसिओलेरिड सिलिएट्स ट्राइकोडिना रेटिकुलेटा इनफेस्टिंग गिल्स ऑफ कतला कतला इन इंडिया.जे. इनलैंड फिश. सो. इंडिया, 25 (2) : 161-167.

19. दास,एम.के. एण्ड हल्दार,डी.1988. पारासिटोफाना ऑफ कल्चर्ड् इक्जोटिक कार्प इन इंडिया. इट्स बायोइकोलॉजिकल सिग्निफिकेन्स. वर्कस. ऑन इक्जॉट. स्पे. इन इंडिया. एशियन फिशरिज सोसाइटी,25-26 अप्रिल : 39 पे.

20. दास, एम.के. 2002. सोशल एण्ड इकोनॉमिक्स इम्पेक्ट ऑफ डिजिज इन इनलैंड ओपेन-वाटर एण्ड कल्चर बेस फिशरीज इन इंडिया.पे. 334-334. इन : जे.आर.आर्थर,एम.जे. फिलिप्स,आर.पी.सुबासिंघा,एम.बी. रियन्टेस्ड् एण्ड आई. एच. मेकरॉक. (ईडीएस.) प्राइमरी एक्वेटिक एनिमल हेल्थ केयर इन रूरल स्माल स्केल,एक्वाकल्चर डेवलपमेंट.एफ ए ओ फिश. टेक.पे.नं.406 .

21. वेडमेयर,जी.ए. मेकले डी.जे. एण्ड गोडिकर सी.पी.,1984. एसेसिंग द टॉलरेन्स ऑफ फिश एण्ड फिश पॉपुलेशन टू इन्वायरमेंटल स्ट्रेस : द प्रॉब्लम्स एण्ड मेथड्स ऑफ मॉनीटरिंग.पे.163-195 इन वी. डब्ल्यू कार्न्स,पी.बी. हॉडसन एण्ड जे.ओ. नरीएगु,एडीटर्स. कॅन्टागिनेन्ट इफेक्ट्स ऑन फिशरीज. विले,टोरन्टो.

22. दास,एम.के.,दास,आर.के. एण्ड मंडल,एस.के.2002. सम स्ट्रेस सेन्सिटव पैरागीटर ऑफ यंग मेजर कार्प, लेबिओ रोहिता (हेमिल्टन-बुचानन), इंडिया जे.फिश.,
49 (1) : 73-78.

23. दास,एम.के.,दता,टी.एण्ड आचार्या,सुभेन्दु 2003. मेजरमेंट ऑफ सम स्ट्रेस सेन्स्टिव फिजियोलॉजिकल पैरामीटर्स ऑफ यंग रिता रिता (हेमिल्टन). जिओबॉयोस, 30 : 78-83.

24. दता, तनुश्री, आचार्या,एस.के. 2002. सम चेंजेज इन जुवेनाइल एल. रोहिता (हेमिल्टन-बुचानन) सब्जेक्टेड टू हैंडलिंग,क्राउडिंग,क्राउडिंग एण्ड ट्रांसपोर्टेशन स्ट्रेस. प्रोक. ऑफ नेशनल सेमीनार ऑन रिसेन्ट एडवांसेज इन मॉलिकुलर फिजियोलॉजी हेल्ड ऑन 4-6 फरवरी,2002 , यूनिवर्सिटी ऑफ कल्याणी, वेस्ट बंगाल,सीपी-2, 116-120.

पूर्वी उत्तर प्रदेश में धान की खेती के साथ मत्स्य पालन की संभावनाएँ - एक सर्वेक्षण

बी.के.द्विवदी एवं अवधेश कुमार संत
बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र,
103/42 मोतीलाल नेहरू मार्ग,
इलाहाबाद - 211002

सारांश

पूर्वी उत्तर प्रदेश में वाराणसी मण्डल, नदियों एवं मत्स्य पालन के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखता है । इसके अतिरिक्त धान की खेती पानी की पूर्ण उपलब्धता के कारण काफी अच्छी होती है, जिसके फलस्वरूप खेतों में मछलियों के उत्पादन की अच्छी सम्भावना देखी जा सकती है । क्योंकि प्राकृतिक रूप से भी इन क्षेत्रों में धान की खेती के साथ-साथ मत्स्य उपलब्धता काफी पायी जाती है, जिसके आधार पर द्वितीय उत्पाद के रूप में धान की खेती के साथ मत्स्य पालन एक अति महत्वपूर्ण एवं सस्ता व्यवसाय के रूप में विकसित हो सकता है । मिर्जापुर तथा वाराणसी जनपद के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न क्षेत्रों जैसे, कोलना, घुरहूपुर, हिनौती, नरायनपुर, खजुरौल, समदपुर, जमुड़ी, भाईपुर, जमालपुर, चन्दौली, धानापुर, चकिया, शहाबगंज, कमालपुर व सकलडीहा आदि गाँवों में किसानों द्वारा यह तकनीक आसानी से अपनायी जा सकती है । चूँकि वर्षा के पानी के साथ-साथ इन क्षेत्रों में नहरों का जाल बिछा हुआ है, जिससे मत्स्य पालन की सबसे ड़ी बाधा पानी की समस्या समाप्त हो जाती है । नहर के किनारे स्थित खेतों में जल की उपलब्धता हमेशा बनी रहती है एवं खेतों का ऊपरी हिस्सा हमेशा नम रहता है, जिसके कारण धान के अतिरिक्त अन्य फसलों की खेती नहीं हो पाती है । धान के खेतों में सूक्ष्म जीवाणु एवं एजोला, स्पाइरोगाइरा, यूलोथ्रिक्स, क्लोमाइडोमोनास, आदि शैवालों की अधिकता रहती है । इसलिए मछलियों के भोजन की उपलब्धता बनी रहती है,जिसमें मुख्य रूप से, मागुर,सिंधी,पनिहा,सउरी,रोहू,कतला,नैन,टेंगरा आदि मछलियों की जातियाँ पायी जाती है। इसी के विभिन्न पहलुओं पर प्रस्तुत शोध में अध्ययन किया गया है ।

प्रस्तावना

मत्स्य उत्पादन में भारत का विश्व में चौथा स्थान है तथा एशिया में भारत दूसरे स्थान पर है । भारत उन सौभाग्यशाली देशों में से है, जिसके पास मछलियों की जैव-विविधता का भण्डार है, इसलिए इनकी उपस्थिति देश के प्रत्येक भाग में विभिन्न रूपों में पायी जाती है । उत्तर प्रदेश भी मत्स्य उत्पादन में एक उभरता हुआ राज्य है क्योंकि मत्स्य उत्पादन तथा इसके उपभोग करने वालों की संख्या में काफी वृद्धि हो रही है । इसके अतिरिक्त मुक्त व्यापार क्षेत्र से मत्स्य निर्यात की संभावनाओं का अच्छा भविष्य दिखाई दे रहा है । साथ ही जनसंख्या की दृष्टिकोण से हम विश्व परिदृश्य में द्वितीय स्थान रखते हैं, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पौष्टिक भोज्य पदार्थ उपलब्ध करना एक महत्वपूर्ण चुनौती है, जिसमें जलकृषि के उपयोग से कठिनाई को कम किया जा सकता है । आज हमारा अन्तर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन समुद्री उत्पादन से अधिक हो गया है, जो कि हमारी शक्ति का प्रतीक है । इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर प्राचीन समय से प्राकृतिक रूप से मिली तकनीक का इस्तेमाल करना चाहिए जिसमें धान की खेती के साथ-साथ् मत्स्य पालन आसानी एवं सुगमता से किया जा सकता है ।

शोध सामग्री तथा विधियाँ

प्रस्तुत शोध में जनपद मिर्जापुर तथा वाराणसी के विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण किया गया जिसमें कई मानकों को लेकर विभिन्न गाँवों में मत्स्य उत्पादन तथा विकास की संभावनाओं का सर्वेक्षण किया गया है । बायोवेद शोध संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा एक सर्वेक्षण में मिर्जापुर तथा वाराणसी जिले के सीमावर्ती गाँवों जैसे, कोलना, घुरहूपुर, हिनौती, नरायनपुर, खजुरौल, समदपुर, जमुड़ी, भाईपुर, जमालपुर, चन्दौली, धानापुर, चकिया, शहाबगंज, कमालपुर व सकलडीहा में जल की उपलब्धता,जल स्त्रोत, मृदा की जलधारण क्षमता तथा जलीय सूक्ष्म जैविकों आदि मानकों को आधार मानकर अध्ययन किया गया । इसके लिए शोध संस्थान के द्वारा तैयार की गयी मृदा परीक्षण किट के द्वारा मृदा पी.एच., विद्युत चालकता, नाइट्रेट सान्द्रता, फ्लोराइड सान्द्रता (तालिका-1) एवं अन्य कई मानकों का परीक्षण खेत में ही किया गया एवं कई परीक्षणों को खेत से लाए गए नमूनों की जाँच प्रयोगशाला में किया गया ।

तालिका-1 : जनपद मिर्जापुर तथा वाराणसी के प्रमुख क्षेत्रों में धान के फसलों के साथ मत्स्य पालन का भूमि सर्वेक्षण परिणाम ।

क्र.सं	क्षेत्र/गाँव का नाम	नाइट्रेट की सान्द्रता मिग्रा./ली.	बैधुत चालकता मिली.म्होश/सेमी.	फ्लोराइड की मात्रा मिग्रा./ली.	लोहा मिग्रा./ली.	पी.एच.	कार्बनिक पदार्थ (प्रतिशत)	जलधारण क्षमता (प्रतिशत)
1.	कोलना*	36	0.8	0.8	860	6.8	0.7	45.0
2.	धुरहूपुर*	32	0.76	1.2	850	7.2	0.5	40.0
3.	हिनौती*	38	0.9	0.9	880	7.3	0.6	55.0
4.	नरायनपुर*	42	1.1	1.1	920	7.1	0.6	58.0
5.	खजुरौल*	37	0.6	0.7	790	6.8	0.5	65.0
6.	समदपुर*	38	0.9	0.3	860	7.2	0.7	60.0
7.	जमुड़ी*	43	0.65	0.6	880	6.9	0.6	48.0
8.	भाईपुर*	41	0.76	1.3	920	6.5	0.7	52.0
9.	जमालपुर*	38	0.6	1.2	960	7.0	0.6	68.0
10.	चन्दौली**	43	0.5	1.2	930	6.5	0.5	65.0
11.	घानापुर**	41	0.9	0.5	890	7.2	0.6	62.0
12.	चकिया**	36	0.56	0.8	800	6.5	0.5	56.0
13.	शहाबगंज**	37	0.9	1.2	910	7.0	0.7	46.0
14.	कमालपुर**	24	0.6	0.7	870	7.2	0.6	55.0
15.	सकलडीहा**	41	0.7	1.3	830	6.5	0.5	48.0

* जनपद मिर्जापुर के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र ।

** जनपद वाराणसी के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र ।

परिणाम एवं विवेचना

सर्वेक्षण से यह पाया गया कि अधिकांश स्थानों की मृदा उत्तम गुणवत्ता की है । इसके आलावा किसानों के अपने खुद का विचार यह है कि धान की फसल के साथ मत्स्य पालन का व्यवसाय काफी प्राचीन है । लोगों का कहना था काफी समय पहले भी जब बरसात शुरू होती थी और खेतों में पानी भरा रहता था तो उसमें मछलियाँ, तालाबों, नहरों व अन्य स्त्रोतों से आकर रहने लगती थी, जिनको पकड़कर आहार के रूप में उपयोग करते थे । इस मौसम में लोगों को मछली का स्वादिष्ट भोजन काफी अच्छा व आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है । क्योंकि बरसात होने के कारण काम धन्धे भी बन्द रहते हैं जिसके कारण आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहती, जिसमें मछली का शिकार अच्छा वैकल्पिक रोजगार है । किसानों के द्वारा पता चला कि जैसे-जैसे खेतों से पानी घटता जाता है मछलियाँ भी पानी के साथ-साथ निचले क्षेत्रों जैसे-तालाब पोखरों व झीलों में चली जाती हैं । लेकिन कई किसान धान की फसल पकने तक खेत की मेड़ बन्दी करके उसमें पानी की पर्याप्त मात्रा बनाये रखते हैं, जिससे खेतों की मेड़ में मछलियाँ की उपलब्धता काफी अच्छी हो जाती है, जिसको पकड़कर भोजन करते हैं । इसके उपयोग से ग्रामीण क्षेत्रों के

लोगों में कुपोषण जैसी भयंकर समस्या का निदान भी होता है । चूँकि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलायें भी मछली का सेवन करती है । इसलिए उनमें लौह तथा अन्य तत्वों की कमी नहीं हो पाती । इन सर्वेक्षणों का मूल आधार धान के फसलोत्पादन करने वाले गाँवों के लोगों को धान की खेती के साथ निचले क्षेत्रों में मत्स्य पालन की संभावनाओं को खोजना एवं विकसित करना था जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में काफी संभावनाएँ देखी गयी क्योंकि मिर्जापुर, वाराणसी, गाजीपुर, जौनपुर तथा आजमगढ़ जिलों के प्रमुख क्षेत्रों में जल स्त्रोतों एवं जलाशयों का जाल बिछा हुआ है, जिससे लोगों द्वारा धान के साथ मत्स्य पालन का पारम्परिक व्यवसाय किया जा रहा है । सर्वेक्षण में एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह दिखाई दिया कि इन क्षेत्रों की भूमि की जलधारण क्षमता काफी उच्चस्तरीय (तालिका-1) है, जिससे बार-बार सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती एवं खेतों में पानी काफी दिनों तक स्थिर रहता है । खेतों में पर्याप्त जल होने के कारण नाइट्रोजन स्थिरीकरण शैवाल, एजोला तथा अन्य जीवाणु आदि के कारण खेत में धान की फसल भी अच्छी होती है, एवं मिट्टी का रंग काला एवं भूरा बना रहता है ।

कृतज्ञता ज्ञापन

लेखक गण जनपद मिर्जापुर तथा वाराणसी के अन्तर्गत आने वाले प्रमुख क्षेत्रों के ग्रामसभा अध्यक्ष श्री विजय कुमार सिंह, श्री राम नरेश, श्री विजय लाल पूर्व प्रधान, श्री केदार पाल एवं श्री संतोष कुमार 'तकनीकी पर्यवेक्षक' सारनाथ, वाराणसी आदि लोगों को सर्वेक्षण के दौरान महत्वपूर्ण सहयोग के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं ।

संदर्भ

1. सेठ,आर.एन.तथा मिश्रा,अरविन्द : उत्तर प्रदेश में मत्स्य पालन के विकास की संभावनाएँ एवं बाधाएँ,सारांश 202, 6वीं भारतीय कृषि वैज्ञानिक एवं कृषक अधिवेशन,21-22 फरवरी,2004 ।
2. मिश्र,अरविन्द तथा द्विवेदी,बी.के : मत्स्य पालन की स्वदेशी प्रजाति बहुल उपज प्रणालीः एक नई प्रविधि,विज्ञान परिषद,अनुसंधान पत्रिका,अक्टूबर 2003,अंक 46 (4) : 355-359 ।
3. मिश्र,अरविन्द तथा द्विवेदी,बृजेशकांन्त : मत्स्य व्यवसाय का प्रसार : वर्तमान परिदृश्य,सारांश,भारतीय कृषि वैज्ञानिकों एवं कृषकों का अधिवेशन 2001,आयोजक बायोवेद रिसर्च सोसाइटी,इलाहाबाद ।
4. पाण्डेय,गोपाल तथा पन्त हेमलता : मत्स्य पालन-एक लाभकारी व्यवसाय,भू-लक्ष्मी पत्रिका,राजा दिनेश सिंह कृषि विज्ञान केन्द्र,कालाकाकर,प्रतापगढ़ ।

इलाहाबाद में मोती सम्वर्द्धन की पर्याप्त सम्भावनायें

बृजेशकान्त द्विवेदी, रमेश चन्द्र पाण्डेय एवं रूचि लोगानी
बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र,
103/42, मोतीलाल नेहरू मार्ग, इलाहाबाद

सारांश

मोती सम्वर्द्धन के लिये बायोवेद शोध फार्म पर इलाहाबाद जनपद के कैथापुर, शाहीपुर, हरीपुर, मर्रो, बन्दी पट्टी, जगदीशपुर, कटहरा, नयापुर तथा सियाडीह ग्रामीण क्षेत्रों के तालाबों से *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* व *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* जातियों की सीपियों को एकत्र किया गया । जुलाई 2003 में *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* की 1650 तथा *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की कुल 2214 सीपियाँ केन्द्रक संस्थापन के लिये प्रयुक्त हुईं । एक वर्ष पश्चात् जुलाई 2004 में *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* की 1223 सीपियाँ एवं *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की 1543 सीपियों में क्रमशः 76.14 तथा 69.96 प्रतिशत मोती संवर्द्धन का कार्य सफल रहा । इसी प्रकार अगस्त 2003 में केन्द्रक संस्थापन के लिये प्रयुक्त लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस की 1200 तथा *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की 1656 केन्द्रक संस्थापित सीपियों में क्रमशः 875 तथा 1212 सीपियों में मोती निर्माण हो सका जिनकी सार्थक सफलता 72.5 तथा 73.18 प्रतिशत रही । बायोवेद शोध फार्म पर ईंट के बने टैंक में एकत्रित सादे जल में अल्प पोषण की स्थिति में भी मोंती संवर्द्धन का कार्य सफल हो सका । विपरीत परिस्थितियों में सीपियों द्वारा मोती निर्माण तथा उत्तर जीविता एक चमत्कारी सफलता है ।

प्राचीनकाल से ही भारतीयों को सीप में मोती निर्माण के संबंध में ज्ञान था । भारतीय जनमानस में मोती निर्माण को लेकर अनेक लोक गाथायें प्रचलित रहीं । वाराहमिहिर जैसे सुप्रख्यात गणितज्ञ ने भी मुक्ता रत्नशास्त्र के विभिन्न पहलुओं पर सविस्तार प्रकाश डाला है । उत्पला परिमाल के अनुसार 22 किस्मों के बहुमूल्य रत्नों में हीरे के बाद मोती का स्थान आता है । संभवतः प्राचीन दर्शनशास्त्री मोती बनाने के रहस्य से चिरपरिचित थे । विष्णु पुराण में मोती के गठन के बारे में निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया गया है -

स्वात्यां स्थिते रवौ मेघे ये मुक्ताः जल विन्दवः ।
ते शिर्णा शुक्ताभि पीताः जायन्ते निर्मली त्विषः ।।

अर्थात् स्वाति नक्षत्र में सूर्यदेव के प्रवेश के क्षण वर्षा की बूँदें सीप के खोल में प्रवेश करके मोती का रूप धारण कर लेती हैं । प्राकृतिक रूप से बनी यह मुक्ता स्वच्छ, श्वेत तथा सर्वोत्तम होती है ।

चीन में 12वीं शताब्दी में सादे पानी के सीपों को बुद्ध की आकृति पर मोती की परत चढ़ाने के लिये प्रयोग किया गया था । जापानियों ने 1863 में फफोला मोतियों तथा 1907 में गोलाकार मोतियों का उत्पादन करके मोती निर्माण के गंभीर रहस्य को जनमानस के लिये आसान कर दिया । भारत में सीप में मोती संवर्द्धन कार्य प्राचीन काल से होता रहा है जिसकी तुलना फारस की खाड़ी के मोतियों से की जाती है । प्रदूषण या अन्य कई प्राकृतिक कारणों से मोती की उपलब्धता पिछले कई वर्षों से घट रही है । मोती की अनुपलब्धता व घटते उत्पादन को ध्यान में रखते हुये भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्कालीन महानिदेशक, डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने 1962 में मोती संवर्द्धन के लिये वित्तीय सहयोग देने का संकल्प लिया जो केन्द्रीय समुद्र जल मत्स्य अनुसंधान संस्थान के तत्कालीन निदेशक डॉ. एस. जेड. कासिम की सक्रियता के कारण सफल रूप से क्रियान्वित हो सका । केन्द्रीय मीठा जल जीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर के तत्कालीन निदेशक डॉ. एस. अय्यप्पन के दिशा निर्देशन में सादे जल में मोती पालन का कार्य दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति के साथ प्रारंभ हुआ । इस कार्य में डॉ. पी. वी. देहादराय, उपमहानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् , नई दिल्ली ने संरचनात्मक सहयोग कर तीव्रता प्रदान की । कालान्तर में सादे जल में मोती संवर्द्धन का कार्य गति पा सका । उत्तर प्रदेश में प्रथम बार इलाहाबाद स्थित बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र कृषकों एवं भूमिहीन श्रमिकों की आय बढ़ाने के लिये प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन के माध्यम से मोती संवर्द्धन की दिशा में अग्रसर है ।

क्रियाविधि - मोती पालन को सफल ढंग से क्रियान्वित करने के लिये बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र के बायोवेद शोध फार्म में निर्मित विभिन्न जल संग्रहकों में सीपी की दो प्रमुख प्रजातियों को पहले से ही लाकर रखा गया था । सीपियों को समूह में रखने से उनमें भोजन के प्रति संघर्ष बढ़ने से शारीरिक क्षीणता बढ़ती है जिससे संवर्द्धित मोती पालन के लिये शल्य कार्य या केन्द्रक संस्थापन कार्य सुविधापूर्वक सम्पन्न हो जाता है । *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* व *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* दोनों जातियाँ मोती संवर्द्धन के लिये उपयुक्त हैं । केन्द्रक संस्थापन का कार्य जुलाई से मार्च महीने तक सुविधाजनक रहता है इसके बाद के महीनों में गर्म वातावरण सीपियों के लिये किसी भी प्रकार से उपयुक्त नही होता । संवर्द्धित मोती उत्पादन के लिये तीन विधियों को अपनाते हैं ।

1. कपाट एवं आवरण के बीच केन्द्रक संस्थापन विधि ।
2. आवरण उत्तकों में शल्य क्रिया द्वारा केन्द्रक संस्थापन ।

3. जनन ग्रन्थि में शल्य विधि ।

मोती संवर्द्धन के लिये निम्नलिखित चरण आवश्यक होते हैं -

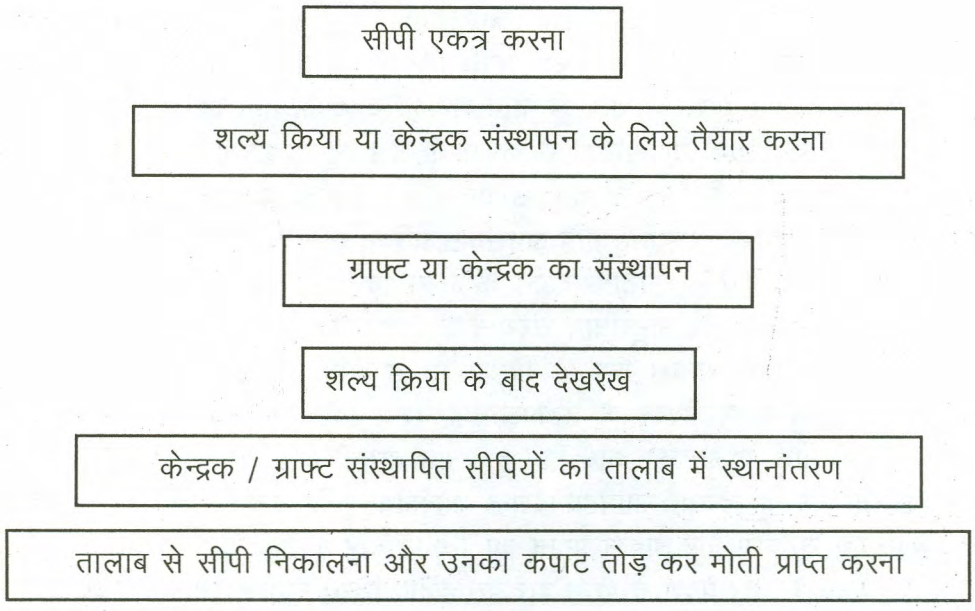

1. कपाट एवं आवरण के बीच केन्द्रक संस्थापन विधि - अर्द्ध गोल या आकृति मोती संवर्द्धन के लिये इस विधि को अपनाया जाता है । इसमें सीपी के कपाट को स्पेकुलम से खोलकर (1 से.मी.) कपाट एवं आवरण के बीच स्पेचुला से खाली जगह बनाया जाता है और इस खाली जगह में सीपी के पश्चभाग स्थित अंगों तक केन्द्रक को स्थापित कर दिया जाता है । यह विधि बहुत ही आसान है । एक साधारण साक्षर व्यक्ति भी इस विधि से सीपी में केन्द्रक डाल सकता है । इसके लिये *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* सीपी उपयुक्त होती है जिसका आकार 8-10 से.मी. होना चाहिये । इस विधि में केन्द्रक का आकार 1 से.मी. होता है । विभिन्न आकृति के एक्रेलिक पावडर से निर्मित देवी-देवता का केन्द्रक इसमें डालकर मोती के रूप में प्राप्त किया जा सकता है । इसमें केन्द्रक सीपी के अग्रभाग के आवरण को हटाकर संस्थापित किया जाता है । सीपी के दोनों अग्रभाग की तरफ केन्द्रक डालकर मोती संवर्द्धन के लिये सीपी का उपयोग किया जाता है । केन्द्रक संस्थापन के बाद इसे नाइलन की बनी जाली में डालकर फेरो सीमेंट

से बने टैंक में एक सप्ताह के लिये टाँग देते हैं । सीपी के उदर भाग को हमेशा ऊपर की तरफ रखा जाता है । प्रति दिन निरीक्षण करके मरी हुई सीपियों को बाहर फेक देते हैं । एक सप्ताह के बाद नाइलन बैग में रखी सीपियों को तालाब में तैर रहे बाँस के फ्रेम में 1 मीटर की गहराई तक जल में लटका देते हैं तथा क्लोरेला शैवाल को पोषण के लिये तालाब में डाल देते हैं । बीच-बीच में 1 वर्ष तक निरीक्षण करते रहते हैं ।

2. *आवरण उत्तकों में शल्य क्रिया द्वारा केन्द्रक संस्थापन* - यह विधि पहली विधि से जटिल है तथा शल्य क्रिया के लिये *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* या *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* जाति की सीपी को दाता व अदाता दो भागों में बाँट कर टैंक में तीन दिन तक पानी में रखते हैं ताकि कम पोषण से उनकी एडक्टर माँसपेशी कमजोर हो जाय और स्पेकुलम के कपाट खोलने और शल्य कार्य करने में सुविधा हो , इस विधि में मेण्टल उत्तकों से छोटे-छोटे ग्राफ्ट तैयार करने होते हैं जो एक ही जाति के सीपियों से तैयार किये जाते हैं । इस ग्राफ्ट को दूसरे सीपी की पेलियल स्तर के पास छोटे कोष्ठक निर्मित कर सावधानी पूर्वक आरोपित किये जाते हैं । इस प्रकार एक दाता सीपी अदाता सीपी के लिये मार दी जाती है । मारने के पश्चात् ही मेण्टल उत्तक से ग्राफ्ट तैयार किये जाते हैं । इस ग्राफ्ट को 7 से.मी. लम्बा तथा 0.5 से.मी.चौड़ा बनाया जाता है । इस ग्राफ्ट को 2 मि.मी. व्यास के एक्रेलिक पावडर से निर्मित केन्द्रक के साथ आरोपित किया जाता है । इसमें दोनों तरफ के कपाटों के नीचे बने मेण्टल उत्तक में ग्राफ्ट और केन्द्रक आरोपित किये जाते हैं ।

ग्राफ्ट और केन्द्रक आरोपण के पश्चात् प्रत्येक सीपी को 12 X 30 सें.मी. बनी नाइलोन बैग में रखकर फेरो सीमेंट से बने टैंक में एक सप्ताह के लिये उनकी उत्तरजीविता जाँचने के लिये रखते हैं । मृत सीपियों को निकालकर फेंक दिया जाता है । टैंक में तीन दिन के बाद क्लोराम फेनेकाल प्रति जैविक की 1-2 पी.पी. एक मात्रा / प्रति टैंक इसलिये डालते हैं कि सीपियों की मृत्यु कम हो और तालाब में मृत्युदर कम हो जाये । सभी सीपियों को 7 दिन के पश्चात् बाँस से बने फ्रेम में 1 मीटर तक जल में लटका देते हैं और एक वर्ष तक निरीक्षण करते रहते हैं । सीपियों के आहार के लिये क्लोरेला शैवाल का प्रयोग करते हैं ।

3. *जनन ग्रन्थि में शल्य विधि* - यह विधि अन्य दो विधियों से जटिल एवं श्रम साध्य है । इसमें शल्य कुशलता की आवश्यकता होती है । *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* या *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* जाति की सीपियों को एकत्र करके दो समूहों में बाँटकर अलग-अलग टैंक में दो-तीन दिन के लिये रख देते हैं जिसमें पोषण की कमी से उनकी एडक्टर माँसपेशी कमजोर हो जाय और स्पेकुलम से उनका उदर भाग आसानी से खुल सके । दो समूहों में रखी हुई सीपियों में एक दाता सीपी के रूप में रख लेते हैं जिनको मारकर 2-4 X 2-4 मि.मी. आकार के ग्राफ्ट तैयार किये जाते हैं और दूसरे समूह की सीपियों को अदाता के रूप में ट्रे में ले लेते हैं और शल्य

करके ग्राफ्ट और केन्द्रक आरोपित करते हैं । दाता सीपी को मारकर उसके मेण्टल उत्तक से 2-4 X 2-4 मि.मी. आकार के ग्राफ्ट तैयार कर लेते हैं । तत्पश्चात् अदाता सीपी को खोलकर धूसर रंग के जनन ग्रंथि को पहचान कर एक ऐसा चीरा लगाते हैं कि तैयार ग्राफ्ट उसमें आ जाय । ग्राफ्ट आरोपण के पश्चात् इसमें 3-6 मि.मी. व्यास का केन्द्रक भी आरोपित कर दिया जाता है । इसमें ग्राफ्ट का ऊपरी हिस्सा नीचे की तरफ तथा नीचे वाला हिस्सा ऊपर की तरफ घुमा कर केन्द्रक को स्थापित कर देते हैं । इसमें यह भी ध्यान रखा जाता है कि सीपी का आकार 8-10 से.मी. से कम न हो । बड़ी सीपियों में यह कार्य सुविधापूर्वक सम्पन्न किया जाता है ।

शल्य क्रिया करके केन्द्रक स्थापना के पश्चात् सीपियों को नाइलोन बैग में रखकर 7 दिनों के लिये फेरो सीमेन्ट टैंक में स्थानान्तरित कर देते हैं । क्लोरामफेनिकल प्रति जैविक पदार्थ की 1-2 पी.पी.एम. मात्रा प्रति टैंक डालने के पश्चात् इसे तालाब में बाँस से बने फ्रेम में 1 मी. तक जल में लटका देते हैं ।

प्रेक्षण और निष्कर्ष - सारणी 1 तथा 2 में मोती संवर्द्धन से संबंधिम आंकड़ों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि जुलाई 2003 में *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* की कुल 1650 और *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की 2214 सीपियों में से जुलाई 2004 में क्रमशः 1223 और 1549 सीपियों में ही मोती का निर्माण हो पाया । *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* की 1200 सीपियों में से मेण्टल केवेटी विधि से 914 सीपियों में, 300 सीपियों में मेण्टल उत्तक विधि से 218 सीपियों में तथा गोनाडल विधि से 150 सीपियों में से 91 में मोती का निर्माण हुआ । इस जाति की कुल 74.121/सीपियों में मोती निर्माण हुआ । इसी प्रकार *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की 1508 सीपियों में से मेण्टल केवेटी विधि से 1112, मेण्टल उत्तक विधि से 506 सीपियों में से 305 में तथा गोनाडल विधि से 200 सीपियों में 132 में मोती निर्माण सफल रहा । इस प्रकार इस जाति की 69.96 प्रतिशत सीपियों में मोती निर्माण हुआ ।

अगस्त 2003 तक *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* की 1200 सीपियों में से 965 में तथा *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की 1656 सीपियों में से 1212 में मोती निर्माण हुआ । *लेम्लीडेन्स मारजिनेलिस* की 900 सीपियों में मेण्टल केवेटी विधि से 676 में, 200 सीपियों में मेण्टल उत्तक विधि से 140 में तथा 100 सीपियों में गोनाडल विधि से 62 सीपियों में मोती निर्माण हुआ जिनकी कुल सार्थकता 72.91 प्रतिशत रही । इसी प्रकार *लेम्लीडेन्स कोरियन्स* की 1200 सीपियों में से मेण्टल केवेटी विधि से 890, 300 सीपियों में मेण्टल उत्तक विधि से 219 में तथा 156 सीपियों में गोनाडल विधि से 103 सीपियों में मोती निर्माण सफल रहा जिनकी कुल सार्थकता 73.18 प्रतिशत रही । यह निष्कर्ष के अल्गेर स्वामी व जानकी रमन के निष्कर्षों से साम्य रखता है । केन्द्रक आरोपित सीपियों को तालाब के बजाय ईंट से बने टैंकों में रखा गया था ।

उनके लिये पर्याप्त पोषण की व्यवस्था नही की गई थी । ऐसा केवल विपरीत परिस्थितियों में इनके विकास व मोती निर्माण कार्य के मूल्यांकन के लिये किया गया था । मोती संवर्द्धन के क्षेत्र में प्रथम बार इलाहाबाद में प्रेक्षण से प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सादे जल में विपरीत परिस्थितियों में सीपियों की दोनों जातियाँ मोती संवर्द्धन की सकती हैं ।

संदर्भ

एनोनिमस, 1986 । टेक्नीकल एसीस्टेन्स - पर्ल कल्चर इन बांग्लादेश - ए रिपोर्ट प्रिपेयर्ड फॉर फ्रेश वाटर पर्ल कल्चर , एफ.ए.ओ.एफ.आई./ टी.सी.पी./बी.सी.डी. 4508 - फील्ड डोक 1, पृ. सं. 52 ।

सी.आर.फॉसर, 1994 । पर्ल 94 इन्टरनेशनल पर्ल कॉनफरेन्स, होनोलुलु, हवाई, 14-19 मई । ज. शेलफिश रिस. 13(1) : 325-354 ।

के. जानकीराम, 1989 । स्टडीज ऑन कल्चर पर्ल प्रोडक्शन फ्रॉम फ्रेश वाटर मसल्स करेन्ट साइंस । 58(8) : 474-476 ।

के. जानकीराम, 1997 । फ्रेश वाटर पर्ल कल्चर इन इण्डिया, एन.ए.जी.ए. (इन्टरनेशनल सेंटर फॉर लिविंग एक्वेटिक रिसोर्सेज मैनेजमेंट) , (आई.सी.एल.ए.आर.एम.), फिलीपिन्स । 20(3,4) : 12-17 ।

के. जानकीराम, कुलदीप कुमार और गायत्री मिश्रा, 1994 । पॉसिबल युज ऑफ डिफरेन्ट ग्राफ्ट डोनर्स इन फ्रेश वाटर पर्ल मसल्स सर्जरी । ज. एक्वा.बायो. । 32 : 366-368 ।

पाटील, वी.आई. 1964 । फूड एण्ड फीडिंग इन फ्रेश वाटर मसल्स । ज.शिवाजी युनिवर्सिटी , 7(14) : 33-37 ।

सिमकिस, के. और के. वाडा, 1980 । कल्चर पर्ल्स कमर्शियलाइज्ड बायो मिनरलाइजेशन एन्डेवर, 4(1) : 32-36 ।

सुब्बा राव, एन.बी. 1989, हैंडबुक । फ्रेश वाटर मोलस्क ऑफ इण्डिया, जुलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, इण्डिया, पृ.सं. 289 ।

बी.के. द्विवेदी, 2001-2003 । डिमोन्सट्रेशन एण्ड स्टैण्डरडाइजेशन ऑफ पर्ल कल्चर टक्नोलॉजी एण्ड देन टु क्रियेट साइन्टिफिक एण्ड टेकनीकल एक्सपर्ट मैनपावर इन वीकर सेक्सन ऑफ द सोसायटी प्रोग्रेस रिपोर्ट (डी.एस.टी.) ।

बी.के. द्विवेदी, आर.सी.पाण्डेय और रूचि लोगानी, 2004 । एसेसमेन्ट ऑफ पोटेन्शियल ऑफ पर्ल कल्चर रिसोर्सेज इन इलाहाबाद । **"VI"** इण्डियन एग्रीकल्चर सोसायटी एण्ड फारमर्स कांग्रेस, 21-22 फरवरी, 2004, शोध सारांश सं. 170 ।

बी.के. द्विवेदी, आर.सी.पाण्डेय और रूचि लोगानी, 2004 । स्टैण्डरडाइजेशन ऑफ पर्ल कल्चर टक्नोलॉजी इन इलाहाबाद । **"VI"** इण्डियन एग्रीकल्चर सोसायटी एण्ड फारमर्स कांग्रेस, 21-22 फरवरी, 2004, शोध सारांश सं. 171 ।

सारणी - 1 मोती प्राप्त करने हेतु संस्थापित सीपियों का वर्षोपरान्त एकत्रीकरण

शल्य क्रिया का माह	सीपियों की प्रजाति	क्रिया विधि	संस्थापन के लिये प्रयुक्त सीपियों की संख्या	मृत सीपियों			मोती प्राप्त करने का माह	वर्ष पर्यंत मृत्यु	मोती सहित सीपियों की उत्तर जीविता	मोती उत्पादन (%)
				शल्य क्रिया के पूर्व	शल्य क्रिया के पश्चात्	तालाब में				
जुलाई 2003	ले. मार-जीनेलिस	(अ) कपाट एवं आवरण के मध्य	1200	-	24	12	जुलाई 2004	250	916	76.33
		(ब) आवरण उत्तक	300	3	6	3		70	218	72.66
		(स) जनन ग्रंथि में	150	2	5	2		50	91	60.66
	कुल		1650	5	35	17		350	1223	74.12
जुलाई 2003	ले.कोरि-एनस	(अ) कपाट एवं आवरण के मध्य	1508	-	31	15	जुलाई 2004	350	1112	73.74
		(ब) आवरण उत्तक	506	6	10	10		175	305	60.27
		(स) जनन ग्रंथि में	150	4	10	4		50	132	66.00
	कुल		2214	10	51	29		575	15490	69.96

सारणी - 2 मोती प्राप्त करने हेतु संस्थापित सीपियों का वर्षोंपरान्त एकत्रीकरण

शल्य क्रिया का माह	सीपियों की प्रजाति	क्रिया विधि	संस्थापन के लिये प्रयुक्त सीपियों की संख्या	मृत सीपियों			मोती प्राप्त करने का माह	वर्ष पर्यंत मृत्यु	मोती सहित सीपियों की उत्तर जीविता	मोती उत्पादन (%)
				शल्य क्रिया के पूर्व	शल्य क्रिया के पश्चात्	तालाब में				
अगस्त 2003	ले. मार-जीनेलिस	(अ) कपाट एवं आवरण के मध्य	900	9	9	9	अगस्त 2004	200	673	74.77
		(ब) आवरण उत्तक	200	2	4	4		50	140	70.00
		(स) जनन ग्रंथि में	100	1	5	2		30	62	62.00
	कुल		1200	12	18	15		280	875	72.91
अगस्त 2003	ले.कोरि-एनस	(अ) कपाट एवं आवरण के मध्य	1200	12	24	24	अगस्त 2004	250	890	74.16
		(ब) आवरण उत्तक	300	6	9	6		60	219	73.00
		(स) जनन ग्रंथि में	150	2	8	3		40	103	66.02
	कुल		1650	20	41	33		350	1212	73.18

मीठे जल खेती का वर्तमान स्वरूप एवं चुनौतियाँ

राधेश्याम
केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान
कौशल्यागंग, भुवनेश्वर - 757002

सारांश

भारत की कृषि नीतियों के तहत देश की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा मजबूत करने में जलकृषि की भूमिका महत्वपूर्ण है । जलकृषि पर्यावरण अनुकूल होते हुए सुपाच्य एवं सस्ता प्रोटीन प्रदान करती है । इसके अतिरिक्त यह गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन, अतिरिक्त आमदनी तथा विदेशी मुद्रा अर्जित करने में भी सहायक है । जलखेती के लिए देश में प्रकृति-प्रदत्त एवं मानव जनित विविध जल संसाधन उपलब्ध हैं । जल संसाधन व जैव-विविधता के साथ यह क्षेत्र, संसाधन एवं मत्स्य प्रजाति विशेष तकनीकियों के विकास से मत्स्य पालन की चौमुखी प्रगति का द्योतक है । देश में जलकृषि को बढ़ावा देने का अभियान वर्ष 1950 में प्रारंभ हो गया था । तभी से मत्स्य बीज उत्पादन तालाब, प्रबन्धन, मत्स्यपोषण, मत्स्यरोग निदान, मत्स्य अनुवंशिकीय अभियांत्रिकी, मृदा व जल पर्यावरण प्रबन्ध, मछली पालन प्रबन्ध तथा तकनीकी संप्रसारण पर शोध कार्यों में उल्लेखनीय प्रगति हुई । फलतः मछली उत्पादन में बहुत अधिक वृद्धि हुई । देश के सभी जल संसाधनों से कुल मत्स्य उत्पादन में वर्ष 1950 की अपेक्षा वर्ष 2001 में 727% की बढ़त हुई जबकि अन्तर्स्थलीय जल संसाधन से कुल मत्स्य उत्पादन का 72% आता है । पिछले 2 दशकों में जलीय जीव पालन से मत्स्य उत्पादन में 549% की वृद्धि हुई है। वर्तमान मत्स्यपालन से कुल उत्पादन (2.4 मिलियन टन) का 47.46% मीठाजल पालन से आता है । मत्स्यपालन विकास की व्यापकता के साथ मत्स्य बीज उत्पादन वर्ष 1986-87 में 632 मिलियन बढ़कर वर्ष 2002-03 में 18500 मिलियन हो गया । परन्तु वर्तमान में तकनीकी विकास एवं तकनीकी संप्रसारण का समीकरण असंतुलित प्रतीत होता है क्योंकि मात्र 36% मीठेजल पोखरों एवं तालाबों में मछली पालन किया जाता है । इसमें औसत उत्पादन 2.5 टन/हे./वर्ष होता है जबकि शोध केन्द्रों पर विकसित तकनीकी से 15-17टन/हे./वर्ष मत्स्य उत्पादन किया जा सकता है । इससे देश के मीठाजल में उर्ध्वाधर एवं क्षैतिज मत्स्य विकास की संभावनायें परिलक्षित होती हैं । किन्तु तालाब अवक्रमण, जल संरक्षण, मत्स्य नस्ल सुधार, जलीय जैव-विविधता, बहुफसली मत्स्य पालन, मत्स्य रोग एवं

मत्स्य पोषण प्रबन्ध, तलछटी पोषक पदार्थ प्रबन्ध, प्रवाहित एवं पुर्नप्रवाहित जल में मछली पालन,खगोलीय उष्मीकरण का प्रभाव,तकनीकी सरलीकरण एवं समन्वित मछली पालन की व्यापकता इत्यादि चुनौतियों पर विवेकपूर्ण अमल करना आवश्यक है ।

प्रस्तावना

भारत की अधिकांश आबादी ग्रामीण परिवेश में रहती है और इनके भोजन में मछली जैसा पौष्टिक एवं सुपाच्य प्रोटीन के निवेश का विषेश महत्व है । मछली में अतिपोषक प्रोटीन के अतिरिक्त विटामिन्स की बहुतायत होती है । बड़ी मछलियों के मांस में फास्फोरस अधिक तथा कैल्सियम कम होता है । किन्तु मछलियों, जो हड्डीसह खायी जाती है,में कैल्सियम पर्याप्त मात्रा में मिलता है । मछली प्रोटीन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें विटामिन बी-12 होता है जिसके सेवन से ह्रदय रोगियों को लाभ होता है । यह विटामिन किसी वनस्पति प्रोटीन में नहीं मिलता है । मछली का मांस ग्रामीण आबादी के आहार में दाल की कमी का पूरक हो सकता है । जलकृषि मत्स्य प्रोटीन के अतिरिक्त राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था, गरीबी उन्मूलन, अतिरिक्त रोजगार, आय तथा विदेशी मुद्रा अर्जन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है । इसलिए जलकृषि को खाद्य फसल एवं नकदी फसल कहना अत्योशक्ति न होगी । इसकी महत्ता को देखते हुए देश के वैज्ञानिक, योजनाकार, सलाहकार, मत्स्यपालक एवं मछुआरे मछली की उत्पादकता बढ़ाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे । यही कारण है कि देश की आजादी के बाद मात्स्यिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई है । वर्ष 1950-51 में कुल मछली उत्पादन 0.75 मिलियन टन था जो वर्ष 2001 में बढ़कर 6.20 मि.टन हो गया और आज विश्व के कुल मत्स्य उत्पादन में भारत का चौथा स्थान है । जहाँ समुद्री मात्स्यिकी स्थिरता की कगार पर है वहीं अन्तर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन में निरन्तर वृद्धि हो रही है । वर्ष 1950-51 में कुल मत्स्य उत्पादन का 29% अन्तर्स्थलीय मात्स्यिकी से मिलता था, परन्तु अब इसका योगदान 53% हो गया है । हालांकि भारत का दर्जा मत्स्य उत्पादन में चीन के बाद दूसरा है परन्तु इसका वार्षिक उत्पादन चीन के वार्षिक उत्पादन से 12 गुणा कम है क्योंकि पूरे विश्व का जलजीवपालन से उत्पादित मछली का 69% चीन से आता है और भारत से केवल 6% आता है । वर्तमान अन्तर्स्थलीय उत्पादन का लगभग 72% मत्स्य पालन से मिलता है । प्रग्रहण मात्स्यिकी की तुलना में पिछले दो दशकों में जलजीवपालन मात्स्यिकी में उल्लेखनीय प्रगति हुई है । वर्ष 1980 में कुल मत्स्य उत्पादन 0.37 मि. टन था जो 2003 में बढ़कर 2.4 मि. टन हो गया । जहाँ अन्तर्स्थलीय प्रग्रहण मात्स्यिकी से जल प्रदूषण् एवं अविवेकपूर्ण मत्स्य संदोहन के कारण मत्स्य उत्पादन में विशेष बढ़त की आशा नही है, वहीं देश की घरेलू मत्स्य खपत को पूरा करने के लिए मीठाजल जीवपालन के विशेष योगदान की संभावनायें हैं क्योंकि इसके

उर्ध्वाधर एवं क्षैतिज विकास की आशा है । वर्तमान लेख में मीठेजल का वर्तमान स्वरूप एवं संभावित चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया है ।

जलसंसाधन उपलब्धता एवं उत्पादन क्षमता

देश में प्रकृति प्रदत्त एवं मानव जनित विविध मीठाजल संसाधन उपलब्ध हैं । समय के साथ तीव्र नगरीकरण, उद्योगीकरण तथा अन्य विकास कार्यों से जहाँ शहरों के आस पास कई उथले जल संसाधनों का विलुप्तीकरण हो रहा है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में अनुपयोगी खाली जमीन में नये-नये मत्स्य प्रक्षेत्र बनाए जा रहे हैं । इसके अतिरिक्त कुछ उपेक्षित पर मत्स्य उत्पादन हेतु सक्षम जल संसाधन भी ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध हैं जो प्रायः ईंट भट्टा, सड़क निर्माण, बाँध निर्माण, जलनिकासी हेतु नाला निर्माण, नहर बाँध, निर्माण एवं गृह निर्माण जैसे मानव जनित क्रियाओं से बनते हैं । देश में मीठाजल संसाधन के रूप में तालाब व पोखरे, बील्स, झील व दलदली जल संसाधन, जलाशय, नदी एवं सिंचाई नहरें तथा खाली जमीन में मछली पालने योग्य धान के खेत उपलब्ध हैं (तालिका-1) । देश के कुल अन्तर्स्थलीय जल संसाधनों से मत्स्य उत्पादन की क्षमता 4.5 मिलियन टन से अधिक आंकी गई है ।

तालिका-1. भारत का अन्तर्स्थलीय मीठाजल संसाधन

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	नदियों एवं नहरों की लम्बाई (कि.मी.)	जलाशय (लाख हे.)	तालाब एवं पोखरे (लाख हे.)
आंध्र प्रदेश	11514	2.24	5.17
अरूनाचल प्रदेश	2000	-	2.76
आसाम	4820	0.02	0.03
बिहार	3200	0.60	0.95
गोवा	250	0.03	0.03
गुजरात	3865	2.43	0.71
हरियाना	3865	-	0.10
हिमाचल प्रदेश	3000	0.42	0.01
जम्मू एवं कश्मीर	27781	0.07	0.17
करनाटक	9000	2.11	2.90
केरला	3092	0.30	0.30
मध्य प्रदेश	20661	2.94	1.19
महाराष्ट्र	16000	2.79	0.59

मनीपुर	3360	0.01	0.05
मेघालय	5600	0.08	0.02
मीजोरम	1395	-	0.02
नागालैण्ड	1600	0.17	0.50
उड़ीसा	4500	2.56	1.14
पंजाब	15275	नगण्य	0.07
राजस्थान	5290	-	1.80
सिक्किम	900	1.20	-
तमिलनाडु	7420	0.52	0.56
त्रिपुरा	1200	0.05	0.13
उत्तर प्रदेश	3120	1.50	1.62
पश्चिम बंगाल	2526	0.17	2.76
अण्डमान निकोबार	115	0.01	0.03
चण्डीगढ़	2	-	नगण्य
दादरनगर हवेली	54	0.05	-
डामनड्यू	12	-	नगण्य
दिल्ली	150	0.04	-
लक्ष्यद्वीप	-	-	-
पाण्डीचेरी	247	-	नगण्य
कुलयोग	191024	20.31	23.81

स्त्रोत : *मत्स्य सांख्यिकी पुस्तिका 2000, कृषि मंत्रालय भारत सरकार*

जल जीवपालन से मत्स्य उत्पादन :

पिछले दशक में भारतीय जलकृषि की वार्षिक वृद्धि दर 6% थी जो प्रग्रहण मात्स्यिकी की तुलना में अधिक है । वर्ष 1990 में कुल मत्स्य उत्पादन 1.01 मि.टन था जो वर्ष 2000 में बढ़कर 2.13 मि.टन हो गया जिसमें से 97.47% मछली मीठाजल मत्स्यपालन से है । प्रजातिवत मछली उत्पादन सारिणी-II में दर्शाया गया है । स्पष्ट है कि भारत कार्प प्रधान देश है और कुल मीठाजल मत्स्य उत्पादन में 90% केवल कार्प मछलियाँ हैं । इसमें रोहू, भाकुर, नैनी मछलियों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। वर्ष 2000 में इन मछलियों का उत्पादन क्रमशः 0.567, 0.546 एवं 0.517 मि.टन था जो एक साथ मिलकर भारत के मत्स्यपालन से उत्पादन का 7.8% है ।

तालिका-2. भारत में मत्स्यपालन से वर्ष 2000 के दौरान प्रजातिवत उत्पादन

मत्स्य प्रजाति	कुल उत्पादन (टन)	%
मीठाजल		
कामन कार्प	86400	4.06
रोहू	567433	26.70
नैनी	516900	24.32
भाकुर	546200	25.69
ग्रास कार्प	151100	07.10
सिल्वर कार्प	16489	0.78
मांगुर	10235	0.48
कवई	65000	3.06
सौर प्रजातियाँ	21920	1.06
महा झींगा *	30450	1.43
अन्य मछलियां	59371	2.79
लवणीय जल		
पीनियस मानोडान	52471	2.47
पीनियस इंडिकस	300	0.01
कैसाट्रिया मद्रासेंसिस	14	0.001
पेमा विरिडिस	609	0.03
पफिया गैलस	630	0.03
कुल योग	**2125522**	**100**

स्त्रोत : *एफ.ए.ओ. 2002,* एम.पी.ई.डी.ए.2002-03*

घरेलू मत्स्य खपत

लोगों में मछली के पोषक गुणों की जानकारी क्रमशः बढ़ रही है, साथ ही मछली खाने वालों की संख्या में भी वृद्धि हो रही है । इस समय देश में 60% लोग मछली खाते हैं । मछली उपभोग दर देश के विभिन्न राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों के लोगों में अलग-अलग है सारणी-(III) । हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, पंजाब एवं राजस्थान के लोग मछली नहीं के बराबर खाते हैं । अरूणांचल, उत्तर प्रदेश, अण्डमान और निकोवार, चण्डीगढ़, दादरा एवं नगर हवेली तथा लक्ष्यद्वीप के ग्रामीण निवासी यहाँ के शहरी निवासियों की तुलना में अधिक मछली खाते हैं । देश के बाकी सभी राज्यों के शहरी निवासी ग्रामीण निवासियों की अपेक्षा

अधिक मछली खाते हैं । देश में मछली की औसत उपभोग गाँवों में 6.14 कि.ग्रा./व्यक्ति/वर्ष तथा शहरों में 8.35 कि.ग्रा./व्यक्ति/वर्ष है, जबकि जरूरत 12 कि.ग्रा./व्यक्ति/प्रति वर्ष की है । वैज्ञानिकों का मत है कि बढ़ती आबादी हेतु 10 मि. टन मछली की जरूरत है जबकि सभी स्त्रोतों से उत्पादन केवल 6.00 मि. टन है ।

तालिका-3 : विभिन्न राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में मछली उपभोग की दर (कि.ग्रा./व्यक्ति/माह)

राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	आबादी (मि.)	मछली उपभोग (कि.ग्रा.) गाँव में	शहर में
आन्ध प्रदेश	66.5	0.11	0.08
अरूनाचल प्रदेश	0.8	0.29	0.48
आसाम	22.4	0.43	0.54
विहार	86.3	0.12	0.13
गोवा	1.1	1.36	1.91
गुजरात	41.3	0.02	0.04
हरियाना	16.4	नगण्य	नगण्य
हिमाचल प्रदेश	16.4	नगण्य	नगण्य
जम्मू एवं कश्मीर	10.0	नगण्य	नगण्य
कर्नाटक	44.9	0.14	0.14
केरल	29.1	1.35	1.62
मध्य प्रदेश	66.1	0.06	0.04
महाराष्ट्र	78.9	0.11	0.16
मनीपुर	1.8	0.34	0.44
मेघालय	1.7	0.32	0.47
मीजोरम	0.7	0.17	0.10
नागालैण्ड	1.2	0.26	0.39
उड़ीसा	31.6	0.29	1.94
पंजाब	20.2	नगण्य	नगण्य
राजस्थान	44.0	नगण्य	नगण्य
सिक्किम	0.4	नगण्य	नगण्य
तमिलनाडु	55.8	0.17	0.17
त्रिपुरा	2.7	0.89	0.89

उत्तर प्रदेश	139.1	0.04	0.02
पश्चिम बंगाल	68.0	0.54	0.72
अंडमान एवं निकोवार	0.30	1.40	1.05
चंडीगढ़	0.6	0.02	0.01
दादरा एवं नगर हवेली	0.1	0.39	0.28
डामन एवं ड्यू	0.1	1.07	4.12
दिल्ली	9.4	0.03	0.03
लक्ष्य द्वीप	0.05	3.79	3.61
पाण्डीचेरी	0.8	0.69	0.71
औसत	0.534		0.696

स्त्रोत : *मत्स्य सांख्यिकी पुस्तिका 2001, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार*

मीठेजल में पाली-जाने वाली प्रमुख मत्स्य प्रजातियाँ

क्षेत्र विशेष के लोगों की पसंद, क्षेत्रीय बाजार की मांग, आर्थिक महत्व, पोषक, गुणवत्ता, स्वाद, सुवास, वृद्धि दर,रोग रोधिता, उत्पादन क्षमता इत्यादि के आधार पर भाकुर, रोहू, नैन, कनौछर, ग्रास कार्प, सिल्वर कार्प, कामन कार्प, मांगुर, सिंही, कवई, झींगा इत्यादि का पालन किया जाता है । सौर, सौरी, पढ़िन, टेंगर, पयास, महाशिर, जलकपूर, दरही, धवई, लेबियो गोनियस, लेबियोवाटा, पुन्टियस पंचे लस, पुन्टियस कोलस, पुंटियस सराना, सिरहाइनस सिरहोसा इत्यादि मछलियों के पालने के लिए प्रयास जारी है ।

भारत में मत्स्य पालन के क्षेत्र में जैव विविधता संकेतक :

जैव विविधता उपयोग संकेतक (इण्डेक्स आफ बायोडाइवर्सिटी यूटिलाइजेशन इन एक्वाकल्चर) से मत्स्य पालन में जैव-विविधता के उपयोग का पता चलता है । इस संकेतक का आकलन कुट्टी (1999) के द्वारा दिये गये सूत्रों के अनुसार किया जा सकता है जो निम्नवत है -

मत्स्य पालन में जैव विविधता उपयोग संकेतक = 15

कोरिया में पाली गयी सर्वाधिक मत्स्य प्रजातियाँ = 52

$$\text{मत्स्य पालन में जैव विविधता उपयोग संकेतक (B.U.A)} = \frac{15}{(52 \times 2)}$$

एफ.ए.ओ.के वर्गीकरण के अनुसार = 0.14

भारत में केवल तीन जैव कोटियों (बायोकेटेगरीज) का उपयोग होता है और पंद्रह प्रजातियों का पालन किया जाता है (कुट्टी,1999), अन्य देशों की तुलना में भारत में बहुत कम मत्स्य प्रजातियों को प्रयोग में लाया जाता है । कोरिया में सबसे अधिक मत्स्य प्रजातियों (52) का पालन किया जाता है । भारत में जैव-विविधता प्रयोग संकेतक (B.U.A) केवल 0.14 है जो अन्य मत्स्य पालन में सक्रिय देशों (कोरिया,ताइवान,थाइलैण्ड एवं चीन) की तुलना में बहुत कम है (तालिका-4) । इसको और अधिक बढ़ाने की जरूरत है ।

तालिका-4 कुछ चुने गये देशों के मत्स्यपालन हेतु जैव कोटियाँ (वायोकैटगरीज), प्रजाति एवं जैव विविधता उपयोग संकेतक

देश	भारत	बंगला देश	चीन	थाइलैंड	वियतनाम	जापान	कारिया	यू.एस.ए.
श्रेणी								
जैव कोटियाँ	3	2	7	6	4	7	7	5
प्रजातियाँ	15	3	29	36	7	31	52	31
जैव विविधता संकेतक	0.14	0.03	0.28	0.35	0.07	0.29	0.5	0.29

स्त्रोत : *कुट्टी (2003),एफ.ए.ओ.(1999) वर्ष 1997 में मत्स्य उत्पादन के आधार पर ।*

मछली पालन तकनीकों की विविधता

शफर (कार्प) मछली पालन

शफर मछली पालन बहुत पहले से होता रहा है, परन्तु शुरू-शुरू में उत्पादन मात्र 600 कि.ग्रा./हे./वर्ष होता था । वैज्ञानिकों के लगातार शोध प्रयोगों के फलस्वरूप मत्स्य पालन में एक नया मोड़ आया और मिश्रित मछली पालन करना उचित ठहराया गया । इसमें 6 संगत सफर मछलियाँ (रोहू, भाकुर, नैन, सिल्वर कार्प, ग्रास कार्प, कामन कार्प) एक साथ निश्चित अनुपात एवं सघनता में पाली जाती हैं ताकि सभी स्तर के प्राकृतिक आहार का उपयोग बिना किसी स्पर्धा के हो सके । मत्स्य सघनता एवं आहार के आधार पर विस्तृत, अर्ध गहन, गहन एवं अति गहन पद्धतियों के रूप में श्रेणीबद्ध किया जाता है । सत्तर के दशक में मत्स्य उत्पादन हेतु विभिन्न प्रबन्धन के साथ अनेक शोध कार्य किये गये । मिश्रित मछली पालन के शुरूआती

प्रयोगों से मत्स्य उत्पादन 7.5 टन/हे./वर्ष पाया गया (चौधरी वगैरह,1974) इसके बाद चौधरी ने बर्मा में 1039 कि.ग्रा./हे./वर्ष मछली उत्पादन किया । नब्बे के दशक में केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान में अनेक प्रयोग किये गये जिसमें औसत उत्पादन 15 टन/हे./वर्ष मिला । इसमें सर्वाधिक उत्पादन 17.3 टन/हे./वर्ष दर्ज किया गया (त्रिपाठी वगैरह,2000), जेना वगैरह (2002) । बहुफसली पालन से 6828-7195 कि.ग्रा./हे./वर्ष मत्स्य उत्पादन केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान के द्वारा दर्ज किया गया ।

वायुश्वासी मछली पालन

देश में दलदली, छिछले एवं जलीय वनस्पतियों से युक्त अनेक जलसंसाधन उपलब्ध हैं जिसमें कार्प मछलियों का पालन नहीं किया जा सकता है । ऐसे जलक्षेत्रों में वायुश्वासी मछलियाँ (मांगुर, सिंधी कवई, सौरा, सौरी, गड़ई) अकेले अथवा कार्प मछलियों के साथ पाली जा सकती हैं । ये मछलियाँ मांसाहारी प्रकृति की होती है । मखाना एवं सिंघाड़ा फसलों के साथ भी इन मछलियों को पाला जा सकता है । शोध कार्यों के आधार पर विकसित की गई तकनीकियों का अनुसरण से उत्पादन 50-60 टन तक प्रदर्शित किया जा चुका है । इन मछलियों के बीज की कमी तथा पोषक सम्पूरक आहार की कमी के नाते व्यापक स्तर पर पालन नहीं हो पा रहा है ।

रंगीन मछलियों का पालन

मत्स्य पालन के क्षेत्र में रंगीन मछलियों का आर्थिक महत्व बहुत अधिक है । विश्व बाजार में लगभग 7 मिलियन यू.एस. डालर रंगीन मछलियों का कारोबार होता है। भारत से लगभग 30 मिलियन यू.एस.डालर की रंगीन मछलियों के निर्यात करने की क्षमता आंकी गयी है, किन्तु वर्तमान में केवल 10 मिलियन रूपये की रंगीन मछलियों का निर्यात किया जाता है (अय्यप्पन एवं जेना,2003) । भारत में सैकड़ो कुदरती रूप से पायी जाने वाली स्वदेशी प्रजातियाँ और लगभग उतनी ही संख्या में अभ्यागत प्रजातियों का पालन किया जाता है ।

मीठाजल झींगा पालन

मीठेजल झींगा (*मैक्रोब्रैकियम राजनबर्गी* एवं *मैक्रोबैकियम माल्कमसोनी*) का बड़े पैमाने पर बीज उत्पादन किया जाता है । देश में कुल 71 झींगा हेचरी कार्यरत है जिसमें 30 केवल आन्ध्रप्रदेश में हैं जहाँ वर्ष में 1000 मिलियन झींगों के बीज पैदा किया जाता है । मीठेजल जीवपालन की चाह मत्स्य पालकों में बढ़ती जा रही है । वर्ष 1999-2000 में 12022 हे.

मीठाजल क्षेत्र में झींगा उत्पादन होने लगा है । वर्ष 1999-2000 में कुल उत्पादन 7140 टन होता था जो बढ़कर 30450 टन हो गया जिसकी कीमत 5846 मिलियन रूपये है । देश के कुल झींगा उत्पादन का 87% आंध्रप्रदेश से आता है । झींगों को अकेले अथवा शफर (कार्प) मछलियों के साथ पाला जाता है । वर्षानुवर्षी किन्तु उथले अथवा मौसमी तालाब झींगा पालन हेतु उपयुक्त होता है । उचित प्रबन्धन प्रणाली में मीठाजल झींगा पालन से 1-3 टन/हे./वर्ष का उत्पादन हो सकता है।

मीठाजल मोती पालन

यद्यपि समुद्री जल में मोती पालन का कार्य सत्तर के दशक से हो रहा है । किन्तु मीठाजल मोती पालन की तकनीकी हाल में ही केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित की गयी है । इस तकनीकी से सुगठित, बटनाकार, गोलाकार,, अर्द्धगोलाकार तथा कई प्रकार की मोतियाँ बनायी गयी है । मोती पालन के महत्व को देखते हुए सीपियों का प्रजनन एवं संवर्धन एक अहम् पहलू बन गया है ।

पिजड़ा एवं कटघरा मत्स्यपालन

उन वृहत् जल संसाधनों, जिनमें खुली अवस्था में मिश्रित पालन की संभावना नहीं होती है,में मछलियों को घेरे में पालते है । जल संसाधनों के अनुसार घेरे या तो पिंजड़े के रूप में बनाते हैं या तो कटघरे के रूप में । कटघरे प्रायः कम गहरे पानी और समतल तली वाले क्षेत्रों में बनाते हैं जबकि पिंजड़े गहरे या बहते हुए जल में बनाते हैं । कटघरों में मत्स्य उत्पादन 3-4 टन/वर्ष/हे. तथा पिंजड़ों में 80-130 टन/हे./वर्ष तक प्राप्त किया जा सकता है । पिंजड़ों को उन्हीं जल संसाधनों में लगाते हैं जिसका पानी मंदगति से प्रवाहित हो ताकि पिंजड़े में रखी गयी मछलियाँ अधिक से अधिक जल संसाधनों से प्राकृतिक आहार ग्रहण कर सके । यदि जल संसाधन उपयुक्त है तो बड़े क्षेत्र में बने कटघरे के बीच भी पिजड़ा पालन किया जा सकता है ।

समन्वित मछली पालन

बढ़ती आबादी से प्राप्त वर्ज्य पदार्थों, शहरी मलजलों, औद्योगिक वहिस्त्रावों, सघनीकृत पशु पक्षियों से उत्सर्जित पदार्थों,कृषि उपफलों के लगातार जमने से पर्यावरणीय संतुलन बिगड़ सकता है । अतः वैज्ञानिकों ने इन वर्ज्य पदार्थों का उपयोग उत्पादन बढ़ाने में उचित समझा । इसके लिए एक ऐसे जलकृषि तंत्र का सृजन किया जिसे समन्वित जलकृषि कहा जाता है । इस जलकृषि तंत्र में कई उपतंत्र एक साथ क्रियान्वित होते हैं और एक उपतंत्र का वर्ज्य पदार्थ न्यायसंगत उपयोग होता है, कम खर्च पर सौहार्द्य उत्पादन मिलता है, सभी उपतंत्रों का

पर्यावरणीय संतुलन बना रहता है,एक ही स्थान पर कई चीजें पैदा की जाती है साथ ही अतिरिक्त रोजगार क सृजन होता है । लंबे शोध कार्यों के आधार पर समन्वित जलकृषि के कई माडल सामने आये हैं ।

कृषि सह जल खेती में तालाब के बांधो पर हरी साग सब्जियाँ, दलहन व तिलहनी फसलें, फलदार पौधे,रेशम कीड़े पालने के लिए शहतूत के पौधे,फूल के पौधे तथा घास इत्यादि उगाते हैं । इन फसलों की सिंचाई तालाब के पानी से करते हैं,और तालाब की तली की मिट्टी फसलों के लिए उर्वरक का काम करता है । फसलों से प्राप्त अनुपयोगी पदार्थों को तालाब में पुनर्चक्रित करते हैं । उगायी गयी घास को शाकाहारी मछलियाँ खाती हैं । गहरे जलवाले धान के खेत में भी मछली पालन किया जाता है । मौसमी तालबों में जहाँ गर्मी के दिन में धान,साग-सब्जियाँ, दलहन व तिलहन फसलें ली जाती हैं वहीं वर्षाकाल में इन तालाबों में मत्स्य बीज संवर्धन या मछली पाली जाती है । मखाना, सिंधाड़ा, कमल, लेम्ना, ओल्फिया, स्पाइरोडेला एजोला, जलकुम्ही जैसे पौधों का मछली पालन के साथ समन्वयन किया जा सकता है ।

पशुधन सह जल खेती में पशु-पक्षियों को तालाब के बांधो पर अथवा तालाब के निकट पाला जाता है । पशु-पक्षियों द्वारा गिराये गये आहार व मल का तालाब में मछली आहार तथा तालाब की उत्पादकता बढ़ाने के काम आता है । भारत में गाय-मछली पालन,भैंस-मछली पालन, सूअर मछली पालन, बकरी-मछली पालन, खरगोश मछली पालन, बत्तक-मछली पालन, कुक्कुट-मछली पालन इत्यादि नमूने मुख्यतः अपनाये जाते हैं। इस प्रकार के समन्वित मछली पालन में पशु-पक्षिओं से जहाँ मांस, दूध, अण्डे व ऊन प्राप्त किए जा सकते हैं वहीं तालाब से बिना किसी आहार एवं उर्वरक के 3-7 टन/हे.वर्ष मछली पैदा की जा सकती है ।

घरेलू मलजल जो पोशक पदार्थों से भरपूर है, को कृषि,बागवानी एवं मछली पालने हेतु प्रयोग किया जाता है। अपजल में मछली पालन से बिना किसी आहार के 5-7 टन मछली/हे./वर्ष मछली पैदा की जा सकती है । कुकुरमुत्ते (मश्रुम) की खेती से प्राप्त रद्दी पदार्थों को केंचुआ पालन हेतु उपयोगी बना सकते हैं । केंचुए पालन से प्राप्त कृमि कम्पोस्ट कृषि,वागवानी एवं जलखेती हेतु उपयोग किया जा सकता है । केंचुए मत्स्य आहार के रूप में प्रयोग किये जा सकते हें । कृषि से प्राप्त रद्दी पदार्थों,पशु-पक्षियों के मल-मूत्रों जलीय पौधों इत्यादि को वायोगैस प्लाण्ट में प्रयोग कर पर्याप्त मात्रा में स्लरी हासिल की जा सकती है जो जलकृषि,कृषि व वागवानी के लिए एक सक्षम खाद का काम करता है ।

शफर (कार्प) मछलियों का नस्ल सुधार

प्रमुख शफर मछलियों की विभिन्न प्रजातियों के बीज संकरत्व से उत्तम नस्ल की मछलियाँ पैदा की जाती हैं । आनुवांशिकीय अभियांत्रिकी के तहत गाइनोजेनिसिस एवं एण्ड्रोजेनिसिस की क्रिया द्वारा क्रमशः मादा व नर मछलियों को पैदा करते हैं । इन गाइनोजेनिटिक मादा एवं एण्ड्रोजेनिटिक नर के बीच प्रजनन कराया जाता है । इससे प्राप्त संततियों में 30-40% वृद्धि दर अधिक होती है । पालीप्लायडी की क्रिया से ट्रिप्लायड (3 एन) तथा टेट्राप्लायड (4 एन) मछलियाँ पैदा की जाती हैं । इससे जो बांझ मछलियाँ पैदा होती हैं उसमें 20-34% वृद्धि दर अधिक होती है । चयनित प्रजनन की क्रिया से पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तम संततियों से सर्वोत्तम का चयन किया जाता है । इससे प्राप्त संततियों के संवर्धन से केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान में जयन्ती रोहू पैदा किया गया जिसकी वृद्धि आम रोहू की अपेक्षा अधिक होती है ।

मछलियों के लिए पोषक आहार

मछलियों की आयु एवं प्रजाति के अनुसार संतुलित आहार विकसित किया गया है जिसमें मछलियों को पाचक क्षमता के अनुसार प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, बसा, विटामन्स एवं खनिज लवण का निश्चित अनुपात में समावेश होता है । वृद्धि हारमोन युक्त रोग रोधी मत्स्य आहार बनाने का प्रयास जारी है । शफर मछलियों, विडाल मछलियों एवं झींगों के लिए लार्वो, शिशुओं, किशारों एवं प्रौढ़ों के लिए अलग-अलग आहार का सूत्रण किया गया है । इनके सेवन से उनकी वृद्धि व अति जीवितता संतोषजनक होती है । तदनुसार उत्पदन भी अधिक होता है ।

जलपर्यावरण प्रबन्धन हेतु सुदृढ़ उपाय

तालाबों एवं पोखरों के पानी एवं मिट्टी में भौतिक एंव रासायनिक घटकों को उचित बनाए रखने के लिए परिवेश प्रबन्ध आवश्यक है । उचित पर्यावरण प्रबन्ध हेतु जैविक उर्वरकीकरण का सहारा लिया जाता है । तेज वृद्धि, अधिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण, तीव्र विघटन के नाते एजोला एक सक्षम जैविक खाद के रूप प्रयोग किया जाता है। तालाब में 3-5 किग्रा/हे./वर्ष नाइट्रोजन स्थिर होता है । उचित प्रबन्ध प्रणाली से नाइट्रोजन स्थिरीकरण की वृद्धि हेतु प्रयास किया जा रहा है । प्लवक संवर्धन से तालाब की भोजीस्तर समृद्ध बनाने तथा प्रकाश संश्लेषणिक क्षमता की वृद्धि हेतु प्रयास किये गये हैं। नये तालाबों में घास-फूस,पुआल तथा अन्य कार्बनिक पदार्थों की सहायता से उत्पादकता प्रबन्ध सम्भव है । बायागैस स्लरी एक सुरक्षित जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है ।

मत्स्य स्वास्थ्य प्रबन्धन

विभिन्न प्रकार के मत्स्य रोगों की पहचान एवं निदान हेतु गहन शोध कार्य किये गये हैं, जिसमें कोषा संवर्धन, रोग निदान में प्रतिरक्षण तकनीकी, जीन रूप रेखा से मत्स्य रोग पहचान एवं जीन चिकित्सा इत्यादि शामिल है । मत्स्यरोगों के निदान हेतु अनेक अंग्रेजी एवं आयुर्वेदिक औषधियाँ तैयार की गयी हैं । जहाँ विभिन्न प्रकार के मछली रोगों के विषय में जानने के लिए रोग पहचान किट बनाये गये हैं वहीं मछलियों के रोगों के उपचार हेतु विभिन्न प्रकार की औषधियाँ विकसित की गयी हैं ।

मत्स्य प्रजनन

शुद्ध एवं स्वस्थ बीज मत्स्यपालन की सफलता की कुंजी है । नियंत्रित अवस्था में शुद्ध बीज पैदा करने के उद्देश्य से सर्वप्रथम वर्ष 1957 में चौधरी एवं अलीकुन्ही द्वारा शफरों का उत्प्रेरित प्रजनन तकनीक का साठ के दशक में मानकीकरण किया गया । सत्तर एवं अस्सी के दसकों में प्रचार-प्रसार हुआ । इस समय तक मत्स्य पीयूष ग्रंथि का प्रयोग होता रहा जिसमें प्रजनकों को दो बार सूइयाँ लगानी पड़ती हैं । नब्बे के दसक में ओवाप्रिम व्यवसायीकृत हुआ जिसमें नर व मादा को एक ही साथ केवल एक बार सूइयाँ लगानी पड़ती हैं । हाल ही में ओवाटाइट एवं ओवा एफ.एच.नामक कृत्रिम हारमोन को भारत में व्यवसायीकृत किया गया । इनका प्रयोग ओवाप्रिम की तरह होता है और प्राप्त परिणाम भी लगभग समान होते हैं । नब्बे के दसक में एक ही मौसम में कार्प मछलियों को चार बार प्रजनन कराने की तकनीकी विकसित की गयी । एक ही प्रजनक को दस वर्षों से अधिक समय तक प्रजनन के लिए प्रयोग किया गया । शफर मछलियों के अतिरिक्त मांगुर, कवई, सिंधी, टेंगर, पयास, झींगा इत्यादि मछलियों की प्रजनन तकनीक विकसित की गयी है ।

भारत में कार्प हेचरी मिट्टी आधारित हौजो से शुरू की गयी और हापा हैचरी काफी प्रचलित हुई, परन्तु इससे स्पान जीविता केवल 25-40% मिलती थी । अतः प्रवाहित जल हेचरी का विकास किया गया जिसे स्पान जीविता 80-90% होता है । आजकल मत्स्य पालक बड़े पैमाने पर स्पान उत्पादन का कार्य कर रहे हैं ।

मत्स्य जीरा तथा अंगुलिका उत्पादन

स्पान/जीरे अति नाजुक होने के कारण 60-80% तक मर जाते हैं । विविध प्रबन्धकों के साथ 2-10 मि./हे. संग्रहित कर संवर्धन किये गये और जीवितता बढ़ायी गयी । अतः मत्स्यपालन विस्तार के साथ जीरा उत्पादन भी बढ़ा है । वर्ष 1986-87 में 632 मिलियन जीरा पैदा होता था जो वर्ष 1995-96 में 15007 मिलियन तथा वर्ष 2002-03 में तथा वर्ष 2002-03 में 18500 मिलियन हो गया । भारत के कुल जीरा उत्पादन का 54.4% पश्चिम बंगाल से आता है । आसाम 17.15% जीरा उत्पादन कर दूसरे स्थान पर है और आंध्रप्रदेश 3.75% उत्पादन करके तीसरे स्थान पर । हालांकि जीरा उत्पादन पर्याप्त होता है परन्तु 10-15 सेमी. की अंगुलिकाएं अपर्याप्त हैं । भारत में यदि 1.2 मिलियन हे. में मछली पालन किया जाय तो इसमें 7500 मिलियन अंगुलिकाओं की जरूरत है ।

मत्स्यपालन संप्रसारण

देश में जलकृषि संप्रसारण का काम वर्ष 1950 में अन्तर्स्थलीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान बैरकपुर द्वारा शुरू किया गया । दूसरी पंचवर्षी योजना में मत्स्यपालन संप्रसारण की कई इकाईयाँ खोली गयी । वर्ष 1965 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा राष्ट्रीय प्रदर्शन प्रकल्प चलाया गया जिससे उत्पादन 4372-7300 किग्रा/हे./वर्ष प्रदर्शित किया गया । वर्ष 1973-74 में भारत सरकार द्वारा मत्स्य पालक विकास अभिकरण नामक व्यापक योजना राज्य स्तर पर चलायी गयी जिसमें 0.4 मिलियन हे. में मछली पालन कर औसत उत्पादन 2.2 टन/हे./वर्ष तक दर्ज किया गया । अखिल भारतीय समन्वित परियोजना वर्ष 1971 में चलाया गया जिससे औसत उत्पादन 2.4-6.5 टन/हे./वर्ष दर्ज किया गया । इसके बाद आई.डी.आर.सी. द्वारा ग्रामीण जलकृषि परियोजना चलाई गयी (1975-77) । क्रियात्मक शोध प्रकल्प वर्ष 1974-75 के दौरान प्रयोगशाला से खेत तक कार्यक्रम (1979-89) चलाया गया जिससे मत्स्य पालकों के तालाब में उत्पादन 9 गुना बढ़ी ।

मत्स्य पालन के आर्थिक लाभ को समझते हुए मत्स्यपालकों एवं उद्यमियों में काफी जागरूकता आयी है । पिछले दसक में मत्स्यपालन का बहुत अधिक प्रसार हुआ है । इस समय मछली पालन बंगाल, उड़ीसा, आसाम तक सीमित न रहकर आंध्र प्रदेश जैसे प्रांतों में एक प्रमुख उद्योग के रूप में अपनाया जा रहा है । यहाँ उचित प्रबन्धन में मत्स्य उत्पादन अधिकतम 10 टन/वर्ष/हे. तक मिलता है । वर्तमान में आंध्र प्रदेश, गुजरात, पंजाब, हरियाण, महाराष्ट्र जैसे अनेक प्रांत बड़े पैमाने पर मत्स्य उत्पादन अन्य राज्यों में निर्यात हेतु करते हैं ।

मीठाजल मछली पालन में चुनौतियाँ :

1. देश के लगभग 62% तालाबों एवं पोखरों में मछली पालन न होने के नाते, जलीय पौधों से आच्छादित रहने, तीव्र गति से तलछटीकरण होने, अतिपोषण की अवस्था धारण करने इत्यादि से तालाबों में अवक्रमण होने की संभावनाएं हैं । इनका सुधार एवं उपयोग आने वाले समय में एक चुनौती होगी ।

2. जल उपभोग की होड़ के साथ भूमिगत जलस्तर में गिरावट, झीलों की सिकुड़न, नमजमीन की विलुप्तीकरण इत्यादि से जल की कमी का संकेत मिलता है । अतः वर्षा के भूसतही जल भण्डार को संतुलित रूप से एकत्रित करके मछली पालन करना तर्कसंगत होगा । भारत में 4000 घन कि.मी. वर्षा का जल प्रति वर्ष होता है । इससे 2 मीटर गहरा 200 मि. हे. अथवा 4 मी. गहरा 100 मि. हे. जलाशय भरा जा सकता है । इस वर्षा जल का विवेकपूर्ण भण्डारन कर मछली पालन करना आने वाले समय के लिए चुनौती होगी ।

3. मछलियों की नस्ल सुधार की प्रक्रिया में मत्स्य संकरत्व करके लिंग परिवर्तन, एक लिंगी मछली उत्पादन, चयनित प्रजनन से उत्तम नर व मादा मछली उत्पादन, वृद्धिजीन अंतःप्रेषण, शुक्रपरिरक्षण, इत्यादि से अनुवांशिक सुधार मीठाजल जीवपालन हेतु आने वाले समय में एक बहुत बड़ी चुनौती होगी ।

4. तेजी से बढ़ने वाली शफर व विडाल मछलियों के साथ प्राकृतिक संसाधनों में कुदरती रूप में पनपने वाली मछलियों का पालन व प्रजनन विधि विकास कर उनका संरक्षण करना न्यायसंगत होगा ।

5. बाजार में सदैव मत्स्य उपलब्धता बनाये रखने एवं नियमित रूप से आमदनी प्राप्त करने के लिए बहुफसली मछली पालन की आवश्यकता होगी । बहुफसली मत्स्यपालन की सफलता हेतु स्वस्थ मत्स्य अंगुलिकाओं की मांग पूरे वर्ष तक बनी रहेगी ।

6. मीठाजल मोती पालन के महत्व को समझते हुए सीपियों के प्रजनन व पालन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ।

7. मीठाजल झींगों में बीज की उपलब्धता बनाये रखने के लिए जगह-जगह पर झींगा अण्डज उत्पत्तिशालाएं बनाना जरूरी होगा ।

8. मांसाहारी मछलियों के भोजन से पशु-पक्षियों को कौन कहे मनुष्यों के आहार से भी प्रतिस्पर्धा होने की संभावना है । अतः शाकाहारी मछली पालन पर विशेष जोर देना तर्कसंगत होगा ।

9. देश में जगह-जगह पर मछली आहार चक्की की स्थापना करके सस्ता एवं टिकाऊ मत्स्य आहार की उपलब्धता बनाए रखना जरूरी होगा ।

10. उष्ण कटिबंधी तालाबों में शुद्ध स्वांगीकरण 30-35 टन शुष्क कार्बनिक पदार्थ/हे./वर्ष आंका गया है, जिससे बिना किसी आहार के लगभग 15 टन/हे./वर्ष मत्स्य उत्पादकता प्रबन्ध पर शोध कार्य करने की आवश्यकता है ।

11. तालाब में जितना पोषक पदार्थ/उर्जा प्रवेश होता है उसका आंशिक भाग ही मछली के रूप प्राप्त होता है, शेष तली में समा जाता है । अतः तलछटी पोषक पदार्थ/उर्जा प्रबन्धन पर शोध कार्य करने की जरूरत है ।

12. घरेलू मलजल का प्राथमिक स्तर पर प्रोटीन युक्त शैवाल तथा द्वितीय स्तर पर मछली उत्पादन कर जल प्रदूषण में कमी करने की आवश्यकता है ।

13. गहन एवं अतिगहन मछली पालन में आवश्यकता से अधिक आहार, खाद, उर्वरक का प्रयोग होता है परन्तु इनके आंशिक भाग ही जैव संश्लेषण हो पाता है । अवशेष पदार्थों का नियंत्रण जमाव होने से अतिपोषण की अवस्था आ जाती है । इसके सुधार हेतु प्रबन्धन एक बहुत बड़ी चुनौती है ।

14. भौगोलिक स्थितियों के अनुसार मत्स्य पालन हेतु प्रजाति विशेष जल की आवश्यकता का आंकलन एक आवश्यक पहलू होगा । जल की कमी के नाते जलकृषि में पानी का पुनर्प्रयोग/पुनर्चक्रण एक कारगर उपाय सिद्ध होगा । इसके लिए सुलभ एवं कम खर्चीला उर्जा मुहैया करना महत्व रखेगा ।

15. गहन एवं अतिगहन मछली पालन के व्यापक प्रसार के साथ जल की गुणवत्ता अनियमित होगी । प्रदूषित जल में उत्पन्न तनाव से रोगाणुओं की प्रचण्डता बढ़ेगी तथा मछलियों की रोगरोधिता शक्ति कम होगी । फलतः नाना प्रकार की जानलेवा बीमारियाँ बढ़ेगीं इसलिए मछलियों का स्वास्थ्य प्रबन्ध एक बहुत बड़ी चुनौती होगी जिसके लिए प्रशिक्षित डाक्टरों की जरूरत होगी ।

16. भूमण्डल उष्मीकरण के साथ जल का भी ताप बढ़ेगा । उथले पानी में पनपने वाली मछलियों का जनन विकास, वृद्धि, व्यवहार जल के ताप वृद्धि के साथ प्रभावित होगा । बदलते तापमान का मछलियों एवं जल परिवेश पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन जरूरी होगा ।

17. पर्यावरण प्रदूषण के साथ कार्बनडाई आक्साइड की मात्रा बढ़ेगी । इसका उपयोग शूक्ष्म शैवाल उत्पादन करने के लिए किया जाना तर्कसंगत है । अतः जलीय परिवेश में जैविक कार्वनडाई आक्साइड स्थिरीकरण पर शोध कार्य एक चुनौती होगी ।

18. देश में समन्वित मछली पालन की व्यापकता पर जोर देना होगा । बड़े-बड़े जलाशयों में उत्पादकता बढ़ाने के लिए इसमें वृहद रूप में समन्वित मछली पालन करने की आवश्यकता होगी ।

19. शोध कार्यों के आधार पर मत्स्य उत्पादन 10-17 टन/हे./वर्ष पाया गया है परन्तु राष्ट्रीय औसत उत्पादन केवल 2.35 टन/हे./वर्ष है । इस उच्च तकनीकियों का वैधता परीक्षण जलकृषकों के क्षेत्र पर करके सरलीकरण करना जरूरी होगा ।

20. देश के लगभग 69.% तालाबों एवं पोखरों में मछली पालन नहीं होता है । जहाँ होता है उसमें वैज्ञानिक संस्तुतियों के अनुसार तकनीकी क्रियान्वयन नहीं होने के नाते उत्पादन कम होता है । अतः देश के और अधिक जलक्षेत्र में मछली पालन करने की आवश्यकता है और पालन किये जा रहे क्षेत्रों की उत्पादकता और अधिक बढ़ाने की जरूरत पर बल देना होगा ।

21. समय के साथ नयी-नयी तकनीकियाँ विकसित होती रहेगीं । तकनीकी विकास के साथ किसानों, उद्यमियों, तकनीकी प्रसार कर्त्ताओं, वैज्ञानिको, योजनाकारों एवं सलाहकारों को आधुनिक तकनीकियों पर प्रशिक्षण् पर आवश्यकता होगी जो विकास हेतु बौधिक निवेश है ।

22. इकाई क्षेत्र में अधिक मत्स्य उत्पादन करने की वर्तमान होड़ से आगामी पीढ़ी के पर्यावरण के प्रति चिन्ता बढ़ेगी। अतः सामाजिक, आर्थिक, प्राकृतिक परिवेश को ध्यान में रखते हुए सौहार्द्य, व्यवहार्य, टिकाऊ एवं अनुकूल तकनीकियों अपना कर टिकाऊ मत्स्यपालन करना आने वाले समय के लिए चुनौती होगी ।

23. मछली का सकल उत्पादन बढ़ेगा परन्तु खर्च की तुलना में लाभ कम होगा । अतः मत्स्य प्रसंस्करण एवं मूल्य वर्धन करके घरेलु एवं अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में विपणन तंत्र की व्यवस्था मजबूत करनी होगी । जिससे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था मजबूत होगी और जलकृषकों एवं उद्यमियों को लाभ होगा ।

उपसंहार

देश मीठाजल संसाधनों से भरपूर है । यहाँ क्षेत्र,संसाधन एवं मत्स्य प्रजाति विशेष अनेक तकनीकियाँ विकसित की गयी हैं; परन्तु तकनीकी विकास तथा तकनीकी सम्प्रसारण का समीकरण असंतुलित होने के कारण बहुत कम जल संसाधनों में मत्स्य पालन होता है और राष्ट्रीय औसत मत्स्य उत्पादन कवल 2.35 टन/हे./वर्ष है जो शोधकेन्द्रों पर विकसित की गयी तकनीकी से प्राप्त मत्स्य उत्पादन (17 टन/हे./वर्ष) से बहुत कम है । कुछ क्षेत्र विशेष जल संसाधनों में यथा आंध्र प्रदेश में पिछले 25 वर्षों से मछली पालन में काफी विस्तार हुआ है और इस समय 80,000 हे. में औसत उत्पादन 7.5 टन/हे./वर्ष पाया जा रहा है परन्तु यहाँ के जलकृषक तालाब के परिवेश को लेकर चिंतित हैं । यहाँ लाभकारी संकेतक भी बहुत कम है । बावजूद इसके पिछले दो दशकों में अन्तर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन में बहुत अधिक प्रगति हुई है जिसका अधिकांश भाग मत्स्यपालन से उत्पादित मछलियों का 97.46% मीठाजल जीवपालन से आता है । इसमें पिछले दो दसकों में 549% की वृद्धि आयी है । हालांकि मीठाजल जीवपालन के क्षेत्र में उर्ध्वाधर एवं क्षैतिज मत्स्य विकास की बहुत अधिक आशाएं हैं, पर इन आशाओं को पूरा करने में अनेक चुनैतियों का भी सामना करना पड़ेगा । जिसे जलकृषकों,उद्यमियों,प्रसार कर्त्ताओं,वैज्ञानिकों सलाहकारों एवं योजनाकारों के लिए मिले जुले प्रयास से हल किया जा सकेगा ।

उत्तर प्रदेश के कुछ झीलों में तलछटीय जन्तु विविधता

कृपाल दत्त जोशी एवं धीरेन्द्र कुमार
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
24 पन्नालाल रोड, इलाहाबाद - 211002

सारांश

जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में अन्य जैविक घटकों के साथ-साथ तलछटीय जन्तुओं का एक प्रमुख स्थान होता है । यह जन्तु तंत्र की खाद्य श्रृंखला को निरंतर जीवन्त बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं तथा जलीय तंत्र की उत्पादकता को प्रभावित करते हैं अपेक्षतया स्थिर प्रकृति के कारण यह जीवतंत्र में हो रहे परिवर्तनों के उचित सूचक भी माने जाते हैं ।

मध्य उत्तर प्रदेश में स्थित चार झीलों मवई (जनपद बाँदा), अरवनी झील (जनपद फतेहपुर), इटैली (जनपद कानपुर देहात) तथा रामपुर नरबी झील (जनपद कानपुर नगर) का वर्ष 2003-04 के अंतर्गत विस्तृत अध्ययन किया गया । उपरोक्त झीलों का क्षेत्रफल 16.21 हे. से 105.18 हे. के मध्य है । झीलें जलागम क्षेत्र से एकत्रित वर्षा के जल से आच्छादित होती हैं । ग्रीष्म काल में झीलों गें जल का स्तर न्यूनतम होता है तथा कभी-कभी संपूर्ण झील सूख भी जाती है । उपरोक्त चारों झील आबादी से घिरी हुई हैं तथा विभिन्न प्रकार से लोगों के उपयोग में आती हैं । इनमें से सभी झीलों में जलीय पादपों की अधिकता होती हैं । अरवनी झील की लगभग संपूर्ण सतह लगभग पादपों से आच्छादित हो चुकी है जबकि मवई झील में इसकी मात्रा न्यूनतम है ।

उपरोक्त झीलों में वर्षा ऋतु के पश्चात् किये गये अध्ययनों से 14 जन्तु प्रजातियों की उपलब्धता, तलछटीय जन्तुओं की औसतन अधिकतम संख्या 2119, रामपुर अरबी झील से तथा न्यूनतम संख्या 253, अरवनी झील से प्राप्त हुई , समस्त जन्तुओं में घोंघा वर्ग (गोलस्क) का वर्चस्व था जबकि कीट वर्ग तथा केंचुआ वर्ग के प्राणी अधिक संख्या गें पाये गये ।

प्रस्तावना

भारतवर्ष गें लगभग 2.5 लाख हे. जल आच्छादित क्षेत्र के रूप में एक महत्वपूर्ण संसाधन है । ये क्षेत्र पश्चिम बंगाल, बिहार, असम, उत्तर-पूर्वी राज्यों तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी

भाग में स्थित हैं । पश्चिम बंगाल में इन क्षेत्रों को बील, बिहार में मौन, चौर या ताल तथा उत्तर प्रदेश में झील कहा जाता है । इन क्षेत्रों का निर्माण प्राकृतिक रूप से नदी के बहाव मार्ग बदलने, भूगर्भीय हलचलों से बने हुये निम्न क्षेत्रों अथवा ज्वालामुखीय गतिविधि के फलस्वरूप होता है, इस तरह से बने हुये निम्न धरातलीय क्षेत्र अथवा गड्ढे, वर्षा या बाढ़ का जल संग्रहित होने से जलाच्छादित हो जाते हैं । इन क्षेत्रों का विभिन्न स्थानीय आवश्यकतायें पूर्ति करने के साथ-साथ पर्यावरणीय एवं मात्स्यकी का महत्व है इसी कारण कुछ विशेष जलाच्छादित क्षेत्रों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है ।

उत्तर प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में भी इस तरह की झीलें उपलब्ध हैं जिनमें से जनपद बाँदा (मवई झील), फतेहपुर (अरवनी झील), कानपुर नगर (रामपुर नरबी झील) तथा कानपुर देहात (इटैली झील) की चार झीलों को वर्ष 2003-04 के दौरान विस्तृत रूप से अध्ययन किया गया । इस कार्य हेतु इन झीलों के समस्त पारिस्थितिकीय घटकों को ग्रीष्म, वर्षा तथा शीतकाल में गहन विश्लेषण किया गया जिसके आधार पर झीलों की उत्पादकता का पता चल सके तथा मत्स्य उत्पादन में वृद्धि हेतु समुचित वैज्ञानिक उपाय सुझाया जा सके । इसी उद्देश्य से झील के तलछट में पाये जाने वाले जन्तुओं का विस्तार से अध्ययन किया गया क्योंकि तलछट में पाये जाने वाले जन्तु झील पारिस्थितिकी के प्रमुख घटक हैं जो जैविक खाद्य श्रृंखला से जुड़े हैं । ये जन्तु अपने स्थिर स्वभाव के कारण झील के भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तनों के सूचक भी होते हैं ।

शोध सामग्री एवं विधियाँ

यह अध्ययन वर्ष 2003-04 के दौरान किया गया, उत्तर प्रदेश के 4 विभिन्न जनपदों में स्थित इन झीलों में मवई झील (जनपद बाँदा) सबसे छोटी है जिसका कुल क्षेत्रफल 16.21 हे. है । कानपुर नगर स्थित रामपुर नरबी झील का क्षेत्रफल 80.10 हे. तथा कानपुर देहात के अंतर्गत इटैली झील का क्षेत्रफल 106.18 हे. है । इन समस्त झीलों में जल एकत्रित बरसात के जल से होता है इसलिये ग्रीष्म काल में मवई झील कभी-कभी पूर्णतः सूख जाती है और अन्य तीन झीलों का जलस्तर बहुत ही कम हो जाता है । इस प्रकार झीलों के जलस्तर में अत्यधिक परिवर्तन इनके तलछटीय जन्तुओं सहित समस्त जैविक घटकों के संतुलन के लिये एक गंभीर समस्या है ।

इस अध्ययन के लिये तीन विभिन्न परिस्थितियों जैसे ग्रीष्म, वर्षा एवं शीत काल में उपरोक्त झीलों से तलछटीय जन्तुओं के लिये नमूने लिये गये तथा इनका स्थापित मानकों एवं

विधियों के अनुसार अध्ययन किया गया । तलछटीय पदार्थ को एडमन्डसन तथा विन्चर्ग (1971) के अनुसार साफ कर अध्ययन हेतु तैयार किया गया ।

शोध परिणाम एवं विवेचना

उपरोक्त चारों झीलों के तलछटीय जन्तुओं का विस्तृत विवरण निम्नलिखित है :

1. अरवनी झील

तीन अलग-अलग मौसम ग्रीष्म, वर्षा एवं शीत काल में लिये गये नमूनों के विश्लेषण से पता चलता है कि इस झील में तलछटीय जन्तुओं की उपलब्धता 88-484/वर्ग मी. है जबकि औसत उपलब्धता 253/वर्ग मी. पाई गई । इस झील में कुल 4 प्रजातियाँ पाई गई जिनमें से कीट वर्ग के जन्तुओं की प्रधानता (83.36%) थी । इसके अतिरिक्त मोलस्क वर्ग के जन्तुओं की उपलब्धता 16.64% थी । जन्तुओं की अधिकतम संख्या ग्रीष्म काल में तथा न्यूनतम वर्षा ऋतु में देखी गई । झील में कीट वर्ग के जन्तुओं में *काइरोनोमस* तथा *केलोस्टोमा* तथा मोलस्क में *लिम्निया* तथा *गाइरोलस* प्रमुख थे । झील के अधिकतम भाग में जलीय पादपों के घिर जाने से इसमें उपलब्ध पोषक तत्व पादपों में ही संग्रहित रह जाते हैं, झील के जल में नहीं रह पाते हैं । इस कारण झील में तलछटीय जन्तुओं की न्यूनतम विविधता एवं उपलब्धता दृष्टिगोचर हुई । जॉर्ज (1964) द्वारा भी जनवरी-अप्रैल के बीच तलछटीय जन्तुओं की अधिकता देखी गई थी जबकि भौमिक (1968) द्वारा प. बंगाल के कुछ तालाबों में इसी प्रकार के जन्तुओं की अधिकता देखी गई ।

2. इटैली झील

विभिन्न मौसम में लिये गये नमूनों में तलछटीय जन्तुओं की उपलब्धता 418-1144/ वर्ग मी. थी जबकि इसका औसत मान 714/वर्ग मी. था, झील में सात विभिन्न प्रजाति या उप-प्रजाति के जन्तु पाये गये, इनमें मोलस्क वर्ग की उपलब्धता का प्रतिशत सबसे अधिक (82.14%), तत्पश्चात् केंचुआ वर्ग (16.42%) तथा कीट वर्ग (1.44%) थे । इटैली झील में मोलस्क वर्ग के प्रतिशत के रूप में *वेलमिया बेंगालेंसिस, बेलामिया क्रसा, लिम्निया एकुमिनाटा, लिम्निया ल्युटिओला* तथा केंचुआ वर्ग से *लम्ब्रिसिलस* उपलब्ध थे ।

3. मवई झील

इस झील में तलछटीय जन्तुओं की उपलब्धता विभिन्न ऋतुओं में 98 से 1140/वर्ग मी. तक पाई गई तथा इनका औसत 747/वर्ग मी. रहा । इस झील में तलछटीय जन्तुओं के प्रजाति/उपजाति की संख्या सर्वाधिक 11 थी । विभिन्न वर्गों की उपलब्धता के प्रतिशत को विश्लेषण करने पर पाया गया कि मवई झील में मोलस्क वर्ग का वर्चस्व (92.07%) तथा इसके पश्चात् कीट वर्ग (7.93%) के जन्तु थे । झील में केंचुआ वर्ग की कोई प्रजाति नही मिली । इस झील में मोलस्क वर्ग के प्रमुख प्राणियों में *वेलमिया बेंगालेंसिस, बेलामिया क्रसा, लिम्निया एकुमिनाटा* तथा *गाइरोलस* थे । कीट वर्ग में मुख्यतः *काइरोनोमस डिम्भ, टबानस, गोम्बस* एवं *नेपा* आदि पाये गये ।

4. रामपुर नरबी झील

इस झील में तलछटीय जन्तुओं की उपलब्धता उपरोक्त तीनों झीलों की तुलना में सबसे अधिक 264 से 5456/ वर्ग मी. के बीच और औसत 2119/वर्ग मी. था । संपूर्ण झील के तलछटीय जन्तुओं में मोलस्क का प्रतिशत 98.85, केंचुआ का 0.70 तथा कीट वर्ग का 0.45 था। इस प्रकार संपूर्ण तलछटीय जन्तुओं की विविधता के विश्लेषण से पता चलता है कि रामपुर नरबी झील में केवल 7 प्रजातियाँ /उपजातियाँ ही उपलब्ध थीं । विभिन्न वर्गों की प्रजातियों में मोलस्क वर्ग में *वेलमिया बेंगालेसिस, बेंगालेसिस क्रसा* तथा *गाइरोलस* प्रमुख थें जबकि केंचुआ वर्ग में *ब्रांचिपूरा* तथा कीट वर्ग में *गोम्फस* उपलब्ध थे ।

जैव कार्बनिक पदार्थों के विघटन के पश्चात् झीलों के तलछट में विघटित पदार्थों का जमाव होने लगता है जिसे डेट्राइटस भी कहा जाता है । यह पदार्थ एक महत्वपूर्ण खाद्य संरचना को जन्म देते हैं । इस श्रृंखला के अंतर्गत विघटित कार्बनिक पदार्थों का उपयोग तलछटीय जन्तुओं द्वारा किया जाता है । इस श्रृंखला के अगली कड़ी में ये जन्तु मांसाहारी मछलियों का भोजन बनते हैं और इस प्रकार तलछट में जलीय पादपों के विघटन तथा जलागम क्षेत्र से एकत्रित विघटित कार्बनिक पदार्थ मत्स्य उत्पादन को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं जिसके लिये झील के समस्त जैविक तथा अजैविक घटकों की उपस्थिति के अनुसार वैज्ञानिक उपाय किये जा सकते हैं ।

आभार

शोध परियोजना के सुचारू संचालन हेतु दिये जा रहे सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिये लेखकगण निदेशक, केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता के आभारी हैं ।

संदर्भ

एडमन्सन, डब्लू टी तथा जी.जी.विन्बर्ग, 1971 : ए मैन्युल ऑन द प्रोडक्टिविटी इन फ्रेशवाटर । ब्लैकवेल साइंटिफिक पब्लिकेशन, ऑक्सफोर्ड, पृष्ठ सं. 358 ।

जॉर्ज, एम. आर. 1964 : लिम्नालोजिकल इन्वेस्टीगेशन ऑफ पौंड प्लांक्टॉन, मेक्रोफौना एण्ड केमिकल कॉन्स्टुएण्ट ऑफ वाटर एण्ड देयर बियरिंग ऑन फिश प्रोडक्शन । डी.फिल थिसिस , कलकत्ता विश्वविद्यालय ।

भौमिक, एम. एल. 1968 : एन्वायरनमैंटल फैक्टर्स एक्वैटिंग फिश फूड इन फ्रेश वाटर फिशरीज, कल्याणी विश्वविद्यालय । पृष्ठ सं. 238 ।

झारखण्ड में सामुदायिक तालाबों की मत्स्य पालन में भूमिका

रजनी गुप्ता [1],वन्दना श्रीवास्तव [1] एवं रमाकान्त सिंह [2]

1. *संत कोलम्बस महाविद्यालय, हजारीबाग, 825301*
2. *केन्द्रीय वर्षाश्रित उपजाऊँ भूमि चावल अनुसंधान केन्द्र हजारीबाग, 825301, झारखण्ड*

झारखण्ड राज्य प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण होने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के जल स्त्रोतों से भी भरा हुआ है । इन जल स्त्रोतों में सामुदायिक तालाबों का अपना एक विशिष्ठ स्थान है । झारखण्ड राज्य के 33315 गाँवों में सामुदायिक तालाबों का जाल बिछा हुआ है । तालाबों की उपलब्धता के विपरीत गाँववासियों को मछली की उपलब्धता राष्ट्र स्तर से 20% के आस-पास या इससे भी कम है । इससे यह आभास होता है कि तालाबों की उपलब्धता तथा मछली उत्पादकता में काई विषेश सम्बन्ध नही है । इस परिस्थिति में इन तालाबों में विशाल जल क्षेत्र की उत्पादकता प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर राष्ट्रीय स्तर से कम क्यों है ? इस शोधपत्र में रामगढ़ के सामुदायिक तालाब का वैज्ञानिक अध्ययन करके तालाबों में मछली की कम उत्पादकता के कारणों पर प्रकाश डाला गया है ।

तालाब की संरचना

अध्ययन के लिए चुना गया तालाब हजारीबाग जिले से 50 कि.मी. दक्षिण, 23.28^0 उत्तर और 85.34^0 पूर्वी अक्षांस के बीच तथा समुद्रतल से 334.43 मी. की उँचाई पर स्थित है । तालाब की अन्य विशेषतायें तालिका 1 में वर्णित की गयी हैं।

तालिका - 1. तालाब की संरचना

विशिष्टता	वर्णन
स्थान	बंगाली टोला, रामगढ़ कैन्ट
क्षेत्रफल	12400 वर्ग मी.
गहराई (अधिकतम) गहराई (न्यूनतम)	4 मी 0.25 मी.
आस-पास	धानखेत, सब्जीखेत, नीम, शीशम, पलास गुलमोहर के पेड़, खटाल तथा आवासीय घर
जल स्त्रोत	वर्षा तथा नाले का पानी
पोषक तत्व	वर्षा जल से मिट्टी का बहकर आना, पेड़ की पत्तियाँ एवं जानवर के मल-मूत्र
वनस्पति	थेथर (आइपोमिया) एवं जलीय घास
जीव	घोंघा
उपयोग	मछली पालन, पशुओं की सफाई, नहाना एवं धोना

शोध विधि

तालाब के जल की गुणवत्ता के अध्ययन के लिए जल एवं प्लवक के नमूने सुबह 7 से 8 बजे के बीच महीने के दोनो पखवाड़ों में जनवरी 1999 से दिसम्बर 2000 तक लिए गये । जल के रासायनिक एवं भौतिक गुण तथा प्लवकों का गुणात्मक एवं संख्यात्मक विश्लेषण आदर्श विधि द्वारा किया गया । साथ ही साथ तालाब में मछली पालन के लिए किए जा रहे प्रयासों तथा मछली उत्पादकता को भी अंकित किया गया ।

परिणाम

तालाब जल के भौतिक एवं रसायनिक गुण तालिका 2 में दिये गये हैं । तालाब का पानी क्षारीय, जिसके कारण कम मात्रा में घुलनशील कार्बन डाइ आक्साइड का पानी में होना दर्शाता है । जल में घुलनशील आक्सीजन की मात्रा प्रचुर है । तालाब का जल वर्षाकाल के महीने में कम पारदर्शी रहता है क्योंकि जल स्राव से बहकर आयी मिट्टी पानी को अपरदर्शी बना देती है । ठण्डक के महीने में पानी की पारदर्शिता बढ़ जाती है ।

तालिका - 2 तालाब जल के भौतिक तथा रसायनिक गुण

गुण	मान
1. पारदर्शिता	6.5-60.5 से.मी.
2. तापमान	12-29.5^0 से. ग्रे.
3. पी एच	7-9
4. घुलनशील कार्बनडाइआक्साइड	0-1 पीपीएम
5. घुलनशील आक्सीजन	6.6-11.2 पीपीएम
6. क्षारीयता	40-92 पीपीएम

तालाब के जल में प्लवक की सान्द्रता 0.01 से 5.5 एमएल प्रति 50 लीटर पानी मापी गयी । तालाब में दो प्रकार के प्लवक पाये गये 1) जन्तु प्लवक 2) पादप प्लवक ।

जन्तु प्लवकों की तुलना में पादप प्लवकों की संख्या अधिक पायी गयी । प्लवकों की कम संख्या या दोनो प्लवकों में असामान्य अनुपात के कारण सकल प्राथमिक उत्पादन तथा वास्तविक प्राथमिक उत्पादन बहुत अधिक नहीं पाया गया । कभी-कभी वास्तविक प्राथमिक उत्पादन मात्र शून्य ही रहा । तालाब के जल में प्लवक की सान्द्रता, संख्या तथा प्राथमिक उत्पादन तालिका 3 में दर्शाया गया है ।

तालिका - 3. जल में प्लवकों की सान्द्रता, संख्या तथा उत्पादकता

गुण	मात्रा
प्लवक सान्द्रता	0.01-5.5 एम.एल प्रति 50 लीटर
पादप प्लवक की संख्या	28-638 प्रति 50 लीटर
जन्तु प्लवक की संख्या	0-324 प्रति 50 लीटर
सकल प्राथमिक उत्पादन	25-275 मि.ग्रा. कार्बन/क्यू.मी/घंटा
वास्तविक प्राथमिक उत्पादन	0-175 मि.ग्रा. कार्बन/क्यू.मी./घंटा

तालाब में पाये जाने वाले पादप एवं जन्तु प्लवकों को विभिन्न समूहों एवं वंशों में भी विभाजित किया गया । समूहों में तीन (साइनोफाइसी) पादप प्लवक तथा दो (रोटीफर्स् क्रसटेसियन्स) जन्तु प्लवक प्रमुख थे । विभिन्न प्रमुख समूहों एवं वंशों को तालिका में दिया गया है ।

तालिका 4. प्लवकों के प्रमुख समूह एवं वंश

समूह	
पादपप्लवक	
1. साइनोफाइसी	*माइक्रोसिस्टस, स्पाइरूलिना, एनावेना ।*
2. क्लोरोफाइसी	*वोलावाक्स, यूडोरीना, युलोथ्रीक्स, स्पाइरोगाइरा*
3. वेसीलिरोफाइसी	*डाइटम, सिनेड्रा, नेवीक्यूला, साइक्लोटिला*
जन्तुप्लवक	
1. रोटीफर्स	*केरेटिला, ब्रोकियोनस*
2. क्रस्टेसियन्स	उप-समूह 1 : कोपीपॉड : *साइक्लोप्स, डाइप्टोमस, लिम्नोकैलिस, केन्थोकेम्पस* और *इनके नाँपलाइ ।* उप-समूह 2 : आसट्रोकोडा : *साइप्रीस, साइप्रीडोपसिस* उप-समूह 3 : क्लेडोसेरा : *डेफनिया, डाइफेनोसोमा, सीडा*

तालाब की मिट्टी जो वर्षा के मौसम में जल के साथ बहकर आती है और तलहटी में जमा होती रहती है, इसके अध्ययन से मालूम हुआ कि तलहटी में जमा मिट्टी अम्लीय होने के साथ-साथ कार्वनिक पदार्थों, स्फुर और पोटाश की मात्रा में भी कम है । मिट्टी की गुणवत्ता तालिका 5 में दर्शायी गयी है ।

तालिका - 5 तालाब की मिट्टी की गुणवत्ता

गुण	मूल्यांकन
पी एच	5.6-6.4
कार्बन	0.51-0.70%
उपलब्ध स्फुर	27.5-42.2 कि.ग्रा./हे.
उपलब्ध पोटाश	110.5-133.8 कि.ग्रा./हे.

इस तालाब में मछुआरों द्वारा मछलियों का संचयन, उनका पकड़ना तथा बिक्री का संचालन होता है । मछुआरों से प्राप्त जानकारी के अनुसार प्रति वर्ष 45 कि.ग्रा. जीरा तालाब में संचय किया जाता है जिसकी गणना 72580 जीरा प्रति हेक्टेयर के लगभग आता है । तालाब में कतला, रोहू, म्रिगल, कॉमन कार्प और सिल्वर कार्प के जीरों का संचयन किया जाता

है । वर्ष में मात्र 20 कि.ग्रा. चूने का ही प्रयोग होता है। इस प्रबन्धन के आधार पर पाली गयी मछलियों का विवरण तालिका 6 में प्रस्तुत किया गया है ।

तालिका - 6 तालाब में मछली उत्पादन

मछली	वजन (ग्रा.)	लम्बाई (से.मी.)	पैदावार (कि.ग्रा. /हे.)
कतला	610-630	35.2-36.0	806-1209
रोहू	626-660	36.0-36.3	
म्रिगल	620-626	40.0-42.0	
कॉमन कार्प	710-840	40.0-41.0	
सिल्वर कार्प	712-715	40.6-41.3	

विवेचना

झारखण्ड राज्य के संथाल परगना, उत्तरी छोटानागपुर, दक्षिणी छोटानागपुर एवं पलामू प्रमण्डलों में क्रमशः तालाबों की संख्या 5252, 2149, 6233 तथा 2306 है जिनका कुल क्षेत्रफल 10,050 हे. है । इन सभी तालाबों की मत्स्य उत्पादकता बहुत ही कम है । कम मत्स्य उत्पादकता के मुख्य कारण तालाबों के रख-रखाव में कमी जैसे

- किसी प्रकार के उर्वरक का प्रयोग न करना ।
- गोबर की खाद का प्रयोग बिल्कुल नहीं ।
- चूना न डालना ।
- मत्स्य जीरा/अंगुलिकाओं का तालाबों में संचय न करना ।
- संचय किए जाने वाले जीरों की संख्या तथा विभिन्न मछलियों के अनुपात के ज्ञान का अभाव ।
- शुद्ध जीरों की उपलब्धता में कमीं ।

अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि तालाब की उर्वरता का मुख्य स्त्रोत वर्षा के जल के साथ बहकर आने वाली मिट्टी ही है । तालाब के जल की रासायनिक, भौतिक, जैविक गुणवत्ता, मछली पालने के लिए वैज्ञानिकों द्वारा निर्धारित गुणवत्ता से बहुत ही कम है । इसका कारण है तालाब की मिट्टी में स्फुर, पोटाश तथा जैविक पदार्थ की कमीं । बनर्जी (1967) के अनुसार मिट्टी में कार्बन की मात्रा उपयुक्त/निर्धारित मात्रा से बहुत ही कम है । इस तरह

झारखण्ड में पाये जाने वाले तालाब तृतीय श्रेणी के अधीन वर्गीकृत किए जाँएगे । अध्ययन यह भी दर्शाता है कि मछलियों की अच्छी उत्पादकता के लिए तालाब के जल में प्लवकों की सांद्रता 1 मि.ली. प्रति 50 लीटर पानी (झिंगरन,1983) होनी चाहिए । परन्तु झारखण्ड के तालाबों में प्लवकों की सांद्रता बहुत ही कम है । इसका कारण है तालाब में जैविक पदार्थों की कमी । अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि झारखण्ड में उपलब्ध तालाबों में प्रचुर मात्रा में मत्स्य उत्पादन किया जा सकता है यदि :

1. तालाबों का रख-रखाव वैज्ञानिक विधि से किया जाय ।
2. कार्वनिक एवं रासायनिक खादों की उचित मात्रा का प्रयोग हो ।
3. शुद्ध जीरों/अंगुलिकाओं का उचित अनुपात में तालाब में संग्रहण सुनिश्चित किया जाय ।
4. चूने का उचित मात्रा में प्रयोग हो ।
5. मछली पालकों/मछुआरों को मछली पालन तकनीक का प्रशिक्षण ग्राम-सभा स्तर पर किया जाए ।

सारांश

झारखण्ड राज्य 33315 गाँवों में औसतन हर गाँव में या एक या दो गाँव मिलाकर एक तालाब है । परन्तु गाँववासियों को मछली उपलब्धता राष्ट्रीय स्तर से 20% के आस-पास है । तालाबों की उत्पादकता 60 से 600 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष है जबकि तालाबों की संख्या संथालपरगना मण्डल में 5252, उत्तरी छोटानागपुर प्रमण्डल में 2149, दक्षिणी छोटानागपुर मण्डल में 6233 तथा पलामू मण्डल में 2306 है। इन तालाबों का क्षेत्रफल क्रमशः 2389, 2525, 4789 एवं 349 हे. है । गाँव में मुख्य रूप से सामुदायिक तालाब व्यक्ति विषेश के अधीन होते हुए भी उसका उपयोग पूरा गाँव करता है । उत्पादकता को ध्यान में रखकर रामगढ़ के सामुदायिक तालाब का वैज्ञानिक अध्ययन 1999 एवं 2000 में किया गया । अध्ययनात्मक निष्कर्षों के आधार पर सामुदायिक तालाबों के जल की गुणवत्ता सामान्य या सामान्य से कम पायी गयी । तालाब के जल में घुलनशील आक्सीजन, पी एच, कार्वन डाईआक्साइड, तापमान एवं क्षारीयता सामान्य पायी गई जब कि जन्तु प्लवक की मात्रा पर्ण प्लवक से कम थी । जल में नत्रजन एवं स्फुर की मात्रा सामान्य से बहुत निम्न थी । इसका कारण है तालाब में जल प्रवाह के साथ बहकर आने वाली मृदा अम्लीय होने के कारण इन तत्वों से परिपूर्ण न होना । विपरीत परिस्थितियों के साथ-साथ जीरों/अंगुलिकाओं की उचित मात्रा तालाब में संचय न होने पर भी 1999 एवं 2000 वर्ष में औसतन मछली उत्पादन क्रमशः 1200 और 800 कि.ग्रा. प्रति हे. प्रति वर्ष था । परिणामों से आभास होता है कि सामुदायिक

तालाबों को यदि किसानों के संसाधनों के द्वारा ही वैज्ञानिक विधियों से प्रयोग में लाया जाए तो तालाबों की मत्स्य उत्पादकता दो से तीन गुणा बढ़ाई जा सकती है।

संपर्कित सन्दर्भ

बनर्जी, एस.एम. 1967 : *वाटर क्वालिटी एण्ड स्वायल कन्डीशन आफ फिश पान्ड इन सम स्टेट्स आफ इन्डिया इन रिलेशन टू फिश प्रोडक्शन । इन्डियन जर्नल आफ फिशरीज, 14 : 115-144*

झिंगरन, वी.जी. 1985 : *फिश एण्ड फिशरीज आफ इन्डिया । थर्ड एडिशन । हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कारपोरेशन दिल्ली ।*

जलकृषि एवं जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान

हेमलता पन्त
बायोवेद शोध एवं प्रसार केन्द्र
103/42, मोतीलाल नेहरू मार्ग, इलाहाबाद - 211002

सारांश

जलकृषि जलीय संवर्धन का लोकप्रिय नाम है । हिन्दी में एक्वाकल्चर को जलीय संवर्धन या जलकृषि के नाम से जाना जाता है । इस विषय के अंतर्गत वे समस्त जीव-जन्तु या वनस्पतियाँ आते हैं जिनका उत्पादन और पालन जल के भीतर किया जाता है जैसे - मछली, झींगा, केकड़ा और शैवाल । जलकृषि एक बहुपयोगी व्यवसाय है जहाँ जलीय उत्पादन भोजन के अतिरिक्त अन्य कार्यकलापों में भी उपयोग होता है, जैसे - सूक्ष्म शैवाल, औषधि निर्माण, रंगीन मछलियाँ, पादपभक्षी मछलियाँ, जलीय घासों के उन्मूलन में छोटी मछलियों का चारे के रूप में उपयोग, सीप का मोती बनाने में तथा अन्य जीवों का रसायन व बायोगैस ।

स्वतंत्रता के समय जहाँ भारत में मत्स्य उत्पादन 7.52 लाख टन था वह 2000-01 में बढ़कर 56.56 लाख टन हो गया । आज भारत में अंतर्स्थलीय एवं समुद्रीय दोनों ही क्षेत्रों में लगभग 72 लाख लोग मत्स्य व्यवसाय से संलग्न हैं जिसमें से 24 लाख मछुआरे पूर्ण रूप से इससे जुड़े हुये हैं तथा भारत इस क्षेत्र में 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि के साथ विश्व में तीसरे स्थान पर पहुँच गया है । इस व्यवसाय में हमें 6500 करोड़ रू. की विदेशी मुद्रा की आय हो रही है । भारत में प्रति व्यक्ति मत्स्य खपत लगभग 9 कि.ग्रा./वर्ष है । सकल घरेलू उत्पाद में इसका योगदान 1.4 प्रतिशत है । मछली व इससे बने उत्पाद की माँग पूरे विश्व में निरंतर बढती जा रही है और विश्वस्तरीय कारोबार में भी इसका विस्तार होता जा रहा है । भारत में मत्स्य व्यवसाय की अपार संभावनायें हैं इसलिये यदि हमें मत्स्य उत्पादन में विश्व की अग्रणी कतार में खड़ा होना है तो अनुसंधान की अति आधुनिक तकनीक का उपयोग करना होगा । भारत में मात्स्यिकी अनुसंधान हेतु 8 राष्ट्रीय संस्थान हैं, साथ ही समस्त राज्यों के मत्स्य निदेशालय व विस्तार एजेंसियाँ, केन्द्रीय मात्स्यिकी शिक्षा संस्थान, मुंबई के साथ ही 34 कृषि विश्वविद्यालयों में तथा 12 मात्स्यिकी विद्यालयों में मत्स्य शिक्षा व अनुसंधान के कार्य किये जा रहे हैं । उच्च तकनीक और जैव प्रौद्योगिकी द्वारा मत्स्य पालन का विस्तार किया जा सकता है । इस पद्धति

में संकर बीजों का प्रयोग, उच्च कोटि का भोजन, कृत्रिम खाद, ऑक्सीजन की पूर्ति, उपापचय पुरश्चक्रण तथा बीमारियों पर रोक आदि प्रक्रियायें शामिल हैं । जैव प्रौद्योगिकी द्वारा अब एक ही लिंग की मछली पैदा की जा सकती है, इस तरह ट्रिप्लाइडी, टूट्राप्लाइडी एवं पॉली प्लाइडी मछलियाँ भी तैयार करने में भी सफलता मिली है । मच्छरों से होने वाली बीमारियों से बचने के लिये मछली का ' जैव नियंत्रक कारक ' के रूप में उपयोग हो रहा है । इसके प्रयोग से मच्छरों को नष्ट करने के लिये गम्बूसिया जैसी मछली पालन से स्वास्थ्य व पर्यावरण के बचाव में सुधार हो रहा है । तिलैपिया मछली व कैटफिश के अण्डों में सूक्ष्म अंतःक्षेपित संवृद्धि हारमोन जीनों एक निष्पीड़न के माध्यम से पराजीनी मछली का उत्पादन तकनीक का मानकीकरण कर दिया गया है । इस प्रणाली से मछलियों में वृद्धि का प्रतिशत 20-60 तक बढ़ गया है ।

जैव प्रौद्योगिकी ने मत्स्य पालन में बहुत अधिक गुणवत्ता पैदा की है । मछली की अति उपयोगी जातियों को प्राप्त करने के लिये हैचरी उत्पादित अन्तः प्रजनन समूहों में आपसी संकरण से संकर ओज बढ़ाकर उत्पादन दर बढ़ाने का प्रयास जारी है । व्यावसायिक जातियों जैसे कतला, रोहु, नैन तथा विदेशी मूल की मछली सिल्वर, ग्रास तथा कॉमन कार्प के अनेक संकरण युग्मों द्वारा नई संकर प्रजातियों का विकास किया जा रहा है जिसमें पौष्टिक तत्वों की मात्रा अधिक है । केन्द्रीय मीठा जल जीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर में रोहु के विभिन्न प्रजातियों को एकत्रित कर एक संकर प्रजाति को तैयार किया गया है । ऐसी एक परियोजना राष्ट्रीय मत्स्य अनुसंधान संस्थान ब्युरो, लखनऊ और हिमाचल प्रदेश के मत्स्य विभाग द्वारा संचालित जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार की एक परियोजना के तहत सामान्य कार्य समूहों की मछलियो का अनुवांशिक अध्ययन करके संकर मछली को विकास करने का प्रयास जारी है । नये युग्मकों का हिमानी संरक्षण, ड्रॉप्सी एवं एपीजुटिक अल्सर सिन्ड्रोम दूर करने का प्रयास किया जा रहा है । मछलियों के रोगों को पता लगाने के लिये मोनोक्लोनल एंटीबॉडीज पर आधारित इम्युनोडाइग्नोस्टिक किट्स भी तैयार किये गये हैं । मछलियों में जीवाणुओं व विषाणुओं से होने वाले रोगों की रोकथाम के लिये टीके भी तैयार किये गये हैं । तिलापिया, ट्राउट, रोहू, कॉमन कार्प व जेब्रा मछलियों में जीन स्थानांतरण एवं अंतर्वेषण किया जा चुका है ।

श्रृम्प के सफेद दाग सिन्ड्रोम के लिये पी.सी.आर. पर आधारित वैज्ञानिक प्रणाली का विकास किया गया है । एरोमोनास प्रजातियों एवं स्युडोमोनास के संक्रमण में मत्स्य रोगाणुओं के विरूद्ध टीकों का विकास किया गया है । पशुचारे में प्रयोग करने के लिये रोगमुक्त किण्वन सिल्कवर्म प्युपी साइलेज को बनाने की प्रक्रिया का विकास किया गया है । केन्द्रीय मीठा जल जीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेवर में 250 कि.ग्रा./घण्टा गोलियाँ बनाने की क्षमता वाला एक चारा एकक की स्थापना की गई है । समुद्री जीवों से जैव संक्रिय मिश्रणों का विकास करने के लिये कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं ।

प्रस्तावना

मछलियाँ तथा मात्स्यिकी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग हैं । सामाजिक उत्थान के दृष्टिकोण से इनका विशेष महत्व है क्योंकि किसी भी देश के विकास हेतु ग्रामीण अर्थव्यवस्था का सुदृढ होना आवश्यक है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार सार्थक आर्थिक विकास तभी संभव है जब स्थानीय तौर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को यथोचित उपयोग किया जाय । इस संदर्भ में मात्स्यिकी की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है विशेषकर भारत के परिपेक्ष में जहाँ 70 प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है । पूरे विश्व में मछलियों की लगभग 30,000 प्रजातियाँ पाई जाती हैं जिसमें से टेलियोस्ट की ही लगभग 20,000 प्रजातियाँ हैं । जन्तु जगत में कीटों के बाद मछलियों का स्थान दूसरा है केशरूकी जन्तुओं में इनका योगदान 45 प्रतिशत है ।

आज की सबसे बड़ी आवश्यकता जल कृषि अनुसंधान की दिशा में समयानुसार यथोचित परिवर्तन करने की है जिसकी सबसे महत्वपूर्ण विधा जैव प्रौद्योगिकी है । इसके प्रयोग से जल कृषि विकास में अपार संभावनायें हैं । मात्स्यिकी अनुसंधान के 50 वर्ष के अनुसंधान के इतिहास में अनेक लाभकारी प्रणालियों को विकसित किया गया है जिसके फलस्वरूप मत्स्य उत्पादन में दस गुना से अधिक की वृद्धि हुई है । आजकल जैव प्रौद्योगिकी विधा को अपनाकर एवं ठोस प्रबंधन प्रणालियों का विकास कर देश में ' नीलक्रांति ' के सपनों को साकार किया जा सकता है और यह तभी संभव होगा जब हमारा प्रयास एकाकी न होकर सामूहिक हो तथा वैज्ञानिक, अनुसंधानकर्ता, प्रबंधक, अधिकारी तथा किसान एकजुट होकर जल कृषि एवं उत्पादन के लिये कार्य करें ।

विश्व में जल कृषि में सर्वोच्चतम सफलता पीनिड झींगों के संवर्धन को माना जाता है । सन् 1970 में इन झींगों का उत्पादन न के बराबर था पर सन् 1986 में यह 565000 मेट्रिक टन हो गया जो कुल उत्पादन का 26% था । आज विश्व के 40 से भी अधिक देशों में इन झींगों का पालन करीब 11 लाख हे. क्षेत्र में किया जाता है । चीन, इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, फिलीपिन्स एवं एक्वाडोर में इसका उत्पादन कुल झींगा उत्पादन का 80% होता है ।

जलकृषि की दो प्रमुख प्रणालियाँ हैं - 1. समुद्रीय जलकृषि 2. अंतर्स्थलीय जलकृषि ।

समुद्रीय मछलियों के प्रमुख उत्पादक देश निम्नलिखित हैं -

1.	चीन	-	12.8 प्रतिशत
2.	पेरू	-	11 प्रतिशत
3.	जापान	-	8 प्रतिशत
4.	चिली	-	7.8 प्रतिशत
5.	अमेरिका-		6.1 प्रतिशत
6.	रूस	-	4.4 प्रतिशत
7.	भारत	-	3 प्रतिशत

स्वच्छ जल की मछलियों के प्रमुख उत्पादक देश निम्नलिखित हैं :

1.	चीन	-	52.8 प्रतिशत
2.	भारत	-	12.3 प्रतिशत
3.	बांग्लादेश	-	5 प्रतिशत
4.	इंडोनेशिया	-	3.6 प्रतिशत

समुद्रीय जलकृषि

समुद्रीय जल में 96.5% पानी एवं 3.5% नमक होता है । यद्यपि यह जल मानव जीवन के लिये प्रत्यक्ष रूप से उपयोगी नही है परन्तु इस जल के कई लाभ हैं । इसके अलावा समुद्र में 60 से भी अधिक तत्व विद्यमान होते हैं जिसमें से कई व्यावसायिक दृष्टिकोण से उपयोगी हैं । इन तत्वों में नमक, मैग्नीशियम, ब्रोमाइड, सोना, पोटैशियम, यूरेनियम आदि हैं ।

समुद्र में मछलियों एवं झींगों के साथ ही सीपियाँ, खीरें, कछुयें व शैवाल भी पाये जाते हैं जो आर्थिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं तथा जिनपर विस्तृत अनुसंधान की आवश्यकता है । सन् 1991 में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय जल जीव पालन पर आयोजित सम्मेलन में यह बात सामने आई कि सन् 2025 तक विश्व की जनसंख्या 1.5 अरब हो जायेगी । वर्तमान (1997) में समुद्रीय प्रग्रहण से 8.70 करोड़ टन मछलियाँ प्राप्त हो रही हैं जो कि 2025 तक 10 करोड़ टन तक पहुँच जायेगी ।

अंतर्स्थलीय जलकृषि

अंतर्स्थलीय जलकृषि से सन् 1997 में विश्व के कुल मत्स्य उत्पादन का लगभग 23.5% भाग अर्थात् 20.8 मिलियन टन प्राप्त किया गया । चीन स्वच्छ जल का सबसे बड़ा उत्पादक देश है जो कुल उत्पादन का 52.8% है ।

भारतीय जलकृषि - भारत के पास अथाह जल संपदा है । स्वतंत्रता के समय जहाँ समुद्रीय उत्पादन 5.34 लाख टन था वह अब बढ़कर लगभग 28.10 लाख से 28.46 लाख टन हो गया है । इसी प्रकार अंतर्स्थलीय मत्स्य उत्पादन 2.18 लाख से बढ़कर 28.48 लाख टन हो गया है । भारत में भी वार्षिक उत्पादन लगभग 30 मेट्रिक टन है । स्वच्छ जल का 12.3% उत्पादन केवल भारत में ही होता है जो विश्व में कुल उत्पादन का 3% है ।

भारत के प्रमुख राज्यों का मत्स्य उत्पादन

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी	समुद्रीय मात्स्यिकी	कुल मत्स्य उत्पादन
पश्चिम बंगाल - 879230	गुजरात - 620474	पश्चिम बंगाल - 1060230
आंध्र प्रदेश - 407186	केरल - 566571	गुजरात - 660735
बिहार - 222160	महाराष्ट्र - 402838	केरल - 651805
उत्तर प्रदेश - 208286	तमिलनाडु - 367838	आंध्र प्रदेश - 589688
असम - 158620	आंध्र प्रदेश - 182502	महाराष्ट्र - 526104

संदर्भ

भारतीय मात्स्यिकी, डा. एस.एस.एच. आबिदी, डा. सुधीर रायजादा, राजेश्वर उनियाल : मनोरमा इयर बुक, 2003

जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान

जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान से मत्स्य पालन के क्षेत्र में अधिक उत्पादन करके जलकृषि के तीव्र विस्तार के लिये अत्यधिक अवसर प्रदान करते हैं ।

हमारा शरीर स्वच्छ व सुदृढ़ रखने के लिये जंतुओं से प्राप्त होने वाला प्रोटीन की आवश्यकता होती है । परंतु मछलियों से प्राप्त होने वाली प्रोटीन स्वास्थ्य के लिये अति उत्तम समझा जाता है । इसकी कमी उसके नियमित सेवन के बिना पूरी नही हो पाती । मछली पालन के क्षेत्र में अच्छी मात्रा में पौष्टिक तत्वों वाली मछलियों का उत्पादन बढ़ाने के लिये इन्ड्यूस्ड ब्रिडिंग काम में लाई जा रही है जिसके तहत मादा की जनन क्षमता को उत्प्रेरित करने वाली हार्मोंस को किसी भी तरीके से अधिक कार्यकारी बना दिया जाता है । इससे अण्डे व भेंक शिशुओं का अच्छा उत्पादन होता है । वयस्क में यह संभरण प्रोटीन की मात्रा को भी बढ़ा देता है । अच्छे नस्ल की संकर मछली की प्राप्ति के लिये गायनोजेनेसिस, इण्डोजेनेसिस, पॉलीप्लाइडी, ट्रासजेनेसिस का सहारा लिया जा रहा है । नये वाह्य अंतःवेक्षण द्वारा एक नई मत्स्य वंश परंपरा को जन्म देने की कोशिश की जा रही है । इस तरह के प्रयोगों से यह उम्मीद की जा रही है कि इस किस्म की मछलियाँ सामान्य मछलियों की तुलना में ज्यादा बड़ी व भारी होंगी । मछलियों में संकरीकरण या चयन प्रक्रिया द्वारा नस्ल सुधार तभी संभव है जब प्रजनकों से भरपूर आनुवांशिक विविधता हो अन्यथा संकरीकरण या चयन प्रक्रिया द्वारा अपेक्षित सुधार नही किया जा सकता है । अतः आनुवांशिक विविधता मत्स्य सुधार के लिये आवश्यक है । इस प्रकार मात्स्यिकी के उत्पादन में वृद्धि एवं मत्स्य संरक्षण की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है । आनुवांशिक संरक्षण के लिये प्रथम आवश्यकता है वर्तमान आनुवांशिक संरचना का ज्ञान जिससे कि भविष्य में होने वाले परिवर्तन का आंकलन किया जा सके । इसके लिये योग्य वैज्ञानिकों के अलावा अन्य संसाधनों की भी आवश्यकता होगी ।

मात्स्यिकी अनुसंधान में ऐसे तो अनेक सफलतायें प्राप्त हुई हैं लेकिन अनुसंधान की वर्तमान कार्यनीति ऐसी होनी चाहिये कि जलीय संसाधनों का संरक्षण करते हुये उसके प्रबंधन के लिये उचित प्रणालियों का विकास हो तथा साथ ही संसाधनों की उत्पादन क्षमता तथा प्राप्त उत्पादन के बीच वर्तमान में जो रिक्त स्थान है उसे भरा जा सके । निःसंदेह जैव प्रौद्योगिकी मात्स्यिकी उत्पादन में अपार संभावनायें लिये हुये है और इस दिशा में जैव प्रौद्योगिकी अनुसंधान कई संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में चल रहे हैं तथा उनके सार्थक परिणाम भी आ रहे हैं और कुछ अभी आने बाकी हैं ।

हजारीबाग एवं मत्स्य विविधता

वन्दना श्रीवास्तव[1], रजनी गुप्ता[1] एवं रमाकान्त सिंह[2]

1. जन्तुविज्ञान विभाग, सन्त कोलम्बस महाविद्यालय
   हजारीबाग, झारखण्ड
2. केन्द्रीय वर्षाश्रित उपजाऊँ भूमि चावल अनुसंधान केन्द्र
   हजारीबाग, झारखण्ड

परिचय

जलीय जीवों में मछली ही ऐसा प्राणी है जिसका मानव के साथ गहरा सम्बन्ध है । मछलियों में उपलब्ध प्रोटीन, विटामिन, पोषकतत्व, सरल एवं सुपाच्य होता है । हरित क्रान्ति के पश्चात, देश में नील क्रान्ति का आना, मछली पालन के महत्व को दर्शाता है । आज पूरे देश में मछली पालन एक व्यवसाय के रूप में उभर रहा है । सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थायें, शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में मत्स्य पालन के लिए लोगों को प्रोत्साहित कर रही हैं । मछली का सेवन मनुष्य को, विशेषकर महिलाओं को बहुत सी बीमारियों से बचा सकता है । साथ ही साथ मछली की अधिक पैदावार गाँववासियों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है । लेकिन इस दिशा में सफलता प्राप्त करने के लिए सुनियोजित ढंग से जल संसाधनों का वैज्ञानिक अध्ययन एवं उनका विकास, जिले में पायी जाने वाली मछलियों का अध्ययन एवं उनका संरक्षण तथा इन संसाधनों में वैज्ञानिक तकनीक द्वारा मत्स्य उत्पादन को बढ़ाने के लिए विकास करना होगा । उपयुक्त सन्दर्भ में इस शोध पत्र का उद्देश्य हजारीबाग जिले में प्राप्त मत्स्य विविधता का ज्ञान प्राप्त करना तथा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर जिले को मछली उत्पादन के क्षेत्र में विकसित करना है ।

शोध सामग्री एवं विधियाँ

मत्स्य विविधता की जानकारी के लिए, सर्वेक्षण कार्य जनवरी 2000 से दिसम्बर 2003 तक किया गया । इस कार्य के लिए 6 विकास प्रखण्डों में 9 अवतरण केन्द्रों का चयन किया गया । प्रत्येक अवतरण केन्द्र का प्रतिमाह चार बार भ्रमण किया गया । सभी अवतरण केन्द्रों से प्राप्त मछलियों के नमूनों को एकत्र कर 10% फार्मलीन में संरक्षित कर विस्तृत अध्ययन के लिए प्रयोगशाला में लाया गया । मछलियों के नमूने एकत्र करने के साथ-साथ, मछुआरों से जल स्त्रोतों, मछलियों के स्थानीय नाम इत्यादि की जानकारी भी प्राप्त की गयी । अवतरण केन्द्र के अतिरिक्त, अन्य जल स्त्रोतों का भी मत्स्य विविधता के ज्ञान के लिए सर्वेक्षण किया गया । विकास प्रखण्डों, अवतरण केन्द्रों एवं अन्य जल स्त्रोतों का विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है । प्रयोगशाला में लाये गये मछलियों के नमूनों की पहचान डे. (1971) तथा

मिश्रा (1952) द्वारा बतायी गई विधियों का अनुसरण करते हुए किया गया । हजारीबाग जिले की जलवायु सर्दी में खूब सर्दी, वर्षा ऋतु में खूब वर्षा तथा ग्रीष्म ऋतु में मध्यम गर्मी होती है । अध्ययन के वर्षों का तापमान, वर्षामाप, सूरज की चमक, तालिका 2 में दिया गया है ।

परिणाम

विभिन्न विकास प्रखण्डों, अवतरण केन्द्रों एवं अन्य जल स्त्रोतों से प्राप्त मछली के नमूनों के अध्ययन करने से ज्ञात हुआ कि मत्स्य विविधता का अतुल भण्डार है । मछलियों की पहचान के उपरांत प्राप्त आंकड़ों के आधार पर मछलियों के 7 वर्गों एवं परिवारों का विवरण तालिका 3 में दिया गया है । वर्गों एवं परिवारों के ज्ञान के पश्चात मछलियों को निम्नलिखित समूहों में विभाजित किया गया ।

1. भारतीय शफरी मछली
2. विदेशी शफरी मछली
3. पर्वतीय मछली
4. वायुश्वासी मछली
5. अल्प प्रधान मछली
6. अलंकारिक मछली
7. विरल मछली

भारतीय शफरी मछली समूह में 5, विदेशी शफरी मछलियाँ 5, पर्वतीय मछलियाँ 5, वायुश्वासी मछली 12, अल्प प्रधान मछलियाँ 21, अलंकारिक मछलियाँ 2 और विरल मछलियॉ 3 प्रकार की पायी गयी । पहचान की गई मछलियों का समूहवार वर्गीकरण, वैज्ञानिक तथा स्थानीय नाम तालिका- 4 से 9 में दर्शाया गया है ।

सारांश

अध्ययन से ज्ञात होता है कि हजारीबाग जिले की झीलों, तालाबों, जलाशयों, नदियों, धानखेतों, पहाड़ी जलधाराओं एवं छोटे-छोटे बरसाती गड्ढों में विविध प्रकार की मछलियाँ पल रही हैं । सर्वेक्षण से प्राप्त कुल मछलियों में से केवल 52 मछलियों की ही पहचान की जा सकी । 5 ऐसी मछली मिली जिसकी पहचान अभी तक नहीं हो पायी है । अध्ययन दर्शाता है कि हजारीबाग जिला मत्स्य विविधताओं से परिपूर्ण है । मछलियों के सम्पूर्ण ज्ञान के लिए जिलें के 15 प्रखण्डों में उपलब्ध जल स्त्रोतों का वैज्ञानिक अध्ययन अति आवश्यक है । अध्ययन से प्राप्त परिणाम, मत्स्य विविधता के संरक्षण में सहायक हो सकता है । साथ ही साथ मत्स्य उत्पादकता बढ़ाने और बेरोजगार युवकों को रोजगार प्रदान करने में योगदान कर सकता है ।

संदर्भ

डे.प्रान्सिस (1971), दी फिशरीज आफ इन्डिया. वा.II XX+778,पेज 114.

मिश्रा,के.एस. (1952), एन एड टू द आइडेन्टीफिकेशन आफ द फिशेस आफ इन्डिया,बर्मा एवं सिलोन.पेज 367-422,फिगर्स.1-30.

तालिका - 1. विकास प्रखण्डों एवं अवतरण केन्द्रों का विवरण

क.सं	प्रखण्ड	अवतरण केन्द्र	अन्य जल स्त्रोत
1	सदर	हजारीबाग झील दारू, झुमरा	कनहरी पहाड़ की तलहटी,कोनार नदी, बरसाती गड्ढे
2	माण्डू	चरही, माण्डू	तालाब
3	बरही	बरही	तालाब, धानखेत
4	बड़कागांव	बड़कागांव	तालाब, धानखेत
5	इचाक	इचाक	छोटे-छोटे तालाब
6	चन्दवारा	तिलैया बाँध	

तालिका - 2. हजारीबाग का मौसम

वर्ष	वर्षामाप (मि.मी)	सूरज की चमक (घंटा)	तापमान (से.ग्र)	
			अधिकतम	न्यूनतम
2000	1062	2730	29.1	16.3
2001	1114	2397	29.4	17.1
2002	716	2632	29.3	17.7
2003	1011	2607	29.1	16.1

तालिका - 3. मछलियों का वर्ग एवं पारिवारिक विवरण

क्र.सं.	वर्ग	परिवार
1	क्लूपीफोर्मिस	क्लूपिडी, नोटोप्टेरिडी
2	सिप्रीनी फोर्मिस, साइपीनीफार्मिस	सिप्रीनीडी, कोबिटीडी, सिलूरीडी, बग्रीडी, सिल्बीडी, क्लेरिडी, सेक्कोब्रैंकीडी
3	पर्सीफोर्मिस	सेन्ट्रोपोमिडी, सिच्लीडी, एनाबन्टीडी, गोबोडी
4	ओफिओसिफैलीफार्मिस	ओफिओसिफैलीडी
5	मस्टासिम्बीलीफार्मिस	मस्टासिम्बीलीडी
6	बेलोनीफार्मिस	बेलोनीडी
7	म्युगिलीफार्मिस	म्युगीलीडी

तालिका - 4. भारतीय शफरी मछलियों का वैज्ञानिक नाम एवं स्थानीय नाम

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम
1	कतला कतला	कतला
2	लेबियो रोहिता	रोहू, रोहिता
3	सिराहिना मृगला	मृगला, मृगला
4	लेबियो कालबासू	कालबासू
5	लेबियो बाटा	बाटा

तालिका - 5. विदेशी शफरी मछलियों का वैज्ञानिक एवं स्थानीय नाम

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम
1	हाइपोफथैलमिकथिस मोलीट्रिक्स	सिल्वर कार्प
2	साइप्रिनस कार्पियों किस्म कम्यूनिस	पहाड़ी मछली
3	साइप्रिनस कार्पियों किस्म स्पीक्यूलरिस	पहाड़ी मछली
4	टीनोफैरिंगडन आइडिला	ग्रास कार्प
5	तिलैपिया मोसाम्बिकस	तिलैपिया

तालिका - 6. पर्वतीय मछलियों का वैज्ञानिक एवं स्थानीय नाम

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम
1	गारा गोटिला	गारा
2	गारा कैम्पी	गारा
3	लेपिडोसेफालिकथिस गुंसिया	गुनटी मछली
4	निमाकायलस बोटिया	बोटिया
5	डेनियो रेरियों	जेबरा मछली

तालिका 7. वायुश्वासी मछलियों का वैज्ञानिक एवं स्थानीय नाम

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम
1	एनाबस टेस्टूडिनियस	कोय
2	क्लेरियस बैटेरेकस	मांगुर
3	चन्ना पंकटेटस	गरय, गरई
4	चन्ना मारूलियस	गरय, गरई
5	चन्ना स्ट्रीएटस	गरय, गरई
6	चन्ना गचुआ	गरय, गरई
7	हेटोरोपन्यूसटिस फौसिलिस	सिंघी
8	ओमपोक	पाबदा
9	वलैगो अट्टू	बवारी
10	मिस्टस सिंघाला	टेंगरा
11	नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस	फलाट
12	नोटोप्टेरस चिताला	फलाट, चित्तल

तालिका 8. अल्प प्रधान मछलियों का वैज्ञानिक एवं स्थानीय नाम

क्र.सं.	वैज्ञानिक नाम	स्थानीय नाम
1	अम्बासिस नामा	चन्दा
2	अम्बासिस रंगा	चन्दा, रंगा
3	एम्लीफरिंगंडन मोला	मोला
4	बैरीलियस बोला	भोला
5	सिराहीना रेवा	रेवा
6	इसोमस डैनरिकस	डेंडुआ
7	युट्रोपिक्थिस बाचा	पंकज, बच्चा

8	ग्लोसोगोबियस गायरिस	बुल्ला
9	मैकरोग्नैथस एकुलिएटस	बामी
10	मत्सासेम्बेलस आर्मेटस	बामी
11	मत्सासेम्बेलस पैंकेलस	बामी
12	मिस्टस ब्लीकरी	टेंगरा
13	मिस्टस कैवेसियस	टेंगरा
14	मिस्टस वायटेत्स	टेंगरा
15	आक्सीगैस्टर बकायला	चलवा
16	ओस्टीओब्रेमो कोटिओ	गुर्दा
17	पुन्टिअस टिक्टो	पोठी, पोठिया
18	पुन्टिअस स्टिगमाटा	पोठी, पोठिया
19	पुन्टिअस टिक्टो	पोठी, पोठिया
20	राइनोम्युगिल कोरसूला	मोरला
21	ट्राइकोगैस्टर फैसिएटस	तितली

तालिका 9. अलंकारिक एवं विरल मछलियों का वैज्ञानिक एवं स्थानीय नाम

क्र.सं.	**वैज्ञानिक नाम**	**स्थानीय नाम**
1	अलंकारिक मछली 1. ट्राइकोगैस्टर लैलिअस 2. डेनिओ रेरिओ	तितली मछली जेबरा मछली
2	विरल मछली 1. ऐलिआ कोइला 2. गुडिसिया चपरा 3. जेनेन्टोडन कैनसिला	 मिन्टी सिहिया कौआ मछली

इको कार्प हैचरी का सुगम संचालन एवं बीज उत्पादन तकनीक के नये आयाम

सत्यदेव गुप्ता, धनन्जय कुमार वर्मा, विकास चन्द्र महापात्रा एवं सुरेश चन्द्र
केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान
कौशल्यागंगा, भुवनेश्वर - 751002

सारांश

देश में अंतर्स्थलीय मत्स्य पालन में उल्लेखनीय विकास के चलते मत्स्य बीज की माँग निरंतर बढ़ रही है । यद्यपि उत्प्रेरित प्रजनन विधि का विकास सन् 1957 में हुआ लेकिन इन विधियों का मत्स्य उत्पादकों के बीच प्रचलित होने में लगभग दो दशक का समय लग गया । प्रारंभिक चरणों में हापा फिर ग्लास जार एवं 80 के दशक में चीन से गोलाकार हैचरी तकनीक जिसे देश में इको हैचरी के नाम से जाना जाता है, के आने से व्यावसायिक स्तर पर मत्स्य बीज उत्पादन सहज हो गया । सघन, अर्धसघन मत्स्य पालन के फैलाव से उत्तम गुणवत्ता के मत्स्य बीज की बढ़ती माँग केवल वर्षा आधारित प्रजनन द्वारा पूरी नही की जा सकती थी । केन्द्रीय मीठा जलजीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर ने बहुप्रजनन तकनीक का विकास किया है जिसमें वर्षा से पूर्व मार्च से लेकर वर्षा के बाद सितम्बर तक मत्स्य प्रजनन कार्य सम्भव हो जाता है । मछलियों में समय से पूर्व लैंगिक परिपक्वता प्राप्त करने के लिये संचय दर 1000-1500 कि.ग्रा./हें. ट्रेस तत्व, विटामिन ई, विटामिन सी, 30% तक प्रोटीन युक्त संतुलित आहार का 1-3% वजन के अनुसार का नियमित प्रयोग तथा प्रतिमाह 20-30% जल बदलाव अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । 2+ या 3+ वर्ष के आयु की मछलियाँ जो एक बार प्रजनन कर चुकी हैं, प्रोफेशनल प्रजनक के रूप में मानी जाती हैं । लम्बी अवधि तक जनन ग्रन्थि की परिपक्वता इस तरह की मछलियों में प्राप्त की जा सकती हैं । हैचरियों से बढ़ते मत्स्य बीज उत्पादन से कुछ समस्यायें भी हैं जिनमें उत्तरजीविता दर, वृद्धि दर एवं रोग निरोधक क्षमता में कमी देखी गई है । इसमें दबाव की भी प्रमुख भूमिका है । इसमें सुधार के लिये योजनाबद्ध तरीके से शिशु काल से भिन्न-2 पालन चरणों में प्रजनकों का चयन इनका उचित प्रबंधन एवं पालन मत्स्य बीज में गुणात्मक सुधार ला सकता है । प्रतिवर्ष 20-30% भावी प्रजनकों को बहते जल क्षेत्रों से एकत्रित कर हैचरी प्रक्षेत्र में पालन करने से इन समस्याओं का समाधान संभव है । इसके अतिरिक्त नर और मादा का अनुपात 1:2 के बजाय 1:1 करने से भी अन्तःकरण दबाव को कम किया जा सकता है । प्रजनकों के नस्ल सुधार के लिये केन्द्रीय मीठा

जलजीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर द्वारा विकसित हिमकृत शुक्राणु तकनीक कम खर्चीली एवं लाभप्रद है जिसका प्रयोग देश के कई हैचरियों में किया गया है ।

प्रस्तावना

देश में अंतर्स्थलीय मत्स्य पालन के विकास के कारण मत्स्य बीज की माँग निरंतर बढ़ रही है । सन् 1960 तक देश का कुल कार्प बीज नदियों से संग्रह करके पालन हेतु उपयोग किया जाता था । कार्प उत्प्रेरित प्रजनन विधि का विकास सन् 1957 में होने के बावजूद इस तकनीक को मत्स्य उत्पादकों के बीच प्रचलित करने में दो दशक लग गये । 70 के दशक में उत्प्रेरक मत्स्य प्रजनन के विकास के बाद अंडों के निषेचन का कार्य हापा में होता था । तत्पश्चात् इसके लिये विभिन्न आकार के ग्लास जार का प्रयोग किया जाने लगा । 80 के दशक में चीन से गोलाकार हैचरी तकनीक का भारत में स्थानांतरण हुआ । भारत में इसे ' इको हैचरी ' के नाम से जाना जाता है । इस हैचरी में अधिक अण्डा उत्पादन होता है और साथ ही इसमें कम मानव श्रम की जरूरत पड़ती है और किसानों द्वारा इसे आसानी से संचालित किया जा सकता है । इसलिये अब पूरे देश में बीज उत्पादन हेतु इको हैचरी का संचालन होने लगा है और मत्स्य बीज की अधिकांश आपूर्ति इसी हैचरी द्वारा की जा रही है । व्यावसायिक मत्स्य बीज उत्पादन हेतु हजारों कार्प हैचरी प्रक्षेत्रों का निर्माण किया गया है । अर्द्धसघन व सघन मत्स्य पालन के तकनीक का विस्तार होने से वर्षा आधारित मत्स्य बीज की मांग वर्षा से पूर्व व इसके बाद भी रहती है । इस समय कई कार्प हैचरी का संचालन लगभग बंद रहता है । मत्स्य पालकों द्वारा उत्पादित मत्स्य बीज की वृद्धि में कमी, उत्तरजीविता दर में कमी एवं रोग रोधक क्षमता में कमी की शिकायत सुनने में आ रही है जिससे कई हैचरी में बीज के माँग में कमी आती जा रही है । हमारे देश में हैचरी संबंधित शोध पर ध्यान नही दिया जाता है । कई हैचरी पानी के आपूर्ति के अभाव में बंद पड़ गई है । कहीं जल प्रदूषण के कारण मत्स्य बीज की मृत्युदर बढ़ गई है जिसके कारण हैचरी अपनी क्षमता से कम उत्पादन कर रही है । परिणामस्वरूप हैचरी संचालक को मत्स्य बीज व्यवसाय से काफी घाटा हो रहा है । अतः हैचरी संचालक को जरूरत है उन सभी बिन्दुओं पर ध्यान देने की जिससे कि लम्बी अवधि तक बीज उत्पादन का कार्य चले । प्रजनक प्रबंधन में बदलाव लाकर उन्नत नस्ल एवं उच्च वृद्धि वाले मत्स्य बीज का उत्पादन सुनिश्चित हो सके एवं जल की उपलब्धता, बचत एवं जल का पुनःचक्रण इत्यादि पर विशेष ध्यान, जिससे सुचारू रूप से लम्बी अवधि तक मत्स्य बीज उत्पादन का व्यवसाय चलता रहे ।

आज के समय की माँग को देखते हुये यह आवश्यक है कि लम्बी अवधि तक मत्स्य बीज की उपलब्धता को सुनिश्चित रखा जा सके । इसके लिये आवश्यक है कि हैचरी संचालक अपने प्रक्षेत्र पर वर्षा आधारित मत्स्य प्रजनन प्रणाली की पुरानी पद्धति को अपनाये । इस

बहुप्रजनन तकनीक से वर्षा से पूर्व मार्च से लेकर वर्षा बाद सितंबर तक मत्स्य प्रजनन का कार्यक्रम चलता रहता है । बहुप्रजनन प्रणाली की सफलता मुख्यतः मछलियों की अकाल परिपक्वता, सघन अण्डा प्रतिक्रिया एवं मछलियों की उचित देख-रेख है ।

मछलियों में समय से पहले परिपक्वता प्राप्त करने के लिये वैज्ञानिक पद्धति से प्रजनक मछली का पालन करना होगा । इसके लिये आवश्यक है कि चयनित भावी प्रजनक मछलियों को 1000 से 1500 कि.ग्रा./हे. की दर से 1-5 मी. गहरे जल वाले तालाब में संचित किया जाए । जनन ग्रंथि के विकास में संतुलित आहार का प्रमुख योगदान पाया गया है । संतुलित आहार में प्रोटीन की मात्रा 30% के साथ ट्रेस तत्व, विटामिन ई एवं विटामिन सी का होना आवश्यक होता है । परिपूरक आहार की मात्रा 1 से 3% मछलियों के वजन के हिसाब से उपयोग किया जाता है । प्रजनक तालाब में जल का बदलाव जननग्रंथि के विकास में एक अहम् भूमिका अदा करता है । तालाब में प्रति महीना 20-30% जल का बदलना मछलियों को परिपक्वता प्राप्त करने में सहायक होता है । पानी के बदलाव के लिये बहते नहर का जल काफी उपयुक्त होता है ।

जननग्रंथि की परिपक्वता को लम्बी अवधि तक प्राप्त करने के लिये बीज प्रक्षेत्र में प्रजनक मछलियों का प्रबंधन आवश्यक है । वे मछलियाँ जो 2+ या 3+ वर्ष के आयु की हैं और जो एक बार प्रजनन कर चुकी हैं, प्रोफेशनल प्रजनक के रूप में मानी जाती हैं । ये मछलियाँ वर्जिन फिश से पहले परिप क्वता प्राप्त करती हैं । अच्छी बीज उत्पादन दर की प्राप्ति हेतु 5+वर्ष की आयु के अंदर वाली प्रजनक मछलियों का उपयोग उचित होगा । परिपक्व प्रजनक मछलियों को प्रजनन कार्यक्रम हेतु लम्बी अवधि तक नही रखा जा सकता । अतः इसका प्रजनन कराने के बाद स्पेंट फिश का उचित प्रबंधन कर पुनः परिपक्वता 35-65 दिनों के अंदर प्राप्त की जा सकती है । स्पेंट फिश के प्रबंधन हेतु प्रजनन के बाद मछली का सावधानी से परिवहन कर तालाब में संचित किया जाता है, संचय से पूर्व रोगप्रतिरोधक उपायों के रूप में पोटैशियम परमैंगनेट का 5 पी.पी.एम. के दर से घोल देते हैं । यह ट्रीटमेंट महीने में एक या दो बार अवश्य करें । इस प्रकार मार्च से सितंबर तक मछलियों का 2 से 3 बार प्रजनन कराकर लम्बी अवधि तक बीज उत्पादन किया जा सकता है ।

आजकल प्रायः कार्पपालन हैचरी द्वारा उत्पादित बीज पर ही निर्भर करता है । परन्तु इस बीज की गुणवत्ता में निरंतर कमी की शिकायत सामने आ रही है । अगर इस दिशा में सही कदम नही उठाया गया तो मत्स्य व्यवसाय के लिये नुकसानदायक हो सकता है । अतः हैचरी संचालक को चाहिये कि योजनाबद्ध तरीके से उन्नत गुणवत्ता वाले मत्स्य बीज के उत्पादन हेतु उन्नत प्रजनकों का प्रबंधन एवं प्रजनन पद्धति पर विशेष ध्यान दें । मत्स्य बीज गुणवत्ता में कमी

का मुख्य कारण अन्तःप्रजनन का दबाव है । कई छोटे-बड़े हैचरियों में अन्तःप्रजनन की दरों का आंकलन किया गया एवं बढ़ते स्तर पर चिंता व्यक्त की गई है । अक्सर हैचरी संचालक मछलियों को कई वर्षों तक उत्प्रेरित प्रजनन कराते हैं एवं इन्हीं बीजों को पुनः भावी प्रजनकों के रूप में इस्तेमाल करते हैं जिससे अपने ही कुटुम्बों में प्रजनन कराने से पीढ़ी-दर-पीढ़ी मत्स्य उत्पादन में कमी आई है । अन्तःप्रजनन दबाव की स्थिति उनकी उत्तरजीविता, वृद्धि दर और रोग निरोधक क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है जिससे संभावित उत्पादन भी बुरी तरह प्रभावित हो सकता है । अन्तःप्रजनन दबाव की वर्तमान संभावनाओं पर काबू पाने के लिये आवश्यक है कि भावी प्रजनकों का चयन प्रक्रिया को शिशु अवस्था से ही आरंभ कर दिया जाय । इस प्रक्रिया में अनेक जीरा संवर्धन तालाबों से प्रथम चरण में ही अच्छी वृद्धि वाले जीरों का चयन कर अंगुलिकाओं का संवर्धन करते हैं । अंगुलिका अवस्था में फिर द्वितीय चयन कर प्रौढ़ मछली को पालन के लिये रखते हैं । प्रौढ़ अवस्था में ही सक्षम प्रजनकों का चुनाव कर लेते हैं । अन्तःप्रजनन दबाव पर नियंत्रण पाने के लिये संभव हो सके तो हर वर्ष 20-30 प्रतिशत भावी प्रजनकों को प्राकृतिक जलाशयों, नदियों की अंगुलिकाओं या प्रौढ़ को हैचरी में लाकर पाला जाय । प्राकृतिक जलाशयों से कार्प अंगुलिकायें एकत्रित करना एक कठिन कार्य है । गुणवत्ता बनाये रखने के लिये प्रजनन प्रबंधन तकनीक काफी उपयोगी होगी । साथ ही प्रजनन के लिये अधिक संख्या में प्रजनकों का रख-रखाव, हैचरी प्रजनन कुंड में नर व मादा का अनुपात के 2:1 के बजाय 1:1 करने से काफी हद तक अन्तःप्रजनन के दबाव को नियंत्रित किया जा सकता है । प्रजनकों के नस्ल सुधार की प्रक्रिया को सबल बनाने में हिमकृत शुक्राणु बहुत लाभप्रद हो सकता है । यह तकनीक कम खर्चीली व संभावित उपाय है । केन्द्रीय मीठा जलजीव पालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर द्वारा विकसित की गई नर शुक्राणु को हिमकृत करने की तकनीक का उपयोग देश के कई हैचरियों में किया जा रहा है ।

देशी मागुर (क्लेरियस बैटट्रेकस) कैटफिश का सफल प्रेरित प्रजनन

सी.एस.चतुर्वेदी, एस.अय्यप्पन* एवं ए.के.यादव
केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, लखनऊ केन्द्र, लखनऊ
**उपमहानिदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली*

प्रस्तावना

भारत में मत्स्य पालन उद्योग के रूप में प्राचीनकाल से प्रचलित रहा है । इस क्षेत्र में कार्प मछलियों का पालन एवं प्रजनन का कार्य बहुत प्रगतिशील रहा है । अब समय है कि मत्स्य पालकों को कार्प मछलियों से हट कर एक नई दिशा दिखाई जाये जिससे कि उनका भविष्य अत्यधिक उज्जवल व सुखमय हो । इसके लिये "कैटफिश" विडॉल मछलियों के पालन एवं प्रजनन पर ध्यान देना होगा । कैटफिश की माँग पूरे देश में हर जगह है । कैटफिश - सिंघी, मांगुर आदि की बढ़ती हुई माँग को पूरा करना असंभव तो नही परन्तु कठिन अवश्य है । इस दिशा में भारत सरकार के मत्स्य संस्थानों का योगदान प्रशंसनीय रहा है ।

देशी मागुर एक ऐसी मछली है जिसकी माँग पूरे भारतवर्ष के कोने-कोने में बनी हुई है । यही कारण है कि यह वर्ष के कुछ महीनों में 200-300 रू. प्रति किलो पर भी उपलब्ध नही हो पाती है क्योंकि अभी भी हमारे मत्स्य पालकों ने इसका उत्पादन शुरू नही किया है तथा विगत कुछ वर्षों से थाई मागुर नाम की सौतेली मछली इसकी पैदावार कम करती चली जा रही है । यदि समय पर ध्यान नही दिया गया तो संभवतः आने वाले समय में देशी मांगुर विलुप्त हो सकती है तथा इसके केवल जीवाश्म ही रह जायेगें ।

क्लेरियस *बैक्ट्रेकस* कैटफिश की श्रेणी में आता है और इसे हम माँग, गुण व पैदावार के अनुसार "कैशफिश" भी कह सकते हैं क्योंकि यह नकदी फसल की तरह हमारे मत्स्य पालकों को लाभान्वित कर सकती है । इस मछली का प्रजनन राधास्वामी व सुन्दरराज (1957) ने कराया तथा विदेशी वैज्ञानिक वानी चाकोसन (1964) तथा लाटड प्रेशन्ट ने पालन के बारे में दिखाया । हमारे वैज्ञानिक खान तथा मुखोपाध्याय (1972) ने प्रजनन कराया परन्तु इसकी उत्तरजीविता का प्रतिशत दर कम रहा । तदोपरान्त 1991 में पिल्लै, देहादराय तथा ठाकुर ने

प्रजनन में सफलता प्राप्त की । परन्तु ये सभी कार्य प्रयोगशाला तक ही सीमित रहे । मत्स्य पालकों को इसका पूरा लाभ नही मिल सका । केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान का लखनऊ केन्द्र, इसके सफल बीज उत्पादन के पश्चात् मत्स्य पालकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण देकर, कैटफिश हैचरी का निर्माण कर तकनीकी मार्गदर्शन प्रदान कर रहा है जिससे कि "*कैटफिश*" की तरफ मत्स्य पालकों का ध्यान आकर्षित किया जा सके और इसका उपयोग व्यावसायिक स्तर पर हो सके ।

देशी मांगुर एक वर्ष बाद परिपक्वता ग्रहण कर लेती है । परिपक्व होने के समय 150-200 ग्राम तक वजन ग्रहण कर लेती है । इस मछली का प्रजनन काल मई-जून होता है तथा यह वर्ष में केवल एक बार ही धान के खेतों तथा दलदलीय क्षेत्रों में प्रजनन करती है । परन्तु प्राकृतिक प्रजनन में मत्स्य बीजों की उत्तरजीविता बहुत कम होती है अतः यह आवश्यक हो जाता है कि इन मछलियों को नियंत्रित वातावरण में प्रेरित प्रजनन कराकर मत्स्य बीज की उत्तरजीविता को 90% तक प्राप्त किया जा सकता है ।

उपकरण व प्रजनन विधि

संस्थान द्वारा निर्मित हैचरी में गत् वर्षों से विभिन्न प्रयोगों में 25,000 अंगुलिकाओं का उत्पादन कर, जिसका मूल्य रु. 25,000/- है, निजी मत्स्य पालकों को वितरित किया गया । प्रजनकों को उच्च प्रोटीन युक्त भोजन दिया गया । सिंघी के नर व मादा प्रजनकों को 2 :1 के अनुपात में प्रजनन हेतु रखा गया । परिपक्व प्रजनकों को पूर्व निर्धारित मात्रा में ओवाप्रिम का एक इंजेक्शन दिया गया तथा 10-12 घन्टें पश्चात् प्रजनन पूल से निषेचित अण्डों को हैचरी में रखा गया ।

मांगुर मछलियों को चयन के उपरान्त प्रजनन टैंक में रखा गया । नर मछली से टैस्टिज को निकाल कर सोडियम क्लोराइड के 0.9% घोल में रखकर विलयन तैयार किया गया । उस घोल की सहायता से मादा से प्राप्त अण्डों को कृत्रिम रूप से निषेचन कराया गया । इन प्रयोगों के अंतर्गत 2-3 बार अण्डों को साफ पानी से धोया गया तथा अतिरिक्त मिल्ट व खराब अण्डों को निकाल दिया गया । अच्छे अण्डों को मांगुर हैचरी के हैचरी टब में 5000 अण्डा/टब की दर से रखा गया है । अण्डों से जीरा निकलने की प्रक्रिया के दौरान इन्हें लगातार बहते पानी के "फ्लोथ्रोसिस्टम" के साथ हैचरी में रखते हैं । इस हैचरी में पानी कुलिंग टावर फुआरों से होता हुआ आता है जिससे पानी में ऑक्सीजन की मात्रा अच्छी 6-8 पी.पी.एम. बनी रहती है । 26-32 घन्टों के पश्चात् अण्डों में टूचिंग मोमेंट शुरू हो जाता है ।

देशी मांगुर के अंडज काफी छोटे होते हैं इनके शरीर में योकसैक के कारण हिलने-डुलने में कठिनाई होती है । ये किनारों का सहारा लेकर एकत्रित हो जाते हैं । ये अंडज अपना भोजन योकसैक से ग्रहण करते हैं तथा यह प्रक्रिया चार दिनों तक चलती रहती है । पाँचवे दिन जब योकसैक खत्म हो जाता है तब इन जीरों को प्राकृतिक भोजन पर निर्भर रहना पड़ता है । इस अवस्था में इन्हें अण्डों का कस्टर्ड व प्लवक भोजन के रूप में दिया जाता है ।

अब हैचरी से प्राप्त जीरों को संवर्धन हेतु गोल सीमेंट के टैंकों में 10 दिनों के लिये डाल दिया जाता है जहाँ वायुकरण तथा पानी के बदलने की सारी सुविधा रहती है । इस दौरान ग्यारहवें दिन के बाद इनमें वायुश्वासी अंगों का निर्माण हो जाता है ।

परिणाम व विवेचना

देशी मांगुर (क्लेरियस बैक्ट्रेकस) के प्रेरित प्रजपप द्वारा वर्ष 1999-2000 से 2003 के मध्य किये गये विभिन्न प्रयोगों में यह निषेचन का प्रतिशत 80 तथा हैचिंग 90 प्रतिशत तक रहा । स्ट्रिपिंग के लिये शुष्क स्ट्रिपिंग विधि का प्रयोग किया गया । देशी मांगुर के हैचलिंग के योकशैक को पूर्ण रूप से घुलने में 80 से 96 घंटे का समय लगा । ऐसा देखा गया कि योकशैक के घुलने का समय पानी तथा वातावरण के तापक्रम पर भी निर्भर रहा । इन प्रयोगों के दौरान यह देखा गया कि औवाप्रिम का इन्जेक्शन दी गई मछलियों से अण्डे पूर्णतया परिपक्व हुये तथा मछली के पेट में अण्डे शेष नही रहे । देशी मागुर के जीरों को 1 मी. व्यास के गोलाकार सीमेंट टैंकों में रखकर फ्राई तक पाला गया । अधिकतर जीरे प्रकाश से दूर भागते रहे जिसके लिये टैंकों में उनके छिपने के लिये प्लास्टिक के पाइप के टुकड़े तथा अन्य वस्तुयें रखी गई । केन्द्र द्वारा पुनर्निर्मित मांगुर हैचरी में हैचिंग का प्रतिशत 90 तक रहा जो इसके पूर्ण प्रभावी एवं अच्छी उत्तरजीविता को दर्शाता है ।

देशी मांगुर (क्लेरियस बैक्ट्रेकस) का प्रेरित प्रजनन भारतवर्ष में राधास्वामी तथा सुन्दरराज (1957), झिंगरन (1964), और चौधरी (1957) ने पीयूष ग्रन्थि के घोल देकर करवाया । तत्पश्चात् कोआरिल (1986) में पीयूष ग्रन्थि का घोल तथा डोयानिन का मिश्रण देकर तथा कोहली ने 1990 व आलोक आदि ने 1993 में एल.एच.आर.एच. इन्टागोनिस्ट डोमपीरेडाम के साथ प्रेरित प्रजनन किया । केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान लखनऊ केन्द्र, लखनऊ में देशी मांगुर का प्रजनन ओवाप्रिम को 0.3 से 0.4 मि.ली./100 ग्रा. वजन के अनुसार मादा मागुर को देकर करवाया गया । इन प्रयोगों में निषेचन का प्रतिशत 80 तक रहा । कुछ प्रयोगों में नर मछली को 0.2 मि.ली./100 ग्रा. के अनुसार ओवाप्रिम का इन्जेक्शन दिया गया तथा देखा गया कि ऐसा करने पर निषेचन का प्रतिशत अच्छा रहा । यह अन्य लोगों द्वारा किये गये

प्रयोगों के परिणामों की तुलना में बेहतर है । उक्त प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ओवाप्रिम या उसके जैसे हारमोन का उपयोग करके प्रेरित प्रजनन द्वारा देशी मांगुर (क्लेरियस *बैक्ट्रेकस*) के बीसों का उत्पादन केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान द्वारा बनाई गई हैचरी के द्वारा बहुत ही कम लागत से किया जा सकता है जिससे प्रदेश तथा देश में मांगुर के बीज की माँग व आपूर्ति के लिए काफी लाभकारी होगा ।

आभार

लेखकगण डॉ. एस. सी. मुखर्जी. निदेशक, केन्द्रीय मत्स्य शिक्षा संस्थान, मुम्बई एवं डॉ. एम. पी. सिंह कोहली, प्रधान वैज्ञानिक, मुम्बई के उनकी सहायता एवं मार्गदर्शन के लिये आभारी हैं ।

सन्दर्भ

रामास्वामी, एल.एस. तथा वी. आई. सुन्दरराज (1957) : इन्ड्युस्ड स्पॉनिंग इन द कैटफिश क्लेरियस नेचरवाइज सिफटिन 123-1060

खान, एच. ए. तथा एस. के. मुखापाध्याय (1957) : प्रोडक्शन ऑफ स्टार्किंग मैटेरियल ऑफ सम एयरब्रिडिंग फिशेज वाई हाइपोफाइजेशन ज. इन्लैण्ड फिश सोसायटी ऑफ इंडिया । 6 : 156-169 ।

देहादराय, पी.वी., एम. वाई. कमाल तथा के.के. दास (1985) : पैकेज ऑफ प्रैक्टिस फॉर प्रोडक्शन ऑफ एयरब्रिडिंग फिशेज एक्वाकल्चर एक्सेटेशन मैनुअल न. 3 1.14 सेन्ट्रल फिशरीज रिसर्च इन्स्टीट्युट, बैरकपुर ।

कोहली, एम. पी. एस. (1989) : नेचुरल ब्रीडींग ऑफ एयरब्रिडिंग फिशेज इन अण्डमान एंड निकोबार आईलैण्ड । जं अण्डमान साइंस एसो. वोल्युम 5 पृष्ठ सं 96-97 ।

नन्दीशा एम. सी., एस.के. दास, ई. नाथन, सी.टी.जे. वर्गीज तथा एच. पी. शेट्टी (1989) : ओवाप्रिम एन यु ड्रग फॉर इन्ड्युस्ड ब्रीडींग ऑफ कार्पस फिशेज चाइम्स । 13-15 ।

त्रिपाठी एस. डी. (1990) : प्रेजेन्ट स्टेटस ऑफ ब्रीडींग एण्ड कल्चर ऑफ कैट फिश इन साउथ अफ्रीका, पेरिश, फ्रांस, गुकियर, विल्लस वोल्युम 115, पृष्ठ सं 219-228 ।

कैटफिश (देशी मांगुर) की विशेषतायें

1.	माँग	:	अत्याधिक, पूरे भारत में
2.	प्रोटीन	:	21 प्रतिशत
3.	हिमोग्लोबिन (रक्त)	:	अधिक
4.	आयरन	:	अधिक
5.	विटामिन	:	+++ बी1, बी2 , डी
6.	मिनरल	:	++
7.	प्रोटीन क्वालिटी	:	शीघ्र सुपाच्य
8.	म्युकस	:	एन्टी फंगस
9.	स्वाद	:	उत्तम/लज्जतदार
10.	खाने में	:	कम काँटे वाली
11.	उपयोग	:	गर्भावस्था में (महिला)
12.	फिशसीड का मूल्य	:	1 रू., 2 रू. व 3 रू.
13.	एक लाख सीड का मूल्य	:	रू. 1,00,000
14.	एक नग फिश	:	रू. 20 से रू. 30 प्रति नग
15.	मूल्य	:	रू. 200-300 प्रति किलो
16.	जीवन क्षमता	:	अधिक
17.	मछली बाजार में	:	जीवित अवस्था में बिक्री
18.	फिशसीड	:	अत्याधिक माँग
19.	पैदावार	:	5-100 टन/ हे.
20.	कोलेस्ट्राल	:	न्यूनतम
21.	वसा	:	कम
22.	रोग प्रतिरोधक क्षमता	:	दमा के रोगी हेतु लाभकर
23.	प्रजनन मत्स्यबीज संवर्धन	:	लाभकारी
24.	लागत	:	कार्प से कम खर्च
25.	मत्स्य पालक	:	करोड़पति (कैशफिश)

तालिका - 1 प्रेरित प्रजनन हेतु मांगुर प्रजनकों का विवरण

क्र.सं	दिनांक	लिंग	प्रजनकों का भार	प्रजनन / परिणाम	निषेचित अण्डे	निषेचित प्रतिशत	हैचलिंग संख्या
1.	24.8.99	9	140	प्रजनन	2000	80	1600
2.	25.8.99	9	150	प्रजनन	2000	60	1200
3.	31.8.99	9	170	प्रजनन	3800	60	2280
4.	02.9.99	9	160	प्रजनन	3000	50	1500
5.	28.9.99	9	200	प्रजनन	1500	60	900
6.	29.9.99	9	150	प्रजनन	1500	60	900
7.	30.9.99	9	140	प्रजनन	1800	50	900
8.	1.10.99	9	130	प्रजनन	1400	60	840
9.	2.10.99	9	120	प्रजनन	1600	60	960
10.	3.10.99	9	140	प्रजनन	2000	60	1200

तालिका - 2. प्रेरित प्रजनन हेतु मागुर प्रजनकों का विवरण

क्र.सं	दिनांक	लिंग	प्रजनकों का भार	प्रजनन / परिणाम	निशेचित अण्डे	निशेचित प्रतिशत
1.	21.7.2000	9	110	प्रजनन	1600	80
2.	22.7.2000	9	0.90	प्रजनन	1400	60
3.	23.7.2000	9	100	प्रजनन	1800	60
4.	23.7.2000	9	120	प्रजनन	2000	50
5.	28.7.2000	9	100	प्रजनन	1800	60
6.	29.7.2000	9	120	प्रजनन	2000	60
7.	30.7.2000	9	0.80	प्रजनन	1400	50
8.	01.8.2000	9	0.90	प्रजनन	1600	60
9.	03.8.2000	9	0.80	प्रजनन	1400	60

तालिका - 3. प्रेरित प्रजनन हेतु मांगुर प्रजनकों का विवरण

क्र.सं	दिनांक	मछलियों का भार (ग्रा.)		तापक्रम (से. ग्रे.)		कुल निशेचित अण्डे	हैचिंग	स्पॉन
(अ)		*नर*	*मादा*	*पानी*	*हवा*			
1.	3.8.01	120 0.80	120	26.5	28.2	2000	90	1800
2.	7.8.01	0.90 100	100	26.6	28.6	2200	90	1980
3.	14.8.01	110 110	150	27.0	29.2	2200	80	1760
4.	21.8.01	0.90 130	120	26.5	28.6	2500	80	2000
5.	28.8.01	140 120	140	26.8	29.4	2600	70	1820
6.	29.8.01	100 80	90	27.2	29.8	1500	80	1200
(ब) हैचिंग सीमेन्ट टब में								
1.	7.8.01	80 90	100	26.8	29.1	4400	40	1760

भारतीय प्रमुख विडाल मछलियों का प्रजनन एवं पालन

सत्यदेव गुप्ता, धनन्जय कुमार वर्मा, विकास चन्द्र महापात्रा एवं सुरेश चन्द्र
केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान
कौशल्यागंगा, भुवनेश्वर - 751002

सारांश

विडॉल मछलियाँ अपने अधिक माँग, उपभोक्ता की पसंद होने के कारण भारतीय बाजार में कीमती मछलियों में से एक हैं । *वालागो अट्टू, मिस्टस ए. ओर* एवं *पंगेशियस पंगेशियस* आदि बड़ी विडॉल मछलियाँ हैं जो नदी एवं जलाशयों की मात्स्यकी में अपने व्यवसायिक माँग के कारण जानी जाती हैं । इनकी माँग भारत के पश्चिमोत्तर एवं पूर्वोत्तर राज्यों में अधिक है । वर्तमान समय में नदियों एवं बड़े जलाशयों में बढ़ते प्रदूषण, अंधाधुंध शिकारमाही के कारण प्रमुख विडॉल मछलियों के उत्पादन में बहुत गिरावट आई है । अपने देश में बड़ी विडॉल मछलियों का पालन व्यवसायिक स्तर पर लगभग ना के बराबर है । इसका मुख्य कारण इनके बीज की अनुपलब्धता है । विडॉल मछलियों के पालन में एक बड़ी परेशानी है इनके शुरू के जीवन काल से ही स्वजातिभक्षण स्वभाव का होना जिससे सामान्य पालन में अधिक मृत्युदर पाई जाती है । देश में इन मछलियों की माँग को देखते हुये केन्द्रीय मीठाजल जीवपालन अनुसंधान संस्थान, भुवनेश्वर ने आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण विडॉल मछलियों की विभिन्न प्रजातियाँ जैसे *वालागो अट्टू, मिस्टस ए. ओर* एवं *पंगेशियस पंगेशियस* का सफलतापूर्वक बीज उत्पादन तकनीक विकसित की है जिनका विस्तार से उल्लेख किया गया है ।

वालागो अट्टू का बीज उत्पादन

वालागो अट्टू एक बड़ी विडॉल मछली है जो भारतीय मीठाजल की शार्क मछली के नाम से जानी जाती है । यह मुख्यतः गंगा नदी तन्त्र की व्यावसायिक मछली है जो मत्स्य

प्रग्रहण में हमेशा पाई जाती है । यह काफी बड़ी आकार में लगभग 2 मी. लम्बी तथा 45 कि.ग्रा. वजन (तलवार व झिंगरन, 1991) तक पाई गई है ।

एक वर्ष से अधिक के आयु वाले *वालागो अट्टू* परिपक्व हो जाती है और 0.8 कि.ग्रा. से अधिक वजन वाली मछलियाँ प्रजनन के लिये उपयोग की जाती हैं । परिपक्व मादा *वालागो अट्टू* की पहचान पेक्टोरल पंख के प्रथम रश्मि की निचली सतह मुलायम एवं जेनाइटल पेपिला गोलाईयुक्त मोटा मांसीय होती है जबकि नर के पेक्टोरल पंख के प्रथम रश्मि की निचली सतह खुरदरा एवं जेनाइटल पेपिला पतला एवं नुकीला होता है । परिपक्व प्रजनकों का पालन-पोषण 0.04 हे. क्षेत्र वाले तालाब में 3000 संख्या/हे. के दर से संचय कर प्रतिदिन बकरी का अंतरांग (Goat viscera) और घोंघे के माँस 3.5% मछली के वजन की दर से आहार का प्रयोग करते हैं । इसके अलावा जीवित खाद्य के रूप में जीवित छोटी मछली जैसे *ग्लोसोगोबियस गिओरिस, पुन्टियस* प्रजाति, *नोटोप्टेरस* इत्यादि को प्रजनक तालाब में छोड़ दिया जाता है । वालागो अट्टू वर्षा के समय ही प्रजनन करती है । वर्षाकाल में परिपक्व मादा को कार्प पियूष ग्रंथि का घोल 4-18 मि.ग्रा./कि.ग्रा. मछली के वजन के अनुसार दो सूई 6 घंटे के अंतराल पर या ओवाप्रिम की एक खुराक 0.5 मि.ग्रा./कि.ग्रा. के हिसाब से दिया जाता है । नर मछली को पियुष ग्रंथि का 6-8 मि.ग्रा./कि.ग्रा. वजन के अनुसार एक सुई दी जाती है । चयनित नर एवं मादा को हारमोन्स की सुई के उपरांत प्रजनन के लिये छोड़ दिया जाता है । *वालागो अट्टू* के अंडे कॉमन कार्प के अंडे की तरह ही चिपकने वाला होता है । पियूष ग्रंथि में दूसरी सूई देने के 4-5 घंटे बाद एवं ओवाप्रिम के 7-8 घंटे बाद अण्डोत्सर्जन प्रारंभ होता है । अण्डोत्सर्जन से ठीक दो घंटे पहले हल्का जल का बहाव किया जाता है । प्रजनन टैंक में अंडों के चिपकने के लिये अधस्तर के रूप में लकड़ी का पट्टा या जलमग्न पौधे जैसे हाइड्रिला दिए जाते हैं । प्रजनन समाप्ति के बाद अंडे से चिपके अधस्तर को इन्कुबेसन हेतु हैचिंग हापा या हैचिंग कुंड में रखते हैं । इस विधि से अंडा संग्रह करने में बहुत ही परेशानी एवं कम बीज की प्राप्ति होती है इसलिये स्ट्रिपिंग विधि अधिक उपयुक्त होता है । यदि मादा का जनन छिद्र गुलाबी रंग का हो तो मान लेना चाहिये कि अब यह स्ट्रिपिंग विधि के लिये तैयार है । मादा को सर्वप्रथम स्ट्रिपिंग करके सूखे एनामिल बेसिन में अंडों को एकत्रित करके पुनः स्ट्रिपिंग कर नर के शुक्राणु को अंडों के साथ निषेचित कराते हैं । चूंकि ये अंडे चिपकते हैं इसलिये निषेचित अंडों के चिपचिपाहट दूर करने के लिये युरिया, साधारण नमक और टैनिक अम्ल के घोल का प्रयोग करते हैं । चिपचिपाहट दूर करने के बाद निषेचित अंडों को इनकुबेसन हेतु ग्लास जार में रखते हैं । 16-18 घंटे के बाद ही हैचलिंग तैयार हो जाती हैं । *वालागो अट्टू* में एक दिन की आयु से ही स्वजातिभक्षण का स्वभाव दिखाई देने लगता है इसलिये लार्वा रियरिंग हेतु नर्सरी तालाब या फाइबर ग्लास टैंक में पालन किया जाता है । *वालागो अट्टू* में बहुत अधिक मात्रा में स्वजातिभक्षण का स्वभाव के कारण नर्सरी तालाब में इसकी उत्तरजीविता लगभग नगण्य पाई जाती है । फाइबर ग्लास टैंक या फेरोसिमेंट टैंक में लार्वा रियरिंग में अधिक उत्तरजीविता प्राप्त

की जा सकती है । प्रायोगिक परिणाम से यह पाया गया है कि *वालागो अट्टू* की पालन प्रक्रिया में स्वजातिभक्षण के स्वभाव को कम करने के लिये सही आहार, संचय दर में बदलाव एवं जल की गहराई पर ध्यान देना अनिवार्य है ।

पंगेशियस पंगेशियस बीज उत्पादन

पंगेशियस तेजी से बढ़ने वाली नदीय कैट फिश है जो अपने अनुकूल वातावरण में कम ऑक्सीजन की उपस्थिति में भी जीवित पाई जाती है । इसे मिश्रित मत्स्य पालन एवं समन्वित मत्स्य पालन में एक प्रजाति के रूप में प्रयोग किया जाता है ।

पंगेशियस प्राकृतिक रूप से वर्षाकाल में नदियों में प्रजनन करती हैं । नर *पंगेशियस* एक वर्ष एवं मादा 3 वर्ष से अधिक की आयु में परिपक्व हो जाते हैं । परिपक्व नर पंगेशियस का जेनाइटल पेपिला छोटा एवं भोथर तथा उदर पर हल्का दबाव से दुधिया श्राव निकलता है । मादा का जनन छिद्र गुलाबी लाल माँसयुक्त रीम के आकार से घिरा होता है । प्रजनक मछलियों को कार्प मछलियों के साथ 1000 कि.ग्रा./हे. के दर से जिसमें 80% कार्प एवं 20% पंगेशियस का संचय 0.1 हे. प्रजनक तालाब में संचय करते हैं । कार्प मछलियों का परम्परागत आहार (बादाम की खली एवं धान का कुंडा 1:1 के अनुपात में) के अलावा पंगेशियस के लिये सीपियों का माँस, धान कुंडा, बादाम की खली तथा मछली के चूर्ण को 1:1:1:2 के अनुपात से 5% वजन के अनुसार प्रतिदिन आहार दिया जाता है । उत्प्रेरित प्रजनन हेतु मादा *पंगेशियस* के परिपक्व अंडों की पहचान केथेटर द्वारा प्राप्त अंडों को सामान्य एवं पीले रंग का चमिदार माना जाता है । वर्षाकाल में परिपक्व मादा को कार्प पियूष ग्रंथि के घोल की दो सूई छः घंटे के अंतराल पर दी जाती है जबकि नर को 3 मि.ग्रा. / कि.ग्रा. वजन के अनुसार सूई लगाते हैं । अंडों का निषेचन जलरहित स्ट्रिपिंग विधि से की जाती है । मादा को स्ट्रिपिंग के लिये तभी तैयार करना चाहिये जब उसका जनन छिद्र चमकदार व गुलाबी रंग का हो जाय । मादा पंगेशियस से स्ट्रिपिंग करके प्लास्टिक के नादों में अंडा एकत्रित करने के तुरंत बाद मिल्ट को पंख की सहायता से मिलाकर निषेचन कराया जाता है । *पंगेशियस* के अंडे स्वतंत्र एवं डिमरसल होते हैं । निषेचित अंडों को इन्क्यूबेशन के लिये ग्लास जार या हैचिंग कुंड में रखते हैं । 17 घंटे के आद हैचलिंग प्राप्त हो जाती हैं ।

मिस्टस एओर का बीज उत्पादन

मिस्टस ए. ओर नदी का प्रमुख कैटफिश है जो भारत के नदियों एवं बड़े जलाशयों की व्यवसायिक मात्स्यिकी में बड़ा योगदान देती हैं । *मिस्टस ए. ओर* में जनकीय देखभाल का गुण

पाया जाता है । प्रजनन के समय *मिस्टस् ए.ओर* घोसला एवं प्रजनन गड्ढा तैयार करती हैं । प्रत्येक घोसला में हैचलिंग की संख्या 100-500 तक पाई जाती है ।

उत्प्रेरित प्रजनन के लिये नर *मिस्टस ए.ओर* की पहचान उसके ट्युबलर लालयुक्त गुलाबी रंग का उभार जनन छिद्र के पास से की जाती है । मादा के परिपक्व अंडों की पहचान केथेटर द्वारा प्राप्त सामान्य एवं हल्के पीले रंग के अंडों के द्वारा की जाती है । परिपक्व प्रजनकों का पालन-पोषण 0.04 है. क्षेत्र वाले तालाब में सूखे मछली के चूर्ण प्रतिदिन 2-3% मछली के वजन के दर से खिलाकर किया जाता है । इसके अलावा इन्हें किरोनोमिड्स और ट्युबिफिक्स भी दी जाती है । परिपक्व मादा को कार्प पियूष ग्रंथि का घोल 12-20 मि.ग्रा./कि.ग्रा. मछली के वजन के अनुसार दो सूई चार घंटे के अंतराल पर तथा नर को 2-8 मि.ग्रा. / कि.ग्रा. वजन के अनुसार दी जाती है । नर का शुक्राणु संग्रह करना आसान नही होता है इसलिये नर मछली को काटकर उसका वृषण निकाल लेते हैं और खरल में कुचलकर वीर्य को निचोड़ मादा को दूसरी सूई के चार से छः घंटे बाद स्ट्रिपिंग करके प्लास्टिक ट्रे में अंडों को एकत्रित करते हैं । इसके बाद परिरक्षित शुक्राणु से अण्डों को निषेचित करते हैं । निषेचित अंडों को इन्कयुबेशन के लिये प्लास्टिक टैंक में रखते हैं । अडों से हैचलिंग होने तक प्लास्टिक टैंक का पानी 2-3 घंटे के अंतराल पर बदलते रहना चाहिये । 50 घंटे के भीतर लार्वा से डिम्भ सैक पूरी तरह शोषित हो जाता है एवं लार्वा आहार लेना आरंभ कर देती है । लार्वा रियरिंग हेतु प्लास्टिक टैंक, जिसका आकार 4 X 1.2 X 0.3 मी. का होता है का प्रयोग किया जाता है । *मिस्टस ए.ओर* के लार्वा को 5-10 मि.मी. आकार के प्लवकों को तालाब से छानकर आहार के रूप में दिया जाता है । इसके साथ ही अमूल स्प्रे (30 ग्रा.), उबला अंडा (60 ग्रा.) एवं 1% विटामिन को मिलाकर लार्वा को 10 दिनों तक दिन में तीन बार दी जाती है । इसके बाद आहार के रूप में कटा हुआ उबला अंडा, ट्युबिफेक्स/झींगा मछली दिन में दो बार दिया जाता है । इस प्रकार 30 दिन के बाद स्पॉन से फ्राई प्राप्त की जाती है और एक माह में मिस्टस एओर के ये फ्राई 7-8 मि.मी. लम्बाई एवं 1.5 से 2.0 ग्रा. वजन के हो जाते हैं । अब इनका वैज्ञानिक प्रणाली से तैयार किये गये तालाब में संवर्धन किया जाता है ।

व्यापारिक स्तर पर इनके बीज उत्पादन की इस तकनीक के प्रसार की व्यापक संभावनायें हैं जिसे बक्रमबद्ध तरीके से ग्रहण करके इनके पालन को सफल बनाया जा सकता है ।

मत्स्य के रक्त तथा उत्तक उपापचय स्तर पर निराहार रहने का प्रभाव : एक अध्ययन

नीरजा कपूर
जन्तु विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. कॉलेज, इलाहाबाद

विगत वर्षों से मधुमेह रोग के शोध के लिये अस्थिमय मछलियों को प्रायोगिक जीवों के रूप में उपयोग किया जाता है । प्रस्तुत शोध पत्र के लिये सामान्यतः उपलब्ध अस्थिमय मछली *पुन्टियस कौनकोनियस* का चुनाव किया गया है । यह एक छोटी मछली है जो अधिकांशतः प्राकृतिक जल संसाधनों में पाई जाती है । प्रयोगशाला के एक्वेरियम में भी यह मछली काफी लंबे समय तक रखी जा सकती है । अतः प्रयोग के लिये यह एक उपयुक्त मॉडेल है ।

भिन्न भिन्न प्रजाति की मछलियों में निराहार रहने के कारण भिन्न भिन्न प्रतिक्रियात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं । निराहार रहने की अवधि में कई मछलियों के रक्त में ग्लुकोज के स्तर में कमी आई । (कामरा 1966, सुन्दरराज एवं अन्य, 1966 नरसिंहमन तथा सुन्दरराज, 1966, खन्ना एवं भट्ट, 1972, लारसन एवं लैवेण्डर, 1973, जोशी, 1964, आइंस एवं घोरपे 1960, मेहरोत्रा एवं सिंग 1972) जबकि इसकी अपेक्षा *क्लेरियस लजेरा, कौटस स्कारपियस, कैरेशियस आरेटस* तथा *मिक्सिन ग्लुटीनोसा* में निराहार रहने का रक्त में शर्करा के स्तर में कोई भी प्रभाव देखने को नही मिला । (अल गोहारी 1958, फाल्कमर 1961, तशीमा एवं काहिल 1968, शेविन एवं यंग 1970 अं, फाल्कमर एवं मैटी 1966) । निराहार रहने पर संचयित कार्बोहाइड्रेट के स्तर में कमी आई । अनेक शोधकर्ताओं द्वारा किये गये शोध से यह निष्कर्ष निकाला गया कि लीवर ग्लाइकोजन के स्तर में तेजी से गिरावट आई । (स्टिंपसन 1965, ब्लैक एवं अन्य 1966, इन्युई एवं ओशिमा 1966, कामरा 1966, स्वैलो एवं फ्लेमिंग 1969, खन्ना एवं भट्ट 1972, गिल, 1994) । आहार न मिलने पर *नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस* के लीवर तथा मांसपेशी में ग्लाइकोजन के स्तर में कमी पाई गई । (सुन्दरराज एवं अन्य 1966, नरसिंहमन व सुन्दरराज 1971) भूख के कारण कार्बोहाइड्रेट उपापचय स्तर के अलावा रक्त में कोलेस्ट्राल के स्तर में वृद्धि (आइंस एवं थोरपे) या कमी (लारसन एवं लैवेण्डर, 1973) दृष्टिगोचर हुई ।

इस शोध पत्र में शर्करा, रक्त कोलेस्ट्राल, यकृत ग्लाइकोजेन तथा मांसपेशी के ग्लाइकोजेन पर दीर्घकाल तक निराहार रहने के प्रभाव का अध्ययन किया गया है ।

सामग्री एवं विधि

प्रस्तुत अध्ययन में *पुन्टियस कौनकोनियस* के नर व मादा दोनों प्रकार की स्वस्थ मछलियों को लिया गया है जिनका औसत वजन 4.5-5 ग्रा. तथा औसत लम्बाई 5 सें. मी. थी । मछलियों के दो समूहों को काँच के दो एक्वेरियम में रखा गया । एक समूह की मछलियों को उनके खाने योग्य भोजन दिया गया जबकि दूसरे समूह की मछलियों को निराहार रखा गया । दोनों समूह की मछलियों को 75 दिन तक अध्ययन हेतु रखा गया तथा हर पंद्रहवें दिन मछलियों के रक्त व उत्तकों के नमूनों का जैवरासायनिक विश्लेषण किया गया । इसलिये मछली के हृदय से 20 माइक्रोलीटर रक्त लिया गया । रक्त को जमने से रोकने के लिये हिपेरिन का प्रयोग किये गया । रक्त शर्करा (नेलसन 1944) तथा कोलेस्ट्रोल (ज्लेटिकस व अन्य 1953) की मात्रा के निर्धारण के लिये रक्त के नमूनों का तत्काल प्रसंस्करण किया गया । यकृत व माँसपेशी के टुकड़ों को कुचलकर 30% गरम के. ओ. एच. में रख दिया गया । अवक्षेपण के पश्चात् एन्थ्रोन रिएजेन्ट विधि से ग्लाइकोजेन की मात्रा का आंकलन किया गया (सीफ्टर तथा अन्य 1950) । परीक्षण के माध्यम से नियंत्रित समूह तथा निराहार परीक्षण के माध्यम से समूह की मछलियों के माध्यो की तुलना प्रत्येक प्रेक्षण के लिये की गई । साथ ही माध्यों के अंतर की सार्थकता का भी परीक्षणा किया गया (स्नेडेकर एवं कोचरन 1967) ।

परिणाम एवं विवेचना

1. *रक्त शर्करा* - पन्द्रह दिन तक मछली के रक्त शर्करा के स्तर में वृद्धि पाई गई लेकिन उसके बाद धीरे-धीरे इसमें कमी आई । यह स्थिति बाद के सभी प्रेक्षण समयों में भी अंकित की गई । 75 दिन तक भूखे रहने के बाद मछलियों के रक्त शर्करा स्तर में नियंत्रित मछलियों की अपेक्षा 40% की कमी रही ।

2. *यकृत ग्लाइकोजन* - निराहार रहने के प्रथम 45 दिनों में मछली के लीवर ग्लाइकोजन के स्तर में कोई विशेष अन्तर दिखाई नही दिया किन्तु 60 वें दिन इसके स्तर में वृद्धि दिखाई दी । इसके पश्चात् 75 दिन तक भूखे रहने पर यकृत ग्लाइकोजन का स्तर कम हुआ ।

3. *माँसपेशी का ग्लाइकोजन* - लम्बे समय तक आहार न मिलने पर माँसपेशी के ग्लाइकोजन में कमी आई । 30वें तथा 45वें दिन भूखी मछली में दूसरे समूह की मछली के अपेक्षा ग्लाइकोजन का स्तर अधिक रहा जबकि उसके बाद 60वें तथा 75 वें दिन इसके स्तर में कमी आई ।

4. *रक्त कोलेस्ट्रोल* - भूखी मछली में रक्त कोलेस्ट्रोल के स्तर में वृद्धि हुई तथा अधिकतम वृद्धि 75 दिनों के बाद पाई गई जबकि 30वें दिन या उसके बाद भी रक्त शर्करा के स्तर में क्रमशः गिरावट आई जबकि यकृत तथा माँसपेशी के ग्लाकोजेन में 75वें दिन कमी दिखाई दी । निराहार रहने के 30वें तथा 75वें दिन के बीच अवग्लुकोजरक्तता (Hypoglycemia) को सार्थक पाया गया जबकि 15वें दिन रक्त शर्करा के स्तर में वृद्धि देखी गई । *पुन्टियस कौनकोनियस* की ही तरह फिलिप्स तथा अन्य 1953 के द्वारा भी *साल्वीलिनस फोन्टीनेलिस* में निराहार रहने के प्रथम तीन दिन ब्लड ग्लुकोज के स्तर में कमी पाई गई । अटलांटिक कौड, *गैडस मौरहुआ* में रक्त शर्करा के स्तर में 108-72 मि.ग्रा. प्रतिशत तक की कमी 36 दिनों में रिकार्ड की गई जो कि 51 दिनों के बाद भी स्थिर रही (कामरा 1966) *लैम्प्रेट्रा फ्लुवियाटिलिस* में पाँच महीने तक निराहार रहने के पश्चात् रक्त शर्करा के स्तर में कमी आई (बेंटले एवं फोलेट 1965) । *नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस* में निराहार रहने के पहले 24 घंटों में रक्त शर्करा के स्तर में वृद्धि हुई जबकि 48 घंटे बाद उसमें कमी देखी गई (सुन्दरराज व अन्य 1966) । उसी जाति की मछलियों में नरसिम्हन तथा सुन्दरराज ने 1971 पुनः इस तथ्य की पुष्टि की कि 24 घंटों के बाद रक्त शर्करा के स्तर में वृद्धि होती है । इसके उपरांत शर्करा में कमी आई तथा 13वें दिन इसका न्यूनतम स्तर प्राप्त हुआ । मनोरंजक तथ्य यह है कि इन मछलियों के रक्त शर्करा के स्तर में 15वें दिन सार्थक वृद्धि दिखाई दी परन्तु उसके उपरांत निरंतर रक्त शर्करा के स्तर में कमी होती गई जो निराहार रहने के 75वें दिन 60% से कम हो गई । निराहार रहने के कारण रक्त शर्करा में कमी अन्य प्रजाति के मछलियों में भी पाई गई । जैसे *क्लेरियस बेट्रेकस* (खन्ना एवं भट्ट 1972, जोशी 1974), *एंग्युला एंग्युला* लारसन व लैवेण्डर 1973, *इसोक्स लुसियस* (आइंस एवं धोरपे,1973) , *हेट्रोपन्युसटस फॉसिलिस* (मेहरोत्रा एवं सिंग 1972) । ऐसा प्रतीत होता है कि *पुन्टियस कौनकोनियस* जो कि एक सक्रिय मछली है, में सामान्य गतिविधियों को बनाये रखने के लिये रक्त शर्करा का उपयोग जरूरी हो जाता है और इसलिये इस मछली में लम्बे समय तक निराहार रहने के कारण रक्त शर्करा के स्तर में कमी पाई गई । *पुन्टियस कौनकोनियस* में यकृत तथा माँसपेशी के ग्लाइकोजेन में कमी केवल 75 दिनों तक निराहार रहने के पश्चात् देखी गई । इसी प्रकार की विलम्बित कमी *इसोक्स लुसियस* के यकृत तथा माँसपेशी के

इकोजेन में भी 3 महीने तक निराहार रहने के पश्चात् देखी गई (आइंस एवं धोरपे,1973) *नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस* में यकृत के ग्लाइकोजेन स्तर में कमी 7 दिनों के बाद देखी गई (नरसिंहमन व सुन्दरराज 1971) जब ऑपसेनस टाऊ को 1-3 महीने तक भूखा रखा गया तो यकृत में ग्लाइकोजेन 12.7% से कम होकर 4.1% हो गया । तशीमा व काहिल, 1995 तथा खन्ना व भट्ट 1972 ने *क्लेरियस बेट्रेकस* में 20 दिनों के अन्दर लीवर ग्लाइकोजेन में कमी देखी जो कि 90 दिनों तक बनी रही । इसी मछली में उन्होने पाया कि स्केलेटल माँसपेशियों के ग्लाइकोजेन में निराहार रहने के कारण प्रथम 40 दिनों तक कोई परिवर्तन नही हुआ जबकि उसके बाद 80वें दिन तक धीरे-धीरे यह स्तर घटता रहा । *क्लेरियस बेट्रेकस* तथा *नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस* से अलग *पुन्टियस कौनकोनियस* में यकृत ग्लाइकोजेन में वृद्धि 60 दिन पर तथा वृद्धि 30 वें और 45वें दिन पर देखा गया । संरक्षित ग्लाइकोजेन के स्तर में निराहार रहने के कारण 75वें दिन पर कमी पाई गई । इसी प्रकार निराहार रहने के कारण संरक्षित ग्लाइकोजेन के स्तर में कमी अन्य प्रजातियों के मछलियों में भी देखी गई । जैसे *कैरेशियस ऑरेटस* (स्टिंपसन 1965), *एन्गयुला जैपोनिका* (इन्यूई एवं तोशिमा 1968), *गैडस मारहुआ* (कामरा 1966) तथा *टाइलेपिया मोसोम्बिका* (स्वैलो एवं फ्लेमिंग 1969) ।

पुन्टियस कौनकोनियस में भूखे रहने के कारण 30वें दिन रक्त कोलेस्ट्रोल के स्तर में कमी के अतिरिक्त शेष दिन वृद्धि पाई गई । प्रस्तुत निष्कर्ष में *इसोक्स लुसियस* में समानता है जिसमें 3 महीने तक निराहार रहने के बाद हाइपरकोलेस्ट्रीमिया देखा गया (आइंस एवं धोरपे,1973)। प्रायोगिक मछली *पुन्टियस कौनकोनियस* में हाइपरकोलेस्ट्रीमिया की व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है कि निराहार रहने की अवधि में या तो कोलेस्ट्रोल के संश्लेषण एवं रक्त में निस्तार के दर में वृद्धि हुई या कोलेस्ट्रोल की उपचय प्रक्रिया की कुशलता में कमी हुई । हो सकता है कि इस मछली में कोलेस्ट्रोल का संश्लेषण ऋणात्मक फीड बैक कंट्रोल के कारण हो जैसा कि इसोक्स लुसियस में भी सुझाया गया है (आइंस एवं धोरपे,1973) । अतः पुन्टियस कौनकोनियस में कोलेस्ट्रोल के स्तर में वृद्धि अधिक संश्लेषण के कारण हुई जो मछली को भोजन के द्वारा कोलेस्ट्रोल न प्राप्त होने के कारण हुई ।

निष्कर्ष

पुन्टियस कौनकोनियस में रक्त शर्करा तथा संरक्षित यकृत ग्लाइकोजेन के स्तर में कमी से यह लगता है कि इसमें निराहार रहने की अवधि मे प्रमुख ऊर्जा का माध्यम कार्बोहाइड्रेट की उपचय क्रिया है । निराहार रहने की अवधि मे जीवित रहने का कारण भिन्न भिन्न मछलियों में भिन्न भिन्न हो सकता है । अतः कुछ प्रजातियाँ माँसपेशी के प्रोटीन का उपयोग मुख्य ऊर्जा के स्रोत के रूप में करती हैं । अतः मछली का संरक्षित ग्लाइकोजेन वैसे ही बना रहता है तथा ग्लुकोनियोजेनेसिस की क्रिया के द्वारा ग्लुकोज का परिभ्रमण होता है (स्टिंपसन 1965, बटलर, 1968, नरसिंहमन व सुन्दरराज 1971)

पुन्टियस कौनकोनियस में लम्बे समय तक निराहार रहने के कारण दबाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है । इस दबाव के कारण इपिनेफरिन हार्मोन का स्राव होता है । यह हांर्मोन रक्त में उपस्थित शर्करा को मस्तिष्क की तरफ ले जाने में मदद करता है । इस कारण निराहार मछली में रक्त शर्करा का स्तर कम हो जाता है । दीर्घ काल तक निराहार रहने पर इन्सुलिन के स्रावित होने में कमी आ जाती है । (तशीमा व काहिल 1968, अहमद व मैरी 1965, थोरपे 1976 तथा थोरपे व आइंस 1976) । निराहार मछली, *पुन्टियस कौनकोनियस* में हाइपरकोलेस्ट्रीमिया के कारण इन्सुलिन में कमी हो सकता है क्योंकि इसी प्रजाति की मछली में अध्ययन से पाया गया कि इन्सुलिन देने पर हाइपरकोलेस्ट्रीमिया अर्थात् कोलेस्ट्रोल का स्तर घट जाता है । स्तनधारी जंतुओं में यह पाया गया है कि रक्त कोलेस्ट्रोल के स्तर पर ग्रोथ हार्मोन तथा थाइरोक्सिन दोनों का ही असर होता है (बायर्स व अन्य 1970) सालमन मछली में कार्टिसल हार्मोन का उत्पन्न होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है । इस मछली में लम्बी दूरी तय करने पर दबाव की स्थिति में प्रतिक्रियास्वरूप यह हार्मोन उत्पन्न होता है । ऊज. की उपापचय क्रिया में भी इस हार्मोन का परिणाम हो सकता है । इवामा व नाकानिशी 1996 इस प्रकार की क्रियाविधि का प्रभाव इस मछली में भी नजरअन्दाज नही किया जा सकता ।

पुन्टियस कौनकोनियस एक संवेदनशील मछली है तथा दबाव की स्थिति में भली प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त करती है । प्रतिक्रियास्वरूप रक्त तथा उत्तकों को उपापचय स्तर पर परिवर्तन देखने को मिलते हैं । इस प्रकार के अध्ययन उच्च वर्ग के प्राणियों एवं मनुष्यों में मधुमेह रोग की जटिलताओं का पता लगाने में सहायक हो सकते है ।

मत्स्य के रक्त तथा उत्तक उपापचय स्तर पर निराहार रहने का प्रभाव

	निराहार की अवधि				
प्राचल	15 दिन	30 दिन	45 दिन	60 दिन	75 दिन
रक्त शर्करा (मि.ग्रा.%)	अ 110.8±1.50(4) ब 86.8±2.22(4) P<0-01	अ 56.7±1.96(4) ब 101.8±8.68(4) P<0-01	अ 50.4±2.80(4) ब 92.2±4.47(4) P<0-01	अ 46.7±0.94(4) ब 83.5±2.43(4) P<0-01	अ 35.1±2.87(4) ब 90.3±4.10(4) P<0-01
यकृत ग्लाइकोजेन (मि.ग्रा./ ग्रा.)	अ 20.8±0.71(4) ब 20.7±0.45(4)	अ 19.4±1.12(4) ब 16.6±0.58(4)	अ 18.4±0.83(4) ब 18.3±4.36(4)	अ 16.0±0.58(4) ब 13.1±1.26(4)	अ 13.4±0.75(4) ब 16.4±1.35(4)
माँसपेशी ग्लाइकोजेन (मि.ग्रा./ ग्रा.)	अ 2.95±0.55(4) ब 3.08±0.09(4)	अ 2.83±0.38(4) ब 1.27±0.0984) P<0-01	अ 2.44±0.33(4) ब 1.65±0.08(4)	अ 1.23±0.16(4) ब 1.89±0.16(4) P<0-05	अ 1.04±0.13(4) ब 3.00±0.77(4) P<0-01
रक्त कोलेस्ट्रोल (मि.ग्रा./ ग्रा.)	अ 362.9±22.6(4) ब 350.3±21.1(4)	अ 425.1±10.8(4) ब 528.8±35.5(4) P<0-05	अ 438.4±14.8(4) ब 425.1±8.3(4)	अ 446.5±17.2(4) ब 325.8±15.3(4) P<0-01	अ 483.3±16.6(4) ब 353.0±1.1(4) P<0-01

संदर्भ

अहमद, एम.एम. तथा ए.जे.मैटी 1975 । इफेक्ट ऑफ इन्सुलिन ऑन द इनकोरपोरेशन ऑफ ल्युसिन इन्टु गोल्ड फिश मसल प्रोटीन । बाइलोजिया (लाहौर) 21 : 199-124

अल गौहरी, ए.ई.आई, 1958 । ऑन द ब्लड सुगर इन क्लेरियस लजेरा । जेड. वराजि. फिजियोल । 41 : 26-34 ।

बन्टले, पी.जे. एवं बी. के फोलेट, 1965 । द इफेक्ट ऑफ हारमोन ऑन द कार्बोहाइड्रेट मेटाबोलिज्म ऑफ द लैम्प्रे लैम्प्रेटा फ्लुमियाटालिस । ज. इन्डोकाइनौल, 31 : 127-137 ।

ब्लैक, ई.सी., एन.जे. वोसोमअर्थ एवं जी.ई.डौचेर्टी, 1966 । कम्बादन्ड इफेक्ट ऑफ स्टारवेशन एण्ड सेवियर एक्सरसाइज ऑन ग्लाइकोजेन मेटाबोलिज्म ऑफ स्नोट्राउट साल्मो गाइडनेरी. ज. फिश. दिस. बीड. कन. 23 : 1461-1463 ।

बटलर, डी.जी. 1968 । हारमोनल कन्ट्रोल ऑफ ग्लुकोनियोजेनेसिस इन द नॉर्थ अमेरिकन ईल (एंगुला रौस्टेटा) । ज. कम्प. इन्डोक्राइनोल 10 : 85-91 ।

वायरस, एस. ओ., एच. फ्राइडमैन एवं आर. एच. रोजरमैन, 1970 । प्रीवेन्सन ऑफ हाइपरकोलेस्टोलेमिया इन थाइरोइडैक्टोमाइजड रैटस बाई ग्रोथ हारमोन । नेचर 228 : 464-465 ।

चैविन, डब्लु और जे. ई. यंग, 1970 ए । फैक्टर्स इन द डिटरमिनेसन ऑफ नार्मल सीरम ग्लुकोज लेवल ऑफ गोल्डफिश , कैरेसियस ऑरेटस । एल. कम्प. बाइयोरम. फिजियोल । 33 : 629-653 ।

फॉल्कर, एस. 1961 । एक्सपेरिमेंटल डाएबेटिज रिसर्च इन फिश । एक्टा एन्डोक्राइनोल, 37 सप्लीमेंट । 59 : 1-122 ।

फॉल्कर, एस और ए. टी. मैटी, 1966 । ब्लड सुगर रेगुलेसन इन द हैग फिश । मिक्जीन ग्लुटीनोसा । ज. कम्प. फिजियोल । 6 : 334-346 ।

गिल, टी. एस. 1994 । एडवांस इन फिश बायोलोजी एण्ड फिशरीज वॉल । 1 : 1998 और एच. आर. सिंह । हिन्दुस्तान पब्लिकेशन कार्पोरेशन, दिल्ली ।

इन्स, बी. डब्लु और ए. थोरपे , 1976 ए । द इफेक्ट्स ऑफ स्टारवेसन एण्ड फोर्स फीडिंग ऑन द मेटाबोलिज्म ऑफ द जॉर्डन पाइक इसोक्स ल्युसियस । एल. ज. फिश. बायौल । 8 : 79-88 ।

इनुई. वाई और वाई. ओसिमा 1966 । इफेक्ट ऑफ स्टारवेसन ऑन मेटाबोलिज्म एण्ड केमिकल कॉम्पोजिशन ऑफ ईल्स । बुल. जाप. सोसा. साइ. फिश । 32 : 494-501 ।

इवामा, जी. और नाकानिसी, टी. 1966 । फिश फिजियोलॉजी वोल्युम XV : द फिश इम्युन सिस्टम । एकेडेमिक प्रेस, न्युयार्क ।

जोशी, बी. डी. 1974 । इफेक्ट ऑफ स्टारवेसन ऑन ब्लड ग्लुकोज एण्ड नॉन प्रोटीन नाइट्रोजन लेवलस ऑफ द फिश । क्लेरियस बूटाकस । एक्सपेरिमेन्सिया । 30 : 772-773 ।

कामरा, एस.के. 1966 । इफेक्ट ऑफ स्टारवेसन एण्ड रिफिडिंग ऑन सम लीवर एण्ड ब्लड कन्सट्युटिएंस ऑफ अटलांटिक कौड गैड्स मोरबा । ज. फिश. रिस. बीड. कन. 23 : 975-982 ।

खन्ना, एस. एस. और एस. डी. भट्ट 1972 । स्टडिज ऑन द ब्लड ग्लुकोज लेवल एण्ड ग्लाइकोजेन कोटेंट इन सम ऑर्गन्स ऑफ फ्रेशवाटर टीलियोस्ट, क्लेरियस बूटाकस । प्रोसी. नेशन. एकेड. साई. इण्डिया, 42 : 415-422 ।

लार्सन ए. और के. लेवेण्डर 1973 । मेटाबोलिक इफेक्टस ऑफ स्टारवेशन इन द ईल । एंगुइला एंगुइला एल. कम्प. वायोकेम. फिजियोल, 44 : 367-374 ।

मेहरोत्रा, एन. और टी. सिंह, 1982 । इकोफिजियोलोजिकल स्टडीज ऑन द कैटफिश हेटरोप्युस्टिस फॉसिलिस (ब्लोच) : इफेक्ट ऑफ स्टेट्स ऑन ग्लाइसीमिया । प्रोसी. नेशन. एकेड. साई. इण्डिया ।

नरसिम्हन, पी.बी. और वी. आई. सुन्दरराज, 1971 । इफेक्ट ऑफ स्टेट्स ऑन कार्बोहाइड्रेट मेटाबोलिज्म इन द टीलियोस्ट । नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस (फ्लस) । ज. फिश. वायौल. 3 : 441-451 ।

नेल्सन, ए. एम., एफ. ई. लोवलेस, डी. आर. ब्रोकवे और जी. सी. वल्सर 1953 । द न्युट्रीसन ऑफ ट्राउट । फिश. रिस. बुलेटिन 16 : 46-84 ।

सीकर, एस., एस. डेटन, बी. नोविक और ई. मुन्टवाइलर, 1950 । द एस्टीमेशन ऑफ ग्लाइकोजेन विथ दी एन्थ्रोन रिएजेन्ट. आर्क. वायोकेम । 25 : 191-200 ।

स्नेडेकोर, जी. डब्लु और डब्लु जी. कोचरान 1967 । स्टेटिस्टिकल मेथड्स । आरवोआ स्टेट यूनिवर्सिटी प्रेस, आमेस, आइवोआ, यू.ए.एस. ।

स्टिम्सन, जे. 1965 । कम्परेटिव ऐस्पेक्ट्स ऑफ द कंट्रोल ऑफ ग्लाइकोजेन युटिलाइजेशन इन वर्टिब्रेट लीवर । कम्प. वायोकेम. फिजियोल । 15 : 187-197 ।

सुन्दरराज, वी आई., एम. कुमार, पी. वी. नरसिम्हन, एम. आर. एन. प्रसाद, टी. ए. वेंकटसुब्रमनियम और जे. मेलेकी, 1966 । इफेक्ट्स ऑफ स्टारवेशन एण्ड ग्लुकोज एडमिनिस्ट्रेशन और कार्बोहांदड्रेट मेटाबोलिज्म ऑफ सैक्कस वैसकुलोसस एण्ड लीवर ऑफ नोटोप्टेरस नोटोप्टेरस (टीलीयोस्टी) , इण्डियन ज.एम्स्प. वायोल, 4 : 1-3 ।

स्वैलो, आर. एल. एण्ड डब्लु आर. फ्लेमिंग, 1969 । इफेक्ट्स ऑफ स्टारवेशन फीडिंग, ग्लुकोज एण्ड ए.सी.टी.एच. एडमिनिस्ट्रेशन ऑन द लीवर ग्लाइकोजेन लेवेल्स ऑफ इन्सुलिन इन द टोड फिश, *औप्सानस टौ* । जन.कम्प.इण्डोकाइनोल । 11 : 252-271 ।

थोरपे, ए. 1976 । स्टडीज ऑन द रोल ऑफ इन्सुलिन इन टीलीयोस्ट मेटाबोलिज्म इन "द इवोलुसन ऑफ पैनक्रियाटिक आइलेटस" (एडि. टी. आई. ग्रिलो.एल. लीवसन एण्ड ए. एपल), परगमान प्रेस, ऑक्सफोर्ड । पृ. सं. 271-284 ।

थोरपे, ए. और बी. डब्लु. आइन्स, 1976 । प्लाज्मा इन्सुलिन लेवेल इन टीलीयोस्ट डिटरमाइन्ड बाई ए चारकोल सेपरेशन रेडियोइम्युनएसे टेकनिक । जन. कम्प. इण्डोकाइनोल । 30 : 330-339 ।

ज्लास्टिकस, ए., बी. जाक और ए. जे. वोयल, 1953 । ए न्यु मेथड फॉर द डाइरेक्ट डिटरमिनेशन ऑफ सीरम कोलेस्टेरोल । ज. लैब. क्लिन. मेड. । 41 : 486-492 ।

भारत के छोटे जलाशयों में मात्स्यिकी की वर्तमान स्थिति एवं भावी संभावनायें

प्रदीप कुमार कटिहा और उत्पल भौमिक
केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता-700120

सारांश

जलाशय प्रायः भारत के सभी भागों में पाये जाते हैं तथा जलविद्युत एवं सिंचाई परियोजनाओं के आने से इनके क्षेत्रफल में अत्यन्त वृद्धि हुई है । भारत में इनका फैलाव लगभग 3.15 मिलियन हेक्टयर है जिसमें से आधा भाग छोटे जलाशयों के अंतर्गत आता है । इन जलाशयों में मात्स्यिकी की प्रचुर संभावनायें हैं । प्रस्तुत लेख में इनकी वर्तमान स्थिति एवं मत्स्य उत्पादन की भावी संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है तथा साथ ही इससे संबंधित विषयों व समस्याओं की भी चर्चा की गई है ।

भारत के छोटे जलाशयों की संख्या एवं क्षेत्रफल के आंकड़ों में बहुत ही विरोधाभाष पाया गया है । विभिन्न राज्यों में इसे अलग-अलग नामों से जाना जाता है । हाल के उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार इनका कुल क्षेत्रफल 14.8 लाख हे. है जिसमें से सबसे अधिक क्षेत्र तमिलनाडु में, फिर कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा महाराष्ट्र में है । पर इन जलाशयों के मत्स्य उत्पादन के आंकड़ों पर पूरी तरह से निर्भर नहीं किया जा सकता । इसके कुछ प्रमुख कारक हैं (1) मत्स्ययन का अधिकार एक से अधिक संस्थाओं को प्राप्त होना (2) अप्रभावी मत्स्य सहकारी समितियॉ (3) लाइसेंसिंग/रॉयल्टी से संबंधित नियमों में विविधता (4) आंकड़ा संग्रहण की अविकसित प्रणाली तथा राज्य सरकार तथा सहकारी समितियों के आंकड़ा संग्रहण से जुड़े कार्यकर्ताओं में प्रशिक्षण का अभाव जिनके कारण आंकड़ों की विश्वसनीयता संदेहास्पद है ।

हमारे देश के छोटे जलाशयों में मात्स्यिकी का प्रबंधन निजी, सार्वजनिक, सामुदायिक एवं सरकारी संस्थाओं द्वारा किया जाता है पर वैज्ञानिक पद्धतियों का समुचित प्रयोग न होने के कारण मत्स्यययन में कठिनाई होती है तथा मत्स्य उत्पादन भी जल इकाइयों की क्षमता की

तुलना में कम होता है । इन जलाशयों की कुल मत्स्य उत्पादन क्षमता 1.5 लाख टन है पर उत्पादन केवल 0.74 लाख टन ही होता है । अतः इनमें प्रबंधन मत्स्य पालन आधारित वैज्ञानिक पद्धति से होना अति आवश्यक है, साथ ही इनके भौतिक पर्यावरणीय एवं संस्थागत तथा मत्स्य समुदाय के सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं का गहन अध्ययन भी जरूरी है । अगर ऐसा होता तो उपलब्ध मत्स्य संपदा का अधिकतम प्रतिपालित उपज दर पर दोहन किया जा सकता है जिससे उत्पादन में वृद्धि होने साथ-साथ इस पर निर्भर मत्स्य समुदायों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर का भी विकास होगा ।

प्रस्तावना

भारत में जलाशय बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं । इनका फैलाव करीब 3.15 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में है तथा ये प्रायः भारत के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाते हैं (सुगुणन् व सिन्हा, 2000 के सौजन्य से)। ऐसे जलाशयों का निर्माण सिंचाई, बाढ़ नियंत्रण और भूमि संरक्षण के लिए किया जाता है, पर साथ ही स्थानीय समुदायों के जीविकोपार्जन के आधार के रूप में भी इनकी उपयोगिता प्रमाणित है । छोटे जलाशयों का क्षेत्र करीब 1.5 मिलियन हेक्टेयर है । इनमें अगर वैज्ञानिक तरीकों द्वारा मत्स्य पालन किया जाय तो 100-200 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर उत्पादन प्राप्त हो सकता है जो वर्तमान में केवल 50 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर ही है ।

छोटे जलाशयों में मत्स्य पालन कई कारणों से आसान होता है जैसे - उत्तम मत्स्य प्रबंधन, मत्स्य संख्या को आसानी से बनाए रखना तथा उत्पादन बढ़ाने में प्रमाणित पद्धतियों को सरलतापूर्वक अपनाया जा सकना । साथ ही इन जलाशयों में मात्स्यिकी विकास से मछुआ समुदाय के रोजगार एवं आमदनी को बढ़ावा मिलता है । कालान्तर में इन योजनाओं में वृद्धि से इनके क्षेत्र में फैलाव हुआ है । लोरेन्जेन, 1995 के अनुसार वर्तमान प्रबंधन प्रणाली पालन पद्धति पर आधारित है जिसका उद्देश्य मछलियों की संख्या एवं उत्पादन में वृद्धि करना है । इसलिए अगर भारत में इन छोटे जलाशयों की मत्स्य उत्पादन क्षमता का पूरी तरह से दोहन किया जाय तो अधिक से अधिक मत्स्य उत्पादन संभव है । साथ ही मछुआ समुदायों के उपार्जन की वृद्धि से उनके सामाजिक-आर्थिक स्तर का भी विकास होगा ।

संसाधन क्षेत्र : कुछ भ्रांतियाँ

जलाशयों की संख्या एवं क्षेत्र के संबंध में कई भ्रांतियाँ व्याप्त हैं । सुगुणन् 1995 एवं सुगुणन व सिन्हा, 2000 के अनुसार इन जलाशयों से संबंधित सूचनाओं का सम्पूर्ण आंकलन किया जा चुका है पर इन छोटे जलाशयों का फैलाव इतना अधिक है कि इनको सूचीबद्ध करना एक कठिन कार्य है । साथ ही इनकी मात्स्यिकी संभावनाओं का आंकलन भी असंभव

सा प्रतीत होता है । दूसरी समस्या जो इन जल निकायों से जुड़ित है- वह है इनके नामों से संबंधित भ्रांतियाँ । अलग-अलग राज्यों में ये अलग-अलग नामों से जाने जाते हैं, अधिकतर यें टैंक के नाम से प्रसिद्ध हैं पर यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ मानव निर्मित झीलों को भी टैंक कहा जाता है । टैंक नामक जल इकाई की कोई मानक परिभाषा अब तक उपलब्ध नही है । पूर्वी राज्यों जैसे उड़ीसा और पश्चिम बंगाल में तालाब एवं टैंक एक दूसरे के पर्याय समझे जाते हैं, जबकि आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक एवं तमिलनाडु आदि राज्यों में सिंचाई जलाशयों एवं कुछ बड़े तालाबों को टैंक कहा जाता है । अतः दक्षिण भारत में जिन जल निकायों को टैंक कहा जाता है, देश के दूसरे हिस्सों में वे जलाशय के नाम से प्रसिद्ध हैं । इसलिए टैंक/जलाशय का निर्माण चाहे जिस उद्देश्य से ही हुआ हो साधारण तौर पर सभी जलाशय के नाम से जाने जाते हैं ।

अगर इन छोटे जलाशयों से संबंधित नामों की भ्रांतियों को हटा दिया जाय और इन्हें केवल क्षेत्रफल के आधार पर परखा जाय तो ऐसे जल निकायों का जलधारण क्षेत्र 14,85,557 हेक्टेयर है (तालिका-1 देखें) । तमिलनाडु में इनकी संख्या एवं जलक्षेत्र (21.27%) सबसे अधिक है । इसके बाद कर्नाटक राज्य (15.39%) आता है । उत्तरप्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश एवं महाराष्ट्र राज्यों में ऐसे जलाशयों का क्षेत्र कुल मिलाकर एक लाख हेक्टेयर से अधिक है पर इनकी संख्या उड़ीसा, राजस्थान, गुजरात एवं बिहार राज्य में अधिक आंकलित की गई है ।

आन्ध्रप्रदेश में टैंक व छोटे जलाशयों को अलग-अलग करने के लिए किसी वैज्ञानिक आधार का सहारा नही लिया गया है, जैसे आजादी के पूर्व के जल निकाय जो बिना किसी पक्के ढाँचे और स्पिलवे शटर के हैं, को टैंक कहा जाता है । ये टैंक बारहमासी और दीर्धमासी दोनों ही प्रकार के होते हैं । तमिलनाडु में टैंक दो प्रकार के होते हैं- अल्पमासी व दीर्घमासी । दीर्धमासी टैंक, जो सिंचाई टैंक के नाम से भी जाने जाते हैं, का क्षेत्रफल औसतन 34 हेक्टेयर है तथा इनमें 9-12 महीनों तक जल भरा रहता है।

तालिका - 1. भारत के छोटे जलाशय तथा सिंचाई टैंक का वितरण

राज्य	छोटे जलाशय		सिंचाई टैंक		कुल	
	क्षेत्र (हे.)	कुल क्षेत्र का प्रतिशत	क्षेत्र (हे.)	कुल क्षेत्र का प्रतिशत	क्षेत्र (हे.)	कुल क्षेत्र का प्रतिशत
तमिलनाडु	15,663	2.84	300,278	32.15	315,941	21.27
कर्नाटक	15,253	2.76	213,404	22.85	228,657	15.39
आंध्र प्रदेश	24,178	4.38	177,749	19.03	201,927	13.59
गुजरात	40,099	7.27	44,025	4.72	84,124	5.65

उत्तर प्रदेश	20,845	3.78	197,806	21.19	218,651	14.72
मध्य प्रदेश	172,575	31.28	-	-	172,575	11.62
महाराष्ट्र	119,515	21.66	-	-	119,515	8.05
बिहार	12,461	2.26	-	-	12,461	0.84
उड़िसा	66,047	11.97	-	-	66,047	4.45
केरल	7,975	1.45	-	-	7,975	0.54
राजस्थान	54,231	9.83	-	-	54,231	3.65
हिमाचल प्रदेश	200	0.04	-	-	200	0.01
पश्चिम बंगाल	732	0.13	-	-	732	0.05
हरियाणा	282	0.05	-	-	282	0.02
उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र	1,639	0.30	600	0.06	2,239	0.15
कुल	51695	100.00	933862	100.00	1485557	100.00

(Modified Sugunan and Sinha, 2000) (संशोधित सुगुणन् एवं सिंहा, 2000)

मत्स्य उत्पादन

भारत में जलाशयों से प्राप्त मत्स्य उत्पादन के आंकड़े पूरी तरह से उपल्ब्ध नही हैं । अगर इन पर हुए अनुसंधान कार्यों को देखा जाय तो कार्य की तुलना में मात्स्यिकी कारकों पर बहुत कम जानकारी है । मत्स्य संग्रहण एवं उपज के आंकड़ों का पूरी तरह से उपलब्ध न होने के निम्नलिखित कारण हैं -

1. मत्स्यन के लिए कानूनी अधिकार एक से अधिक एजेन्सियों को प्राप्त होता है । इसलिए इन सभी के बीच एक असंतोष बना रहता है जिससे सही आंकड़े प्राप्त करना कठिन है ।

2. विपणन से जुड़ी एजेन्सियाँ अव्यवस्थित ढंग से कार्य करती हैं तथा यह अधिकार अधिकतर महाजनों को प्राप्त होता है ।

3. अधितकतर सहकारी समितियाँ अप्रभावी ढ़ंग से कार्य करती है ।

4. विभिन्न राज्य सरकारों की लाइसेंसिंग/रॉयलटी व उपज के बंटवारें को लेकर अलग-अलग व्यवस्था है ।

5. राज्य सरकार/सहकारी समितियों के कार्यकर्ता या तो कम हैं या पूरी तरह से प्रशिक्षित नहीं है । इनके पास आंकड़ो के संग्रहण की कोई व्यवस्थित व उन्नत प्रणाली नही होने के कारण ये सही ढंग से आंकड़े संग्रहण नही कर पाते हैं।

तालिका-2 में 291 छोटे जलाशयों के उत्पादन को दिखाया गया है । आन्ध्रप्रदेश से प्राप्त उत्पादन सबसे अधिक है (188 कि.ग्रा./हेक्टेयर) । इसके बाद केरल, मध्यप्रदेश, तमिलनाडु एवं राजस्थान राज्य हैं जिनका उत्पादन 46.43 से 53.50 कि.ग्रा. प्रति हे. के बीच है । राष्ट्रीय औसत उपज 49.9 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर है ।

तालिका - 2. भारत के छोटे जलाशयों में मत्स्य उत्पादन

राज्य	संख्या	उत्पादन (टन)	औसतन उत्पादन (कि.ग्रा./हें.)
तमिलनाडु	52	760	48.50
उत्तर प्रदेश	31	168	14.60
आंध्र प्रदेश	37	2224	188.00
महाराष्ट्र	6	72	21.09
राजस्थान	78	970	46.43
केरल	7	118	53.50
बिहार	25	22	3.91
मध्य प्रदेश	2	24	47.26
उड़िसा	53	349	25.85
कुल	291	4707	
औसत			49.90

मत्स्य प्रबंधन

देश के अलग अलग जलाशयों में प्रबंधन पद्धतियों में अनेक विविधताएँ पायी जाती हैं । सरकारी तथा निजी संस्थाओं द्वारा नियंत्रित जलाशयों में मत्स्यन अधिकार एवं दोहन के अलग-अलग तरीके हैं । इन्हें चार भागों में बाँटा जा सकता है, जो निम्नलिखित हैं ।

1. ऐसे जलाशय जिनका नियंत्रण एवं प्रबंधन निजी संस्थाओं द्वारा होता है ।
2. सार्वजनिक जल निकाय
3. सामुदायिक जल निकाय
4. ऐसे जलाशय जिनका प्रबंधन सरकार द्वारा होता है ।

अतः देश के अलग-अलग हिस्सों में अलग-अलग प्रबंधन प्रणाली होने के कारण किसी भी एक प्रबंधन प्रणाली को अपनाना एक कठिन कार्य है । अधिकतर जलाशय सार्वजनिक हैं तथा एक निश्चित संख्या में मछुआरे जीविकोपार्जन के लिए इन पर आश्रित होते हैं, पर कर्नाटक तथा उत्तरप्रदेश में इन जलाशयों को एक से दस साल तक निजी संस्थाओं को पट्टे पर दे दिया जाता है ।

एक और असुविधा जो इन जलाशयों के प्रबंधन में आती है वह है - लागत खर्च। क्योंकि इनके प्रबंधन में जितना लागत खर्च आता है तुलनात्मक रूप से लाभ की मात्रा कम होती है । इसलिए राज्यों सरकारों को इन जलाशयों के प्रबंधन हेतु धन आवंटित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है । साथ ही अन्य पहलुओं जैसे पर्यावरणीय, सांस्कृतिक, नैतिक आदि के कारण मछुआ समुदाय पूरी तरह से इसका व्यावसायिकरण नही कर पातें । अतः आवश्यक है इन जलाशयों में सामुदायिक स्तर पर प्रबंधन प्रणालियों को अपनाना । ऐसा प्रयोग अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका जैसे देशों में हो चुका है एवं इससे मत्स्य व्यापार से जुड़े लोगों का आर्थिक विकास भी हुआ है ।

भारत में प्रबंधन कार्य में वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग या तो कम किया जाता है या पूरी तरह से नजर अंदाज किया जाता है । परिणामस्वरूप मत्स्यन या मत्स्य बीज संचयन मनमाने ढंग से किया जाता है जिसका प्रतिकूल प्रभाव मत्स्य उत्पादन पर पड़ता है । छोटे जलाशयों में प्रबंधन का आधार मत्स्य पालन आधारित पद्धति है । अतः अधिक उपज प्राप्त करने के लिए संचयन का घनत्व, संचयन के समय, मछली का आमाप, पालन के दौरान इनका विकास, मत्स्यन के दौरान मृत्यु दर तथा पालन अवधि जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान देना आवश्यक है । अब तक छोटे जलाशयों में किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि उपर्युक्त पहलुओं पर पूरी तरह से ध्यान नही दिया गया है ।

प्रणालियों के उपयोग की भावी संभावनायें

भारत के जलाशयों में उत्पादन कम होने का एक मात्र कारण है - उचित प्रबंधन प्रणालियों का अभाव, पर प्रबंधन प्रणालियों को अपनाने के लिए जलाशय के पारिस्थितिकी का अध्ययन भी आवश्यक है । तालिका - 3 के अनुसार जलाशयों की उत्पादन क्षमता 1.49 लाख

टन की है पर वास्तविकता में केवल 74 हजार टन की ही प्राप्ति हो पाती है । अतः यदि प्रबंधन प्रणालियों का प्रयोग किया जाय तो 100 कि.ग्रा./हेक्टेयर मत्स्य उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है जो अब तक केवल 50 कि.ग्रा./हेक्टेयर ही है । प्रबंधन प्रणाली का आधार संचित मछलियों का दोहन है जिसमें संग्रहण, प्रजातियों में वृद्धि एवं नए प्रजातियों को भी स्थापित किया जा सकता है । अतः भारत में छोटे जलाशय ही मत्स्य उत्पादन में वृद्धि के लिए उपयुक्त हैं । इनमें कम लागत में अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है जो कि मछुआ समुदायों के जीविकोपार्जन का आधार बन सकता है । इसलिए यह कहा जा सकता है कि छोटे जलाशयों का जलकृषि क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है ।

तालिका-3 भारत के जलाशयों की वास्तविक व सम्भावित उत्पादन क्षमता

क्षेत्रफल हे.	उत्पादन		उपज कि.ग्रा./हे.	
	वास्तविक	सम्भावित	वास्तविक	सम्भावित
1,485,557	74,129	1,48,556	49.90	100.00

संदर्भ

लोरेन्जन, के. 1995. पॉपुलेशन डायनामिक्स एण्ड मैनेजमेंट ऑफ कल्चर-बेस्ड फिशरीज । *फिशरीज मैनेजमेंट एण्ड इकोल.* 2: 61-73.

सुगुणन्, वी. वी. एवं सिंहा, एम. 2000. गाइडलांस फॉर स्मॉल रिजर्वायर फिशरीज मैनेजमेंट इन इण्डिया । केन्द्रीय अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर । 31 पी.

अनुसंधान कार्यों में पुस्तकालय की सूचना सेवाओं का योगदान

सीताराम मीणा
केन्द्रीय अन्तर्स्थलीय मात्स्यकी अनुसंधान संस्थान
24 पन्नालाल रोड इलाहाबाद-211002

आधुनिक युग को यदि सूचना तकनीकी का युग कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, नित्य नए नए प्रयोगों एवं उससे प्राप्त सूचनाओं को चयनित कर एवं संभाल कर रखना दुष्कर कार्य होते हुये भी अति आवश्यक है । इन सूचनाओं के प्रलेखों का महत्व आधारशिला की तरह है जिस पर आने वाली पीढ़ी अपने शोध कार्य प्रारम्भ करती है, इतना ही नहीं समस्त विषयों को जोड़ने की कड़ी का काम भी उपलब्ध सूचना के माध्यम से होता है । पुस्तकालय ज्ञान के भण्डार होते हैं जहाँ शोधकर्ता स्वयं के एवं दूसरे के द्वारा किये गए शोध कार्य से लाभाविन्त होते हैं । विषय विशेषज्ञों का समय सूचना खोज के कार्यों में व्यर्थ नष्ट न हो, इस परिस्थिति से निपटने में पुस्तकालय विज्ञान का बहुत बड़ा योगदान रहा है । शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों को पुस्तकालय विभिन्न प्रकार से शोध कार्यों में योगदान देता है,जो निम्नलिखित प्रमुख है ।

1. **सामयिक अभिग्यता सेवा (Current Awareness Service)** विद्वानों,शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों को सामयिक अभिग्यता सेवा की अत्यधिक आवश्यकता होती है, इसी कारण से सूचना विज्ञान के क्षेत्र में सामयिक अभिग्यता सेवा पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है जिससे शोध कार्य के विशेषज्ञों एवं वैज्ञानिकों को नवीन से नवीन सूचना मिलती रहे । प्रतिस्पर्धा के युग में नवीन सूचना राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है ।

सूचना प्रसार की जिस सेवा के माध्यम से उपयोगकर्ताओं, विशेषज्ञों को उनके कार्य क्षेत्र, अभिरूचियों एवं उनसे सम्बन्धित विषयों की प्रगति, विकास एवं नवीन ज्ञान से पूर्ण अवगत कराना । सामयिक अभिग्यता सेवा निम्नलिखित रूप से अपने उपयोगकर्ताओं, विशेषज्ञों, एवं वैज्ञानिकों को पुस्तकालय द्वारा सहयोग करता है ।

क) सामयिक विषय सूचीः **(Current Contexts List)** इस प्रक्रिया में पत्रिकाओं, मैगजीन इत्यादि के सूक्ष्म प्रलेखों की विषय-सूचीयों का अवलोकनार्थ पाठकें के पास भेजा जाता है यदि पाठक यह अनुभव करते हैं कि सूची में से अमुख लेख/प्रलेख उनके लिए उपयोगी है तो वे पुस्तकालय में आ कर या तो मूललेख या प्रलेख को देख सकते हैं और उपयोगिता के आधार पर उसे पढ़कर छाया-प्रति प्राप्त कर सकते हैं । इसी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए पुस्तकालय द्वारा विशिष्ट विषय पर चयनित लगभग सभी प्रमुख प्रत्रिकाओं की विषय-सूचियाँ संग्रहित कर पत्रिकाओं के रूप में प्रकाशित भी किया जा रहा है । इस सम्बन्ध में इस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक इन्फारमेशन, यु.एस.ए. **(Institute of Scientific information,U.S.A.)** द्वारा 6 विषयों में साप्ताहिक **करेन्ट कन्टेक्ट्स में बाद में** प्रकाशित होने वाले अंकों की विषय-सूचियाँ भी इन प्रकाशनों में प्रकाशित की जाती है । जिससे शोधकर्ता, वैज्ञानिक को आगामी अंक की जानकारी एवं विषय-सूची पहले ही प्राप्त हो जाती है और शोधकर्ता एवं वैज्ञानिक अपनी पत्र-पत्रिकाओं के लिए अंशदान भी नही देना पड़ता है । क्योंकि पुस्तकालय द्वारा इनको भविष्य के लिए संजोए रखता है जिससे पाठक का समय एवं धन दोनों की बचत होती है ।

ख) **प्रलेखन बुलेटिन (Documentation Bulletin) :** पुस्तकालय की सामयिक अभिग्यता सेवा शोधकर्ता, वैज्ञानिक एवं अन्य पाठकों में सबसे प्रचलित सेवा का अंग है जिससे इसमें पुस्तकालय को नवीन प्राप्त पत्रिकाओं के अंकों का अवलोकन कर पाठकों हेतु उपयोगी पाठ्य सामग्री या लेखों का चयन करते हैं । इन चयनित लेखों के बारे में सभी बिब्लोग्राफिकल विवरण को अलग-अलग प्रविष्टियाँ में अंकित कर लिया जाता है । इसके बाद इन प्रविष्टियों को विषय के आधार पर व्यवस्थित कर लिया जाता है एवं इन्हें टंकित कर वांछित संख्या में प्रतियाँ तैयार कर ली जाती हैं । प्रलेखन बुलेटिन मुख्यतयाः वर्गीकृत और विषय शीर्षक के अनुसार बनाई जाती है ताकि पाठकों के लिए देखने में आसान रहे । प्रलेखन बुलेटिन का प्रकाशन पुस्तकालयों तथा **अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों** द्वारा किया जाता है जिसके द्वारा अनेक शोधकर्ता, वैज्ञानिक लाभान्वित हो रहे हैं ।

ग) **विकासरत शोध बुलेटिन (Research in progress Bulletin)** इस प्रकार की सेवा नई शोध योजनाओं से सम्बन्धित सूचनाऐं उन पाठकों तक पहुँचाती है जो अधिकांशतः एक प्रकार के शोध में सलग्ल संस्थानों के संयुक्त प्रयास द्वारा किया जाता है । कुछ संस्थाएँ जैसे सी.एस.आई.आर. एवं आई.सी.ए.आर. आदि भी इस प्रकार के बुलेटिनों का प्रकाशन अपने अधीन संस्थाओं में विकासरत शोध के प्रसार हेतु कर रही है। इस संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्व खाद्य संगठन की **Caris (Current Agricultural**

Research information system) और **USDA(United Stated Department to Agriculturen** की **cris (current research information system)** आदि प्रमुख हैं ।

घ) **समाचार पत्र कतरन सेवा (News paper Clipping Service)** : समाचार पत्र स्वयं ही सामयिक अभिग्यता के माध्यम है क्योंकि इनमें देश-विदेश की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों की नवीन घटनाओं की सूचनायें प्रकाशित होती हैं । समाचार विशिष्ट विषयों पर प्रमुख समाचार प्रकाशित होती हैं जैसे कि आर्थिक, वित्तीय समाचार उद्योग एवं व्यवसाय आदि हेतु बनाई गई फाइलों में व्यवस्थित ढंग से रखा जाता है । शरू में इन कतरनों को सम्बन्धित विषय विशेषज्ञों को दिखाया जाता है । बाद में इन कतरनों को एक पत्रिका के रूप में प्रकाशित किया जाता है ऐसी ही एक पत्रिका ग्रीनफाइल (Greenflie) के नाम से है जो पर्यावरण के प्रदूषण को समाचार पत्रों के रूप में संग्रहित करती है ।

इन सभी सेवाओं के अलावा पुस्तकालय शोधकर्त्ता, वैज्ञानिक एवं अन्य पाठकों को अपने ज्ञान की और जानकारी बढ़ाने हेतु और भी सेवा प्रदान करती है जो निम्नलिखित है ।

1. नवीन प्रलेखों की सूची जिसमें पुस्तकालय द्वारा खरीदी एवं प्राप्त नई पुस्तकों की सूचना एक निश्चित अन्तराल पर प्रकाशित होती रहती है ।
2. नई प्राप्त पत्रिकाओं की सूची, सूचना पटल पर लगाना
3. पुस्तक प्रदर्शनः पुस्तकालयों में प्राप्त नई पुस्तकों के आवरण पत्र (catalogue) या पुस्तकों का प्रदर्शन भी करती है

इस तरह से पुस्तकालय के शोध कार्य में तुरन्त जानकारी हासिल करने की पूर्ति सामयिक अभिग्यता सेवा (Current awareness service) द्वारा दी जाती है ।

2. चयनित सूचना प्रसार (Selective Dissemination) (SDI) : चयनित सूचना प्रसार, सामयिक अभिग्यता सेवा (Current awareness service) की एक उन्नत सूचना सेवा प्रणाली है जिसमें सम्बन्धित विशेषज्ञ, शोधार्थी एवं वैज्ञानिक को उसकी व्यक्तिगत अभिरूची के विषय की नवीनतम सामग्रियों के बारे में सूचित एवं अवगत कराने की व्यवस्था की जाती है । वैज्ञानिकों, अनुसंधानकर्त्ताओं तथा विशेषज्ञों को व्यक्तिगत रूप से विशाल एवं असीमित पाठ्य सामग्री से आवश्यक सूचना सामग्री को ढूढ़ने में जो समय और धन खर्च हो रहा है उसे बचाने और बचे हुए धन और समय को रचनात्मक एवं उत्पादन कार्यों में सदुपयोग करने के लिए चयनित सूचना प्रसार सेवा की आवश्यकता होती है ।

इस सेवा का मूल उद्देश्य केवल उन्हीं सूचना सामग्रियों का उपलब्ध कराने से है जो उपयोगकर्त्ताओं की विशिष्ट अभिरूची एवं सूचना आवश्यकता की पूर्ति करती है । इस सेवा हेतु प्रत्येक उपयोगकर्ता का अभिरूचित विवरण तैयार कर लिया जाता है फिर इसे मशीन द्वारा पाठ्य रूप में अभिलिखित किया जाता है और प्रलेखों के विषय शीर्षकों का भी अभिलेख तैयार कर लिया जाता है और समय-समय पर नवीन अभिलेखों के विषय शीर्षकों से पाठकों के अभिरूचित विवरण से मिलान किया जाता है । जब कोई अभिलेख अभिरूचित विवरण से मिलता है तो ऐसे अभिलेखों की सूची उपयोगकर्ता के पास भेजी जाती है ताकि वह अपनी आवश्यकतानुसार सूचना सामग्री को चयनित करके पुस्तकालय को सूचित कर उसकी छायाप्रति प्राप्त कर सकें । यह सेवा मूलरूप से कम्प्यूटरकृत होती है किन्तु इसका आयोजन पुस्तकालयों द्वारा स्थानीय स्तर पर मानव-श्रम द्वारा भी कुछ विशिष्ट पाठकों के लिए किया जा सकता है जो कि पुस्तकालय कर्मियों की स्मरण-शक्ति, व्यक्तिगत सूझ-बूझ व निष्ठा तथा उपयोगकर्ता के सहयोग पर निर्भर रहता है । इस विधि में अपनाई कुछ प्रक्रिया चयनित सूचना प्रसार में अपनाई जाती है जो निम्नलिखित है ।

1) ***उपयोगकर्ता का पार्श्वचित्र निर्माण (Preparation of User's Profile)*** इसमें इस प्रकार की चयनित सूचना प्रसार सेवा इच्छुक पाठकों की सूची तैयार की जाती है उसके बाद उसकी अभिरुचि के विषयों का पूरा विवरण तैयार किया जाता है और बाद में पाठक का अभिलेख तैयार किया जाता है । अभिरुचि वाले विषयों का प्रमाणीकरण या सत्यापित किसी प्रचलित या उपयुक्त अनुक्रमणिकाकरण भाषा (Indexing language) या वर्गीकरण पद्धति की अनुसूचियों से कर लिया जाता है ताकि पर्यायवाची एवं समानार्थी शब्दों का निवारण हो सके । पर्यायवाची शब्दों का उपयोग अधिक लाभदायक होता है । विषय शीर्षक सूचियों का प्रयोग भी किया जाता है क्योंकि इन्ही के द्वारा पाठक पार्श्वचित्र तथा प्रलेख पार्श्वचित्र का मिलान किया जाता है । जो निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट हो जाता है ।

2) **प्रलेख पार्श्वचित्र *(Preparation of Document profile)*** इस क्रम में पुस्तकालय में प्राप्त सभी नवीन प्रलेखों में वर्णित विषय-विश्लेषण कर, विषय शीर्षक में स्थान्तरित कर लिया जाता है । इस कार्य के लिए उन्ही अनुक्रमणीकाकरण भाषा स्त्रोतों, वर्गीकरण पद्धति की अनुसूचियों विषय-शीर्षकों या पर्याय शब्द कोषों का प्रयोग किया जाता है जिनका उपयोग पाठक पार्श्वचित्र निर्माण में किया जाता है इन्हें भी तैयार करके व्यवस्थित ढ़ंग से संग्रहित कर लिया जाता है ।

3) ***पाठक एवं प्रलेख प्रोफाइल का मिलान (Matching of reader's profile with document profile)*** पाठक पार्श्वचित्र एवं प्रलेख पार्श्वचित्र दोनों कम्प्यूटर में संग्रहित होते है । दोनों के सत्यापन के लिए मिलान करना आसान होता है । इस प्रक्रिया में पाठक की अभिरुचि से जिन प्रलेखों के विषय शीर्षक मिलते हैं ऐसे प्रलेखों की विवरण सूची हर पाठक के लिए तैयार हो जाती है ।

4) ***विज्ञप्तिकरण (Notification)*** उपर्युक्त प्रलेख सूची कम्प्यूटर द्वारा मुद्रित कर संबंधित पाठक को उपयोगार्थ उपलब्ध कराई जाती है अगर पुस्तकालय में बिना कम्प्यूटर के प्रलेख सूची तैयार की जा रही है तो मानव-श्रम द्वारा सूचियों का मिलान किया जाता है और उसे टंकित करके पाठक को भेज दी जाती है ।

5) **पुनःनिर्वेशन या प्रतिक्रिया का अभिलेख *(Feedback or recording of response)*** प्रतिक्रिया का अर्थ इस बात से है कि पुस्तकालय द्वारा दी गई सेवा के बारे में उसकी क्या विचारधारा है । यदि दी गई सूची में कोई भी प्रलेख उपयुक्त नहीं पाया जाता है तो निश्चित ही पाठक पार्श्वचित्र में सुधार की आवश्यकता होगी । सकारात्मक प्रतिक्रिया को भी अभिलेखित किया जाता है ।

6) **पाठक पार्श्वचित्र में परिवर्तन (Modification of users profile)** कभी-कभी पाठक अपनी विषय अभिरुचि को ठीक ढ़ंग से व्यक्त नहीं कर पाते जिससे सूचना प्रसार सूची प्राप्त होने पर उनकी अभिरुचि की सामग्री नहीं मिलती है या सूची में अनावश्यक सामग्री का समावेश हो जाता है ऐसी स्थिति में जानकारी प्राप्त करके आवश्यक परिवर्तन किए जाते हैं । कभी-कभी वैज्ञानिकों, शोधकर्त्ताओं, विषय विशेषज्ञों की अभिरुचि कार्यरत योजनाओं के अनुसार बदलती रहती है इसलिए भी परिवर्तन आवश्यक हो जाते हैं ।

7) **पाठक की माँग की पूर्ति (Meeting the reader's demand)** पुस्तकालय पाठकों की माँग के अनुसार इंकित प्रलेख या तो मूलरूप से या छाया प्रति पाठकों की आवश्यकतानुसार उनकी माँग की पूर्ति पुस्तकालय द्वारा कर दी जाती है ।

8) **सारांशीकरण तकनीकी तथा सेवाएँ (Abstracting techniques & services)** ज्ञान का अर्जन प्रसार तथा सम्प्रेषण बड़ा ही जटिल कार्य है आज के परिदृश्य में जहाँ प्रकाशनों की संख्या बड़ी असीमित तथा असहाय हो गई वहाँ ज्ञानार्जन तथा सूचना सामग्रियों की जानकारी प्राप्त करना भी बहुत कठिन है । राष्ट्रीय प्रगति, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय उपलब्धियाँ अनुसंधान पर आधारित होती हैं । इसलिए विश्व के सभी देश अनुसंधान एवं विकास पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं ।

अनुसंधान एवं विकास को तेज गति देने के लिए सूचना महत्वपूर्ण होती है और यह समयानुसार शीघ्रताशीघ्र, कुशलतापूर्वक एवं प्रभावी ढ़ंग से विशेषज्ञों को सुलभ कराई जानी चाहिए । सूचना के उत्पादन तथा सूचना के अन्ततः उपभोगता के बीच सारांशीकरण तथा अनुक्रमणीकाकरण सेवाओं की अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है ।

झारखण्ड राज्य में मत्स्य पालन समस्या एवं समाधान

रमाकान्त सिंह[1], वन्दना श्रीवास्तव[2] और रजनी गुप्ता

1. केन्द्रीय वर्षाऋतु उपजाऊँ भूमि चावल अनुसंधान केन्द्र, हजारीबाग,825301

2. जीवविज्ञान विभाग, सन्त कोलम्बस कालेज,हजारीबाग,825301, झारखण्ड

प्रस्तावना

राज्य में जीविका चलाने के लिए मत्स्य पालन को अधिक महत्व नहीं दिया गया जब कि भारतवर्ष में मत्स्य पालन सदियों से किया जा रहा है । इसके कारण, मत्स्य पालकों विषेशकर मछुआरों में आर्थिक अभाव, साधनों की कमी, परम्परागत तरीकों से मत्स्य पालन और आधुनिक वैज्ञानिक विधियों के ज्ञान की कमी आदि हैं । राष्ट्रीय परिदृश्य में नवसृजित झारखण्ड राज्य मत्स्य उत्पादन के क्षेत्र में अत्यन्त पिछड़ा प्रदेश है । राज्य में सम्पूर्ण जल संसाधनों से प्राप्त औसत मत्स्य उत्पादन 1600 से 900 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर प्रति वर्ष होता है जो कि राष्ट्रीय औसत मत्स्य उत्पादन (2400 कि.ग्रा./हे./वर्ष) का लगभग एक तिहाई है । राष्ट्रीय औसत मत्स्य उपलब्धता 160ग्रा.प्रति व्यक्ति प्रति दिन की तुलना में राज्य में मात्र 6 ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति दिन मछली उपलब्ध होती है । राज्य में विपुल जल क्षेत्र उपलब्ध होने के बावजूद मत्स्य उत्पादकता, उत्पादन एवं प्रति व्यक्ति उपलब्धता निम्न स्तर पर है । इस शोध पत्र का उद्देश्य राज्य में मत्स्य पालन की वस्तुस्थिति, जल संसाधनों की उपलब्धि, मत्स्य पालन में समस्यायें और उनके निदान नर प्रकाश डालना है ।

झारखण्ड राज्य

इस राज्य का उदय 15 नवम्बर 2000 को भारतवर्ष के 28वें राज्य के रूप में हुआ । करोड़ों झारखण्ड वासियों ने राज्य के नव निर्माण के सपने आखों में सजोये अपना नया सफर शुरू किया । अस्तित्व में आने से पहले, झारखण्ड जिन राज्यों का अंग रहा है, इसकी सांस्कृतिक विरासत, प्राकृतिक एवं भौगोलिक भिन्नता, सामाजिक संरचना, सामाजिक तथा धार्मिक मान्यतायें उन राज्यों से पूर्णरूपेण अलग है । झारखण्ड में उपलब्ध बहुमूल्य प्राकृतिक संपदा सदा ही देश और विदेश के व्यापारियों के आकर्षण का केन्द्र रही हैं । गुगल काल में पाये जाने वाले हीरे व माणिक, अग्रेजों के समय में कोयला, लोहा, वाक्साइड, अभरख, कत्था,

बीड़ी पत्ता आदि के लिए व्यापारियों ने इस क्षेत्र को चुना । वर्तमान में उपर्युक्त खनिजों के अतिरिक्त, यह राज्य विद्यूत उत्पादन, युरेनियम उत्पादन, लौह, कोयला, सीमेन्ट एवं कत्था उद्योग के लिए भी प्रसिद्ध है । संक्षेप में यह गलत नहीं होगा कि इस राज्य को प्रकृति ने दिल खोलकर अनमोल खाजानों से भर दिया है । 79716 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले झारखण्ड राज्य को प्राकृतिक संरचना एवं मानवीय विकास को ध्यान में रखकर 4 मण्डलों,22 जनपदों,23 अनुमण्डलों, 212 विकास प्रखण्डों एवं 33315 गाँवों में विभाजित किया गया है । राज्य की कुल जनसंख्या (26,909,428) का 78.8% भाग गाँवों एवं 21.2% भाग शहरों में रहता है । सदियों पहले यह राज्य अनुसूचित जनजाति बाहुल्य प्रदेश था परन्तु 2001 की जनगणना के आधार पर राज्य में 8.44% अनुसूचित एवं 27.8% अनुसूचित जनजाति के लोग बसते हैं । प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद 23.69% परिवार गरीबी रेखा के नीचे बसर कर रहे हैं । इसका कारण अज्ञानता, निरक्षरता एवं सामाजिक कुरीतियाँ हो सकती हैं क्योंकि राज्य में मात्र 54,13% लोग ही साक्षर (67.94% पुरूष एवं 39.38% महिला) हैं । पूरी आवादी को 38.59% लोग खेतीहर किसान और 28.26% लोग कृषि मजदूर हैं । कृषि में संलग्न जनसंख्या का 26.37% एवं 22.32% पुरूष और 42.9% एवं 39.77% महिला क्रमशः खेतिहर किसान और कृषि मजदूर हैं । राज्य में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष औसत आय 4161 रू आंकी गयी है ।

जलसंसाधन

पठारी क्षेत्र होने के कारण झारखण्ड राज्य छोटी-बड़ी नदियों, नालों, झीलों, तालाबों एवं जलाशयों से परिपूर्ण है । राज्य में सरकारी एवं गैर-सरकारी तालाबों की संख्या 28735 है और 29894 हे. में फैला हुआ है । जलाशयों की संख्या 106, जिनका कुल क्षेत्रफल लगभग 108315 हे. है । इन जल संसाधनों के अतिरिक्त 20,000 हे. के गड़हा धानखेत भी उपलब्ध हैं । तालाबों एवं जलाशयों का जिलावार विवरण तालिका 1 में दर्शाया गया है ।

तालाबों, जलाशयों, चेकडैमों और धानखेतों के अतिरिक्त राज्य में छोटी-बड़ी नदियों का जाल बिछा हुआ है । मुख्य नदी थाल (बेसिन) 11 है जिनका उल्लेख तालिका 2 में किया गया है । इन नदी थाल से कुल सतही जल की वार्षिक उपलब्धता 260,162 लाख घन मीटर मापा गया है । नदी थाल में उपलब्ध सतही जल का 76.6% भाग बहकर समुद्र में समा जाता है । प्रमुख नदी थाल की कुल लम्बाई 1800 कि.मी. है ।

मत्स्य पालन

राष्ट्रीय औसतन 40 ग्राम मछली प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन को आधार मानते हुए झारखण्ड वासियों को प्रति 1076 टन मछली की आवश्यकता होगी । परन्तु मान्साहारियों की कम संख्या (60%), मत्स्य प्रोटीन का प्रतिदिन भोज्य पदार्थो में उपलब्ध न होना तथा विपन्नता के कारण राज्य में कुल 92,000 टन मछली की आवश्यकता प्रति वर्ष होती है । राज्य में कुल उपलब्ध जल स्त्रोतों से मत्स्य उत्पादन 50,000 टन प्रति वर्ष प्राप्त हेता है । इस प्रकार झारखण्ड में 42,000 टन प्रति वर्ष मछली की कमी होती है और यह कमी दूसरे राज्यों, खासकर आन्ध्र प्रदेश से मछली आयात करके परी की जाती है ।

उत्पादन

उपलब्ध जल संसाधनों को वैज्ञानिक विधि से उपयोग में लाकर राज्य की मछली आवश्यकता को विना आयात के ही पूरा किया जा सकता है । विभिन्न जल स्त्रोतों जैसे तालाब, जलाशय, नदी, चेकडैम और धान खेत से नीचे दी गयी तालिका 3 के औसत मत्स्य उत्पादन को बढ़ाया जाय, तो 15 ग्राम मछली प्रति व्यक्ति प्रति दिन उपलब्ध करायी जा सकती है । साथ ही साथ यह प्रदेश मछली निर्यातक राज्य भी बन सकता है ।

जीरा/अंगुलिका उत्पादन

समुचित मात्रा और शुद्ध जीरों की उपलब्धता मत्स्य उत्पादन की पहली कड़ी है । राज्यों के सभी श्रोतों से जीरों की उपलब्धता लगभग 6 करोड़ है जबकि तालिका 3 में दिये गये उत्पादन के लक्ष्य को पाने के लिए कम से कम 40 करोड़ से भी अधिक शुद्ध जीरों की आवश्यकता प्रति वर्ष होगी । विभिन्न जलश्रोतों के लिए जीरों की आवश्यकता तालिका 4 में प्रस्तुत किया गया है ।

राज्य स्तर पर सुविधायें

नवगठित राज्य का मत्स्य विभाग विभिन्न समस्याओं का निदान करते हुए मत्स्य विकास में वृद्धि के लिए प्रयत्नशील है । आज के संदर्भ में मत्स्य अनुसंधान, पालन एवं विकास के लिए झारखण्ड राज्य में उपलब्ध संसाधनों का विवरण तालिका 5 में दिया गया है । सभी संसाधनों को ध्यान में रखते हुए मत्स्य विभाग ने मछली की पैदावार 10 से 20% हर वर्ष बढ़ाने का लक्ष्य रखा है क्यों कि मत्स्य विभाग ने अनुभव किया कि मध्यम सघन मत्स्य पालन से

2000 कि.ग्रा. और मूलरूप से मछली पालने से 500 से 600 कि.ग्रा. प्रति वर्ष प्रति हेक्टेयर मछली की पैदावार होती है । इस परिस्थिति में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष मात्र 2.5 कि.ग्रा. ही मछली उपलब्ध हो पाती है ।

समस्या

प्रकृति प्रदत्त एवं मानव निर्मित विशाल जल क्षेत्र उपलब्ध होते हुए, झारखण्ड राज्य में मत्स्य उत्पादन एवं उत्पादकता राष्ट्रीय औसत से बहुत कम है । इसका मुख्य एवं संभावित कारण निम्नलिखित हो सकते हैं ।

- बिहार राज्य द्वारा झारखण्ड क्षेत्र की उपेक्षा ।
- तालाबों, जलाशयों एवं चेक डैमों का मिट्टी क्षरण से भर जाने के कारण जल धारण क्षमता में ह्रास ।
- नदियों एवं जलाशयों में राज्य के औद्योगिकरण से प्रदूषण का बढ़ना ।
- तालाबों में अवांछित, अघुलनशील कूड़े, प्लास्टिक का जमाव ।
- प्रदूषण से नदियों एवं जलाशयों से प्राकृतिक प्रजनन में कमी एवं मछली तथा अन्य जीवों का लोप ।
- ज्ञान का अभाव ।
- शुद्ध एवं समुचित मात्रा में जीरों एवं अंगुलिकाओं का अभाव ।
- गरीब एवं स्वसंसाधनों का अभाव ।
- असंगठित मछुआरा समाज ।
- तालाबों में जैविक खाद का अभाव ।

यह भी अनुभव किया गया है कि राज्य में खनिजों, जल एवं विजली उपलब्धता से विभिन्न वस्तुओं का निर्माण किया जा रहा है । निर्माण कार्य हेतु लौह संयन्त्र, रासायनिक संयन्त्र, थर्मल विजली संयन्त्र, सीमेन्ट संयन्त्र, वाशरी, डिस्टीलरी इत्यादि लगाये गये हैं और लग भी रहे हैं । इन संयन्त्रों से निकले प्रदूषित पदार्थ एवं जल विना किसी उपचार के सीधे नदियों एवं नालों में छोड़ दिये जाते हैं । इन प्रदूषित पदार्थो से नदियों का जल प्रदूषित होता ही है साथ-साथ नदियों में रह रहे जीवो पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है। इन प्रदूषणों का मत्स्य उत्पादकता पर बुरा प्रभाव पड़ता है क्यों कि नदियों एवं जलाशयों के जल में,

- घुलनशील आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है ।
- प्लवक (प्लैंकटान) की वढ़ोतरी रूक जाती है साथ-साथ इनका विनाश भी होन लगता है ।

- मछलियों का विकास अवरूद्ध होने के कारण मछलियों का रोग ग्रस्त होना तथा मृत्यु संख्या बढ़ जाती है ।

अध्ययन द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि झारखण्ड राज्य की मृदा अम्लीय होने के साथ-साथ पोटाश की प्रचुरता तथा गन्धक की कमी से युक्त है । इस कारण तालाबों एवं जलाशयों में जन्तु प्लवक की मात्रा पर्ण प्लवक से कम होती है । बहाव द्वारा तालाबों एवं जलाशयों में जमी मिट्टी ही जल की उर्वरता को प्रभावित करती है । मछली की अच्छी पैदावार के लिए जल की सामान्य गुणवत्ता भी प्रदेश में एक समस्या है। जल की सामान्य उपयुक्त एवं उपलब्ध गुणवत्ता तालिका 6 में प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त समस्याओं के अतिरिक्त राज्य में सघन मत्स्य पालन के प्रशिक्षण, प्रचार-प्रसार, मत्स्य रोगों का निदान, रोगग्रस्त मछली के उपचार के बाद की देख-रेख तथा शुद्ध जीरा/अंगुलिकाओं की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता का अभाव भी अनुभव किया जा रहा है।

समाधान

झारखण्ड राज्य में उपलब्ध जल संसाधनों का उपयोग यदि वैज्ञानिक विधि से किया जाय, तो यह राज्य अगले कुछ वर्षों में न केवल मछली की आवश्यकता में आत्मनिर्भर होगा बल्कि मत्स्य निर्यातक राज्य भी बन सकता है । आत्मनिर्भर एवं निर्यातक राज्य बनने की दिशा में निम्नलिखित विन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता होगी ।

- तालाबों की तलहटी मे मृदा क्षरण द्वारा जमी मिट्टी को निकालकर तालाब की जल धारण क्षमता बढ़ाना ।
- गाँव में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों जैसे महुआ, करंज, नीम की खली एवं धान की भूसी का मछली पालन में समुचित प्रयोग का ज्ञान कराना ।
- नीची धनहर खेतों में छोटे तालाबों का निर्माण ।
- हर जिले में नयी हैचरी का निर्माण और पुरानी बन्द पड़ी हैचरियों का पुनरूद्धार ।
- मत्स्य विभाग तथा अन्य औद्योगिक विभागों का समय-समय में प्रदूषण रोकने के तरीकों पर विचार तथा उपलब्ध साधनों/तरीकों का क्रियान्वयन ।
- जलाशयों में विभाग द्वारा अंगुलिकाओं का भण्डारण ।
- प्रजनन के समय मछली पकड़ने पर रोक ।
- मछुआरों एवं मछली पालने वालों के लिए मत्स्य पालन, मछली में वीमारी एवं उसका निदान के लिए समय-समय पर जिले तथा प्रखण्ड स्तर पर प्रशिक्षण की व्यवस्था ।

- मछुआरों को ऋण सुविधा का ज्ञान ।
- रेडियो और दूरदर्शन द्वारा समय-समय पर मछली पालन के पद्धतियों और होने वाले लाभ का प्रसारण ।
- तालाब बनाने, जीरा डालने, खाद डालने इत्यादि में सरकार द्वारा दिये जा रहे ऋणों एवं अनुदानों में मछुआरो की सहभागिता सुनिश्चित करना ।
- मत्स्य विभाग का उन सभी विभागों से तारतम्य रखना जिन विभागों द्वारा नये जल स्त्रोतो का सृजन किया जा रहा है । ऐसा करने से भविष्य में मत्स्य पालन में अतिरिक्त आवश्यकताओं को पूरा करने में सुविधा होगी ।

मत्स्य उत्पादन अधिक क्यों ?

- सस्ती दरों पर मछली की उपलब्धता ।
- राज्य के राजस्व में वृद्धि ।
- रोजगार (खासकर पढ़े लिखे वेरोजगार युवको के लिए) जैसे जाल, नाव, टोकरी, प्रशीतन (कोल्ड स्टोरेज) वैज्ञानिक उपकरण, दवाओं का निर्माण एवं याता-यात में बढ़ोतरी ।
- मछुआरों को पूरे वर्ष काम ।
- सतही जल की बरवादी को रोकना ।
- तालाबों, जलाशयों एवं चेक डैमों की जल धारण क्षमता बढ़ाकर भूमि के नीचे के पानी की सतह को बढ़ाना ।
- मत्स्य रोजगार एवं उत्पादन में प्रगति से मछुआरों के रहन-सहन में सुधार, बच्चों की शिक्षा के स्तर में वृद्धि साथ-साथ नये अनुसंधानो से ज्ञान प्राप्त कर मत्स्य व्यवसाय को आधुनिक बनाने में सहयोग हो सकता है ।

सारांश

झारखण्ड राज्य में जल संसाधनों की विशाल उपलब्धता होते हुए भी मत्स्य उत्पादन, प्रति व्यक्ति मत्स्य उपलब्धता राष्ट्र के स्तर से 20% से भी कम है । अज्ञानता, विपन्नता, प्रदूषण, असंगठित मछुआरे, विभिन्न विभागों में तालमेल की कमी, मत्स्य विभाग में संसाधनों की कगी इत्यादि इसके कारण है । वैज्ञानिक पद्धति, मत्स्य विभाग की सक्रियता, मत्स्य पालकों को प्रशिक्षण विभागों में अच्छा तारतम्य झारखण्ड को मछली निर्यातक राज्य बना सकता है ।

संदर्भ ग्रन्थ

- प्रगति प्रतिवेदन, 2001-2002, पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, झारखण्ड सरकार ।
- कार्य प्रतिवेदन, 2002-2003, पशुपालन एवं मत्स्य विभाग, झारखण्ड सरकार ।
- आर्यन, शहाब 2002, झारखण्ड एक परिचय, सफल प्रकाशन, दिल्ली-राँची ।
- हेमन्त, 2001, झारखण्ड, निगम प्रकाशन, नई दिल्ली ।
- सिंह, सुनील कुमार, 2003, झारखण्ड 2002, रीडर्स कार्नर, पटना ।
- गुप्ता, रजनी, 2003, मत्स्य उत्पादन के संदर्भ में तालाब के भौतिक, रासायनिक, प्लवक एवं उत्पादकता गुणों का अध्ययन । शोध ग्रन्थ, विनाबा भावे विश्वविद्यालय पृष्ठ 155.
- सिंह, आर.के.2003, झारखण्ड राज्य में धान उत्पदन पद्धति से सामाजिक-आर्थिक गतिशीलता । के. व .उ .चावल अनु. केन्द्र (के.चा.अ.सं.-एन.ए.टी.पी.-भा.कृ.अ.प.), हजारीबाग , पृष्ठ 138.

तालिका - 1 राज्य में तालाबों एवं जलाशयों की संख्या तथा क्षेत्रफल

जिला	तालाबों की संख्या		क्षेत्रफल (हे.)		जलाशयों की संख्या	क्षेत्रफल (हे.)
	राजकीय	गैर-राजकीय	राजकीय	गैर-राजकीय		
देवघर	1295	1433	918	803	17	3400
दुमका	2632	1772	663	639	5	6500
गोड्डा	505	478	431	294	-	-
साहिबगंज	909	1569	557	652	-	-
बोकारो	1636	540	1904	350	4	4000
चतरा	300	200	500	300	6	7500
धनबाद	112	387	1400	247	8	14000
गिरीडिह	356	383	1020	486	3	2000
हजारीबाग	454	539	2025	941	16	32451
कोडरमा	151	100	300	200	-	-
पर्वी सिंघभूम	700	1500	1000	1300	4	3600
पश्चिमी सिंघभूम	959	3515	1156	1528	8	6500
गुमला	349	297	2256	131	5	2500
लोहरदगा	116	119	2108	62	10	5000

राँची	508	802	1811	1766	11	8000
पलामू	255	1706	995	209	6	10100
गढ़वा	250	600	800	140	3	2800
कुल योग	11,787	15340	19844	10048	106	108351

स्त्रोत : *मत्स्य विभाग, झारखण्ड सरकार, सिंह (2003)*

तालिका - 2. राज्य में मुख्य नदी थाल (बेसिन)

क्र.सं.	थाल का नाम	संगामी नदी
1.	गुमानी	गंगा
2.	मयूराक्षी	भागीरथी
3.	अजय	भागीरथी
4.	शंख	दक्षिणी कोयल
5.	दक्षिणी कोयल	ब्राह्मणी
6.	उत्तरी कोयल	सोन
7.	बाराकर	दामोदर
8.	दमोदर	भागीरथी
9.	खरकई	सुवर्ण रेखा
10.	सुवर्ण रेखा	बंगाल की खाड़ी
11.	अन्य धारायें	उद्गम राज्य के बाहर
नदियों की कुल लम्बाई		1800 कि.मी.

स्त्रोत : आर्यन 2002

तालिका - 3. क्षेत्रफल, जल स्त्रोत उत्पादकता तथा उत्पादन

जलश्रोत	क्षेत्रफल (हे.)	उत्पादकता (टन/हे.)	उत्पादन (टन)
1. तालाब	29,892	2.5	74,730
2. जलाशय	108,351	0.1	10,835
3. चेक डैम	20,000	0.2	4,000
4. धनखेत	2,60,000	0.005	1,300
कुलयोग		= 90,865	

स्त्रोत : *मत्स्य विभाग, झारखण्ड सरकार*

तालिका - 4. राज्य में जीरा या अंगुलिकाओं की प्रति वर्ष आवश्यकता

क्र.सं	जल श्रोत	क्षेत्रफल (हे.)	संचय धनत्व प्रति हे.	जीरे/अंगुलिकाओं की संख्या (करोड़)
1.	तालाब	29,892	10,000	29.89
2.	जलाशय	108,351	1,000	10.84
3.	चेकडैम	20,000	2,000	4.00
	कुलयोग			= 44.73

स्त्रोत : *मत्स्य विभाग, झारखण्ड सरकार*

तालिका - 5. मत्स्य पालन,अनुसंधान एवं विकास के संसाधन

क्र.सं.	विवरण	संख्या/इकाई
1.	मत्स्य पालनरत जिले	16
2.	मत्स्य एवं मत्स्य जीरा प्रक्षेत्र	56
3.	संवर्धन (नर्सरी) तालाब (क) क्षेत्रफल (ख) उत्पादन क्षमता	 25 हे. 250 लाख
4.	पालन-पोषण तालाब (क) क्षेत्रफल (ख) अंगुलिकाओं की उत्पादन क्षमता	 15 हे. 10 लाख
5.	भण्डारण तालाब (क) क्षेत्रफल (ख) मत्स्य उत्पादन	 22 हे. 55,000 कि.ग्रा.
6.	हैचरी (क) संख्या (ख) क्षमता	11 22 करोड़
7.	मछुआरों की संख्या	8.2 लाख
8.	मत्स्य व्यवसाय में संलग्न मछुआरे	2.5 लाख

स्त्रोत : *मत्स्य विभाग, झारखण्ड सरकार*

तालिका - 6. मत्स्य पालन के लिए राज्य के तालाबों के जल की गुणवत्ता

क्र.सं.	गुणवत्ता	उपयुक्त	उपलब्ध
1.	तापमान (से.)	25-32	14-29
2.	पारदर्शकता (से.मी.)	20-35	6-68
3.	रंग	हरालिए हुए साफ	विल्कुल साफ
4.	पी एच	7-8	7-9
5.	शुद्ध उत्पादकता	-	0-175 गि.ग्रा.
6.	जन्तु प्लवक	-	कार्वन/घन मी./घंटा
7.	पर्ण प्लवक	-	4-240 प्रति 50 लीटर
8.	कार्बन डाई आक्साइड (पीपीएम)	0.3	0-1
9.	क्षारीयता (पीपीएम)	75-150	40-90
10.	घुलनशील आक्सीजन (पीपीएम)	5-10	6-11
11.	नत्रजन (पीपीएम)	0.2-0.5	सूक्ष्म मात्रा
12.	स्फुर (पीपीएम)	0.2-0.5	सूक्ष्म मात्रा
13.			

स्त्रोत : *गुप्ता (2002); सिंह (2003)*

मलेरिया रोगवाहक नियंत्रण में लार्वाभक्षी मछलियों की भूमिका

मानवेन्द्र त्रिपाठी[1] वी.शाही[2] एवं के.बरूआ[3]

1. *सहायक कीटविज्ञानी मलेरिया इला.मण्डल,इलाहाबाद*
2. *प्रभारी अधिकारी,मलेरिया शोध केन्द्र शंकरगढ़,इलाहाबाद*
3. *उपनिदेशक,राष्ट्रीय रोगवाहक जनित रोग नियंत्रण कार्य*

परिचय

भारत जैसे विशाल एवं दुर्गम क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में मच्छरों पर नियंत्रण एक दुरुह कार्य है । इसी क्रम में विकास की अनियंत्रित गति के कारण मच्छरजनक परिस्थितियों में उत्तरोत्तर वृद्धि भी परिलक्षित हो रही है । इसलिये रोगवाहकों के नियंत्रण के उपाय इस प्रकार से किये जाने चाहिये की रोगवाहक मच्छरों की जनसंख्या में कमी की जा सके । जब कि कार्यिकी के प्रतिरोधक क्षमता के कारण कीटनाशकों के प्रति प्रभावहीनता भी अनेक क्षेत्रों में विकसित हो गयी है । कीटनाशकों के अनवरत प्रयोग से उत्पन्न रसायनिक प्रदूषण भी जैविक नियंत्रण की ओर इंगित करते हुये मलेरिया नियंत्रण के 'समन्वित प्रबन्धन' की ओर आगाह करते हैं । इसके फलस्वरूप स्थानीय लार्वाभक्षी मछलियों की पहचान के साथ उनके लार्वाभक्षण की क्षमता को भी जानना आवश्यक है। (कास्टा एवं फर्नान्डो 1977, मेनन एवं राजागोपालन 1977) लेयर्ड एवं माइल्स (1983) ने इस समस्या का वृतान्त इस प्रकार बताया है कि '' कीटनाशक प्रतिरोध के कारण अनेक तकनीकी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसके बारे में हम आशा कर सकते हैं कि 'समन्वित प्रबन्धन' के प्रयोग से इसको काफी हद तक दूर किया जा सकता है ।'' शर्मा, वी. पी. (1986) का विचार इस प्रकार है कि अवशेषी कीटनाशक के छिड़काव की रणनीति जो कि मलेरिया के पारेषण को अवरूद्ध करती है, विभिन्न कारणों से इस समय संकटावस्था में है । एक तरफ छिड़काव का खर्च बढ़ता ही जा रहा है तथा इनके माध्यम से होने वाले पारिस्थितिकीय असंतुलन में वृद्धि के कारण समाज में इसकी ग्राह्यता में कमी हो रही है ।

सत्तर के मध्य दशक में मलेरिया का पुनर्प्रकोप भारत में हुआ । यद्यपि देश के अनेक भाग 1973 से ही फाइलेरिया जापानीज इन्सेफेलाइटिस की महामारी से ग्रसित होते रहे हैं । राष्ट्रीय रोगवाहक जनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम (पूर्व में एन.एम.ई.पी. एवं एन.ए.एम.पी. के नाम से जाना जाता था) के ऊपर ही रोगवाहकों को नियंत्रित करने का भार है । नगरीय मलेरिया की समस्या भी नवीन आयामों के साथ प्रकट हुई है । ग्रामीण क्षेत्रों में मलेरिया के नियंत्रण हेतु अवशेषी कीटनाशकों एवं नगरीय क्षेत्रों में लार्वानाशक का छिड़काव किया जाता है । इस व्यवस्था के फलस्वरूप मलेरिया के पारेषण में कमी आयी परन्तु देश के अनेक क्षेत्र समय-समय पर मलेरिया महामारी की चपेट में आये । विगत दो दशकों से कुल मलेरिया रोगियों की संख्या लगभग 20-22 लाख के बीच है परन्तु *प्लाज्मोडियम फैल्सीपेरम* के रोगियों में लगातार वृद्धि दिखाई पड़ रही है । इसी अवधि में परजीवी में क्लोरोक्वीन के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास भी हुआ है । मलेरिया के नियंत्रण में अधिक शक्तिशाली कीटनाशकों के अवक्षेपी स्वरूप होने के कारण तथा खाद्य श्रृंखला एवं वातावरण में लम्बे समय तक मौजूद रहने के कारण आम जनमानस में आलोचना भी होती गयी तथा लाभदायक जीवों के अनावश्यक विनाश के कारण भी नियंत्रण विधियाँ कमजोर एवं निरर्थक होती गयी ।

इस पृष्ठभूमि के अन्तर्गत अन्य विकल्पों की खोज प्रारम्भ की गयी है जिनमें से एक नवीन पद्धति है - जैव पर्यावरणीय नियंत्रण । इस रणनीति के फलस्वरूप मच्छरों के जनन स्थलों पर नियंत्रण, परिणामस्वरूप मलेरिया के संचारण में कमी एवं इसका आकलन मूल्य प्रभावी पद्धति के अन्तर्गत किया जाता है।

शोध सामग्री एवं विधियाँ (Materials & Methods)

जैव पर्यावरणीय पद्धति को विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी द्वारा प्रारंभ करने के पूर्व नगरीय मलेरिया कार्यक्रमों में इसका प्रचलन था । इस विधि का प्रथम प्रयोग गुजरात राज्य के खेड़ा में किया गया । इस विधि के प्रयोग के पूर्व ऐनाफेलीज क्यूलिसिफेसीज जो कि एक ग्रामीण रोगवाहक के रूप में स्थापित है, प्रचुरता में पाया जाता था । उक्त रोगवाहक परम्परागत कीटनाशक डी.डी.टी., मैलाथियान से प्रतिरोधक क्षमता भी विकसित कर चुका था । इन क्षेत्रों में पर्यावरणीय परिवर्तन एवं रूपान्तरण के कारण तथा (लार्वाभक्षी) गप्पी मछली *पोइसिलिया रेटिकुलेटा* के कारण मलेरिया रोगियों की संख्या में कमी आयी । यह वैकल्पिक रणनीति पर्यावरण के दृष्टिकोण से पूर्णतया सुरक्षित होने के साथ-साथ प्रचुर सामाजिक ग्रहणशीलता के रूप में भी प्रभावी रही । (गुप्ता एवं शर्मा 1989)

उक्त प्रयोगों के आधार पर इस अध्ययन को दो विभिन्न जनपदकीय परिस्थितियों में सम्पन्न किया गया ।

प्रथम-सोनापुर जो कि सुदूर दक्षिणी पूर्व में जनपद कामरूप के आसाम में अवस्थित है । इस क्षेत्र में निचले जगह वाले स्थल ज्यादा हैं । वर्षा के समय ये क्षेत्र जल से पूर्णतया आच्छादित रहते हैं । यहाँ जनजातीय जनसंख्या है जो कि गाँवों एवं पुरवों (Hamlets) में रहती है । आधुनिक जीवन की मूलभूत सुविधाओं का अभाव है । लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि एवं वन सामग्री का अल्प संग्रह है । धान का उत्पादन प्रमुख है । अधिकतर घेरों में पशुशालायें तथा पोखरें अलग-अलग परिमापों के हैं । मलेरिया के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण क्षेत्र *इन्डेमिक* तथा *पी.फैल्सीपेरम* के लिये संवेदी है तथा मलेरिया से मृत्यु भी इस क्षेत्र में प्रायः होती है ।

स्थानीय मछलियों की प्राणी समूह के ज्ञात करके उनके लार्वाभक्षण की क्षमता को आँकते हुये गेम्बुसिया का वृहद उत्पादन किया गया । यह भी देखा कि *पोइसिलिया रेटिकुलेटा* की वृद्धि छिछले एवं प्रदूषित जल में भी सम्भव है । सोनारपुर-प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के अप्रयोगिक तालाबों को चयनित करके उसमें से खरपतवार को निकाल करके किनारों को ठीक कर दिया गया । आवश्यक प्लवकों की वृद्धि के लिये धान की भूसी एवं गाय के गोबर को भी डाला गया ।

दूसरा अध्ययन इलाहाबाद जनपद के शंकरगढ़ ब्लाक में किया गया । शंकरगढ़ इलाहाबाद मुख्यालय से 45 कि.मी. दूर मध्यप्रदेश एवं उत्तरप्रदेश के सीमा पर स्थित है । यह क्षेत्र पत्थर की खदानों एवं सिलिका बालू के लिये प्रसिद्ध है । ये खदानें ही मच्छरों के आदर्श आश्रय स्थल हैं । पत्थरों की खादानों का चयन, लार्वाभक्षी मछलियों के उत्पादन के लिये, क्षेत्र की स्थिति को देखते हुये किया गया। ग्रीष्म काल में पानी की पर्याप्त आपूर्ति के लिये टैंकर का भी प्रयोग किया गया । गाय के गोबर को पन्द्रह दिनों के अन्तराल पर हैचरीज के किनारों पर डाला गया, जिससे कि जन्तुप्लवक की संख्या सतत बनी रहे । लार्वाभक्षी के परभक्षी मछलियों को पूर्व में ही निकाल दिया गया । जल संग्रह की उत्पादकता तालाबों पत्थरों की खदान में पादप एवं जन्तु प्लवक समुदायों पर निर्भर करती है । पी.एच. का मान 7.5-8.5 जो कि मछली संवर्द्धन के लिए उपयुक्त (खन्ना 1987) है ।

प्रेक्षण एवं विवेचना

i.) सोनपुर में 36 जाति की मछलियों का अध्ययन करते हुये यह पाया गया कि 15 जाति की मछलियाँ अस्थायी जल वाले क्षेत्रों में, 32 अर्धस्थायी वाले क्षेत्रों में एवं 35

स्थायी पोखरों में पायी गयी । (कुछेक जाति की मछलियाँ एक से अधिक अन्य स्थानों में भी पायी गयी)

ii.) *एम्बलीफैरेंगोडान, डेनियो, रसबोरा* में लार्वाभक्षण की क्षमता पायी गयी है ।

iii.) कालम फीडर्स, *पुन्टियस, कोलिसा* में भी लार्वाभक्षण की क्षमता पायी गयी है ।

iv.) मछलियों के जारा विशेष तौर से *वैलेगो* में भी लार्वाभक्षण की क्षमता आंकी गयी है परन्तु इनके प्रौढ़ अन्य मछलियों के साथ लार्वाभक्षी मछलियों के लिये नुकसानदायक है ।

शंकरगढ़ ब्लाक में तालाब एवं पत्थरों के खदान में लार्वाभक्षी का संवर्धन किया गया (त्यागी एवं कुलश्रेष्ठ 1989) । प्रतिशत बढ़ोतरी की दर प्रतिवर्ष तालाब में ज्यादा पायी गयी (स्टोन खदान में 356.25% तालाब में 646.87%)

गलेरिया एक स्थानीय एवं नाभीय (Focal) रोग होने के कारण इसके पारेषण की तीव्रता विभिन्न स्थानें पर भिन्न-भिन्न हो सकती है । भारत में मलेरिया के दो स्वरूप मिलते हैं स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति । स्थायी प्रकृति का गलेरिया पूर्वोत्तर के क्षेत्रों में एवं अस्थायी प्रकृति में महामारी के विभिन्न इपीसोड भिन्न अंतरालों पर दृष्टिगोचर होते हैं । मलेरिया के प्राथमिक रोगवाहकों में दो प्रमुख ऐ. *क्यूलिसिफेसीज* जो कि लगभग 65% अधिक मलेरिया पारेषण के लिये उत्तरदायी है, शंकरगढ़ में बहुतायत में मिलता है। (शर्मा-2003) ऐ.*मिनिमस,* जो कि पूर्वोत्तर क्षेत्रों में व्याप्त है, उच्च *एन्थ्रोपोफिलिस* इन्डेक्स के कारण मलेरिया के पारेषण की तीव्रता ज्यादा होती है, सोनपुर में भी पाया जाता है । (देव एवं शाही 1989) ।

कीटनाशकों के माध्यम से गलेरिया का नियंत्रण एक महँगा विकल्प है । कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता के विकसित होने एवं इसके बहुआयामी स्वरूप के कारण नियंत्रण और कठिन होता गया तथा कीटनाशकों के दामों में भारी वृद्धि के कारण कीटनाशकों के परिवर्तन का खर्च विकासशील देश पर वहन करना एक प्रश्नवाचक समस्या के रूप में परिलक्षित होता है ।

लार्वाभक्षी मछलियों के माध्यम से मच्छरों के जननस्थलों पर नियंत्रण के विषय में साहित्य के अध्ययन से अद्यतन स्थिति यह है कि मछलियों की 300 जातियाँ मच्छरों की 35 जातियों को 40 विभिन्न देशों में नियंत्रित करने में सफल हुई है । (ग्रेरवेरिस एवं लायर्ड 1968) । इस विधि में मच्छरों पर नियंत्रण प्रकृति के तादात्मय में किया जाता है इसलिये सामाजिक ग्राह्यता भी अधिक है ।

अगर हम कीटनाशक एवं लार्वाभक्षी मछलियों के माध्यम से रोगवाहकों के नियंत्रण का तुलनात्मक रूप देखें तो वह निम्न है :

क्रम.सं	कीटनाशकों के अनुपयोगी पहलू	लार्वाभक्षी मछलियों की उपादेयता
1.	रोगवाहक जातियों में कीटनाशक प्रतिरोधक क्षमता का विकास	रोगवाहकों में प्रतिरोधक क्षमता के विकास की कोई सम्भावना नहीं
2.	सीमित उपलब्धता	वृहत संवर्धन
3.	उच्च दर पर उपलब्ध	निम्न दर पर उपलब्ध
4.	पारिस्थितिकी असन्तुलन के लिए उत्तरदायी	प्रदूषण नहीं
5.	समुदाय की ग्राह्यता कम	समुदाय में अत्यधिक ग्राह्य
6.	नानटारगेट जीवों के लिये भी विषैला	टारगेट की विशिष्टता से युक्त
7.	संग्रह की समस्यायें	संग्रह आसान
8.	नियंत्रण कार्य में बारम्बार उपयोग की आवश्यकता	बारम्बार प्रयोग की आवश्यकता नहीं
9.	प्रभाव थोड़ समय के लिए	अधिक प्रभावकारी
10.	मानव के लिये नुकसानदायक	मानव के लिये सुरक्षित
11.	उत्पादन बड़े कारखानों में सम्भव	गाँवों के तालाबों में उत्पादन किया जा सकता है
12.	परिवहन की समस्या अधिक खर्च	स्थानीय उत्पादन
13.	जनसमुदाय का सहयोग सीमित	ग्रामीणों का सहयोग आवश्यक
14.	कुओं/ओवरहेड टैंक/मछलियों के फार्म में प्रयोग नहीं किया जा सकता है	कुओं में प्रयोग किया जा सकता है
15.	जनन सम्भव नहीं	स्वयं जनन करने में सक्षम

गुजरात राज्य के खेड़ा जनपद के प्रयोगों से उत्साहित होकर ही देश के विभिन्न भूजानपदकीय पारिस्थितकीय स्थितियों में भी प्रयोग किये गये । इन सभी क्षेत्रों में रोगवाहक नियंत्रण में पर्यावरणीय विधियों के साथ मछलियों का प्रयोग भी मच्छरों के जनन स्थलों को नियंत्रित करने में हुआ । (दुआ एवं शर्मा एस.के.1989, चन्द्रहास एवं वैंकटरमनय्या - 1989,मल्होत्रा एवं शर्मा वी.पी.,प्रसाद एवं अन्य 1989, अंसारी एवं अन्य 1989 और सिंह एवं अन्य 1989) । उक्त क्रम में स्थानीय मछलियों के प्राणी समूह का सर्वेक्षण कर मच्छरों के जनन स्थलों में कमी करने की क्षमता देखते हुये विभिन्न वास स्थानों पर इनका परीक्षण भी किया गया (शर्मा आर.सी. एवं अन्य-1987) ।

ऐ.क्यूलिसिफेसीज मच्छर मूलतः ग्रामीण एवं परिधीय नगरीय क्षेत्रों में कई प्रकार के वास स्थानों में जनन करता है । पोखरे,तालाब,धान के खेत,नहरों के कुलवें,रिसकर एकत्र होने वाले जल एवं दलदली भूमि पर संग्रहित जल इनके उचित जनन स्थल हैं (शर्मा वी.पी.1987 एवं राव टी.1984) । नगरीय रोगवाहक ऐ.स्टीफेसाई -कुओं; ओवरहेडटैक,टंकी हौज में पाया जाता है (राव टी.1984) । प्रायोगिक रूप में दोनों लार्वाभक्षी मछलियाँ-*पोइसिलिया रेटिकुलेटा* एवं *गेम्बुसिया एफिनिस* इनके जनन स्थलों को नियंत्रित करने में सक्षम है । देश के विभिन्न क्षेत्रों में इन मछलियों की सहायता से मच्छरों के जनन स्थलों को नियंत्रित भी किया जा चुका है (सीतारमन एवं अन्य 1976,मेमन एवं राजगोपालन 1977,एवं शर्मा आर.सी. एवं अन्य 1987) ।

दोनों प्रमुख लार्वाभक्षी मछलियाँ विदेशज हैं विशेषतया *पोइसीलिया रेटिकुलेटा* जो कि मूलतः दक्षिणी अमरीका की है भारत में 1908 में लायी गयी (झिंगरन,1985) । *गेम्बुसिया एफिनीस,*जो कि मूलतः टेक्सास की है 1928 में डा.वी.ए.राव के द्वारा इटली से लायी गयी (राव,1984) ।

शंकरगढ़-इलाहाबाद जनपद का मलेरिया संवेदी क्षेत्र है और मलेरिया की विभीषिका को देखते हुये 1987 में मलेरिया शोध केन्द्र ने एक फील्ड स्टेशन की स्थापना की । पत्थर की खदान के कारण मजदूरों का आवागमन सदैव होता है । ये खदानें *ऐ.क्यूलिसिफेसीज* के आदर्श स्थल हैं । तालाब एवं पत्थर की खदानों में ऋतु एवं भौतिक परिवर्तन मछलियों के जनन को प्रभावित करता है । दो प्रमुख कारक-तापक्रम एवं प्रकाश इसके लिए उत्तरदायी है । तालाबों में वायु के प्रवाह से कलिंग होती है, अत्यधिक गर्म होने की संभावनायें कम हो जाती है । जबकि पत्थर के खदान का छोटा आकार जल्द ही गर्म हो जाता है । निम्न तापक्रम भोजन को ग्रहण करने एवं श्ससन को प्रभावित करता है (खन्ना 1987) । इसी के साथ-साथ पत्थर की खदान में जल के प्रतिधारण की क्षमता कम होने के कारण मछलियों के उत्पादन की दर सम्भवतया कम,जल रिसाव के कारण मिलती है । इन समस्याओं को छोड़कर यथा-रिसाव,ग्रीष्मकाल में जल की कमी के अलावा पत्थर के खदान में लार्वाभक्षी मछलियों का संवर्धन कर मच्छरों के जनन स्थलों को नियंत्रित किया जा सकता है ।

आसाम राज्य के सोनापुर क्षेत्र में मलेरिया की विभीषिका को ध्यान में रखते हुये मलेरिया शोध केन्द्र ने 1986 में फील्ड स्टेशन की स्थापना की । उक्त क्षेत्र में लार्वाभक्षी मछलियों के संवर्धन में कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा ।

1. जनजातीय क्षेत्र एवं सामाजिक आर्थिक ढाँचे के कमजोर होने के कारण मछलियाँ एक प्रगुख आहार है । जनजातीय लोग जाल के माध्यम से इनको पकड़कर खा जाते हैं। स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से इसे दूर किया जा सकता है।
2. वर्षा की अधिकता के कारण वर्ष में एक या दो बार बाढ़ का सामना करना पड़ता है और बाढ़ के प्रकोप से ये मछलियाँ बह जाती हैं । अतएव इनके संवर्धन की समस्यायें हैं ।
3. अधिकतर जल संग्रह वाले छिछले क्षेत्र अस्थायी प्रकृति के हैं । अतएव लार्वाभक्षी का पालन कठिन है ।

स्वीटमैन (1936) ने अपने निष्कर्षों को निम्नवत व्यक्त किया है -लार्वाभक्षी मछलियों के द्वारा अगर मच्छरों का नियंत्रण बुद्धिमानी पूर्वक किया जाय तो यह सर्वाधिक सस्ता अधिक प्रभावकारी स्थायी अन्य अप्राकृतिक विकल्पों की तुलना में तर्कसंगत एवं प्रामाणिक है परन्तु दुर्भाग्यवश विभिन्न दृष्टांत इंगित करते हैं कि ऐसा किया नहीं गया । उक्त कथन की सत्यता एवं ग्राह्यता है परन्तु इस विधि की भी अपनी सीमायें है - इसका रोगवाहकों पर "नाकडाउन" प्रभाव नहीं है साथ ही साथ लार्वाभक्षी मछलियों के पालने के समय लगातार पर्यवेक्षण करना पड़ता है । इसी क्रम में बहने वाले जल एवं बाढ़ वाले क्षेत्रों में लार्वाभक्षी का संवर्धन उपयोगी नहीं है । देश के विभिन्न भागों यथा हरिद्वार, मद्रास, शाहजहाँपुर, गाजियाबाद, खेड़ा इत्यादि, में मलेरिया शोध केन्द्र के अध्ययन से इसकी पुष्टि होती है कि लार्वाभक्षी मछलियाँ मच्छरों के जनन स्थलों को नियंत्रित करने तथा रोग के पारेषण को अवरूद्ध करने में सहायक हैं क्योंकि कीटनाशकों के प्रयोग से मच्छरों की जनसंख्या को सीमित करने की सम्भावनायें निरन्तर कम हो रही हैं ।

सन्दर्भ सूची

- अन्सारी एम.ए.एवं अन्य (1989) : गाजियाबाद के राजपुर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में लार्वाभक्षी मछली "पोइसिलिया रेटिकुलेटा" का कुओं में प्रयोग एवं उसके द्वारा मच्छर नियंत्रण नियंत्रण अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी में लार्वाभक्षी मछलियाँ-सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष पृष्ठ सं. 135-140

- कास्टा, एच.एच.एवं फर्नान्डो, ई.एफ.डब्लू (1977) श्रीलंका में तीन देशिक जाति के मछलियों का मच्छर लार्वाभक्षी के रूप में मूल्यांकन-डब्लू.एच.ओ./वी.वी.सी./97: 665

- खन्ना,एस.एस. (1987) : मछलियों का एक परिचय सेन्ट्रल बुक डिपो,इलाहाबाद : 404-442

- गुप्ता, डी.के., शर्मा, आर.सी. एवं शर्मा, वी.पी. (1989) : गुजरात में मलेरिया का जैवपर्यावरणीय नियंत्रण सहयुक्त खाद्य मछलियों के उत्पादन द्वारा-इण्डियन.जे.मलेरियाल., : 55-59

- ग्रेरेवेरिस, जे.वी. और लायर्ड एम. (1968) : पपत्रों की सन्दर्भ सूची-मछलियों के प्रयोग से मच्छरों के नियंत्रण के सम्बन्ध में 1901-1960 एफ.ए.ओ.- मत्स्य तकनीकी पपत्र न.75 पृष्ठ सं.1-70

- चन्द्रहास, आर.के.एवं वैकेटरमनैय्या, टी. (1989) : मद्रास नगर में लार्वाभक्षी मछलियों के द्वारा मच्छरों के जनन का नियंत्रण-अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी में लार्वाभक्षी मछलियाँ-सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष-पृष्ठ सं.47-60

- झिंगरन, वी. जी. (1905) : भारत में मत्स्य एवं मात्स्यिकी-हिन्दुस्तान पब्लिशिंग कारपोरेशन-दिल्ली

- त्यागी, पी.के.एवं कुलश्रेष्ठ,ए.के. (1989) : पत्थर खदान में लार्वाभक्षी मछलियों का वृहद स्तर पर उत्पादन-अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी में लार्वाभक्षी मछलियाँ पुस्तक में-सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष-पृष्ठ सं.153-156

- दुआ वी.के.एवं शर्मा एस.के. (1989) : भेल औद्योगिक क्षेत्र हरिद्वार में गेम्बुसिया मछलियों के द्वारा मच्छरों के जनन का नियंत्रण- अन्तर्स्थलीय पारिस्थतिकी में लार्वाभक्षी मछलियाँ-सम्पादन-वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष पृष्ठ सं. 35-46

- देव,वी.एवं शाही वी. (1989) : आसाम राज्य के कामरूप जनपद के सोनापुर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में लार्वाभक्षी मछलियों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक प्रतिवेदन- अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी में लार्वाभक्षी मछलियाँ पुस्तक में-सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष पृष्ठ सं.147-152

- प्रसाद,आर.एम.एवं अन्य (1989) : वृहद स्तर पर गेम्बुसिया एफिनिस के प्रयोग से मलेरिया रोगवाहकों का नियंत्रण-अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी लार्वाभक्षी मछलियाँ पुस्तक में-सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष पृष्ठ सं.69-82

- मेनन पी.के.बी. एवं राजागोपालन,पी.के. (1977) : पांडिचेरी में मच्छरों के नियंत्रण में कुछ देशिक मछलियों की भूमिका-इण्डियन,जे.मेडि.रिस.66:765-771

- मल्होत्रा एम.एस. एवं शर्मा,वी.पी. (1989) : हलद्वानी जनपद नैनीताल में मच्छरों का जैव पर्यावरणीय नियंत्रण-गेम्बुसिया एफिनिस के द्वारा अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी में लार्वाभक्षी गछलियाँ पुस्तक में-सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष पृष्ठ सं.83-88

- राव,टी.रागचन्द्रा (1984) : दि एनोफेलाइन्स आफ इण्डिया-मलेरिया शोध केन्द्र-नई दिल्ली

- लेयर्ड,एम.एवं माइल्स,जे.डब्लू-सगन्वित मच्छर नियंत्रण की विधियाँ-खण्ड-1,एकेडिगिक प्रेस,लन्दन

- शर्मा,वी.पी. (1986) : परिचय नोट-रोगवाहक रोगों के नियंत्रण में समुदाय की भूमिका-कार्य विवरण आई.सी.एम.आर./डब्लू.एच.ओ.-कार्यशाला शोध परिणामों के मूल्यांकन हेतु-सम्पादन वी.पी.शर्मा मलेरिया शोध केन्द्र,दिल्ली

- शर्मा,वी.पी. (1987) : भारत में समुदाय आधारित मलेरिया नियंत्रण-पैरासिटाल,टुडे 3 (7) पृष्ठ सं. 222-226

- शर्मा वी.पी. (2003) : डी.डी.टी.,पराजित देवदूत कर.साइ. 85 (11) पृष्ठ सं.1532-37

- शर्मा,आर.सी.एवं अन्य (1987) : मच्छरों के जनन नियंत्रण में दैनिक मछलियों की भूगिका का अध्ययन-इण्डियन,जे.मलेरियाल 24 : पृष्ठ सं.73-77

- सिंह,एन.एन. अन्य (1989) : मण्डला जनपद जबलपुर के जनजातीय क्षेत्र में कुओं में लार्वाभक्षी मछलियों के माध्यम से मच्छरों का नियंत्रण-अन्तर्स्थलीय पारिस्थितिकी में लार्वाभक्षी मछलियाँ पुस्तक में- सम्पादन वी.पी.शर्मा एवं अपूर्व घोष : पृष्ठ सं. 105-114

- सीतारमन,एन.एल.एवं अन्य (1976) : हैदराबाद नगर के कुओं में ऐ.स्टीफेसाई के लार्वा का जैविक नियंत्रण "पोइसिलिया रेटिकुलेटा" के द्वारा जे.कम.डिसि.8(4) पृष्ठ सं 315-319

- स्वीटमैन,एच. (1936) : कीटों का जैविक नियंत्रण न्यूयार्क : पृष्ठ सं.318-325

राष्ट्रीय कार्यशाला की संस्तुतियाँ

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान एवं बिकास – वर्तमान अवस्था तथा भावी दिशायें

राष्ट्रीय कार्यशाला

अंतर्स्थलीय मात्स्यिकी अनुसंधान एवं विकास – वर्तमान अवस्था तथा भावी दिशायें

15–16 मार्च 2004

कार्यशाला की संस्तुतियाँ

1. अंतर्स्थलीय जलीय संसाधनों से मात्स्यिकी का निरंतर ह्रास एक ज्वलंत समस्या है, प्रमुख नदियों तथा अन्य सहायक संसाधनों में धरोहर स्वरूप उपलब्ध महत्वपूर्ण प्रजातियों के संरक्षण एवं संवर्द्धन हेतु जन जागरण कार्यक्रम चलाये जाने की आवश्यकता है जो मुख्यतः मछुआ समुदाय के बीच चलाया जाय ।

2. नदियों में मत्स्यन दबाव कम करने हेतु जलागम क्षेत्रों में मत्स्य पालन, मिश्रित मत्स्य पालन, एकीकृत मत्स्य पालन, पिंजड़ा अथवा बाड़े में मत्स्य पालन, झींगा पालन आदि गतिविधियों का प्रसार व विस्तार किया जाना चाहिये ।

3. नदियों में प्रदूषण एवं अन्य मानव जन्य गतिविधियों से हो रहे दुष्प्रभावों को नियंत्रित अथवा कम करने के लिये एकीकृत जलागम प्रबंधन किया जाना चाहिये ।

4. नदियों एवं अन्य प्राकृतिक जलीय संसाधनों में प्रजनक मछलियों एवं मछली के बच्चों के संरक्षण हेतु मत्स्य आखेट बन्दी का पूर्णतः अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिये ।

5. देश के नदीय तन्त्रों की पारिस्थितिकी एवं जैव विविधता के संरक्षण के उद्देश्य से उचित स्थानों पर कुछ पवित्र संरक्षित मत्स्य विहार घोषित किये जाने चाहिये ।

6. देश में मत्स्य पालन के आधुनिकीकरण एवं विविधीकरण की आवश्यकता है जिसके अंतर्गत समस्त मत्स्य पालन प्रक्रिया को नियंत्रित किया जा सके, इस हेतु उन्नत मत्स्य फार्मों का निर्माण करना चाहिये ।

7. मत्स्य पालन विविधीकरण के अंतर्गत कुछ अन्य संभावित मत्स्य प्रजातियों को पालने में प्रयोग करना होगा, बड़ी विडॉल मछलियाँ, अन्य विडॉल मछलियॉ आदि इस प्रक्रिया में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं ।

8. पालन में उपयोगी प्रजातियों के वंश सुधार हेतु जैव–अभियांत्रिकी का उपयोग किया जाना चाहिये जिससे तीव्र वृद्धि दर एवं उन्नत पोषकता एवं आकार युक्त मत्स्य बीज तैयार किया जा सके ।

9. मत्स्य पालकों के बीज, मत्स्य आहार, रोग निदान तथा विपणन जैसी समस्याओं के निराकरण हेतु मत्स्य पालन आस्थान की परिकल्पना को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये ।

10. पर्वतीय क्षेत्रों के मात्स्यिकी विकास हेतु अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है । यहॉ की विशिष्टता के अनुरूप मानव संसाधन विकास के लिये प्रयास करना चाहिये ।

11. पर्वतीय नदियों एवं झीलों में मत्स्य जैव विविधता संरक्षण एवं संवर्द्धन को स्पोर्टफिश अथवा मत्स्य आधारित पर्यटन के साथ जोड़ा जाना चाहिये जिससे क्षेत्र में आय के साधनों में वृद्धि हो सकती है।

12. देश में विकसित की गई तकनीकों का कृषकों द्वारा अपनाये जाने में काफी समय लगता है इस प्रक्रिया को गति देने के लिये वैज्ञानिकों द्वारा विकसित तकनीकों का कृषकों द्वारा अंगीकार हो जाने पर वैज्ञानिकों को विशेष परियोजना राशि दी जानी चाहिये ।

13. अंतर्स्थलीय राज्यों में झींगा पालन एवं झींगा बीज उत्पादन इकाईयों के विकास हेतु मिशन मोड परियोजना बनाई जानी चाहिये ।

14. प्राकृतिक जलीय संसाधनों में विदेशी मत्स्य प्रजातियों के बढ़ते आगमन को रोका जाना चाहिये अन्यथा स्थानीय प्रजातियों को नुकसान होगा साथ ही आनुवांशिक प्रदूषण की प्रक्रिया प्रबल हो जायेगी ।

15. उच्च गुणवत्ता युक्त प्रजनक मछलियों की निरंतर उपलब्धता हैचरी उत्पादित बीज की गुणवत्ता को सुधारने में सहायक होती है, इसलिये हैचरी में प्रजनकों का निरंतर परिवर्तन सुनिश्चित किया जाना चाहिये ।

16. स्थानीय भाषा में इस तरह की कार्यशालाओं का निरंतर आयोजन होते रहना चाहिये जिससे मत्स्य कृषक, मछुआ वर्ग, मत्स्य विभाग के अधिकारी एवं वैज्ञानिक एक मंच पर समस्त स्थानीय मात्स्यिकी समस्याओं पर विचार विमर्श कर सकें ।